Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Mitti Ke Minar

मिट्टी के मीनार

Really interesting Book is this

Rameshchander Bharti

रमेशचन्द्र 'भारती'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Mitti Ke Minar

मिट्टी के मीनार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

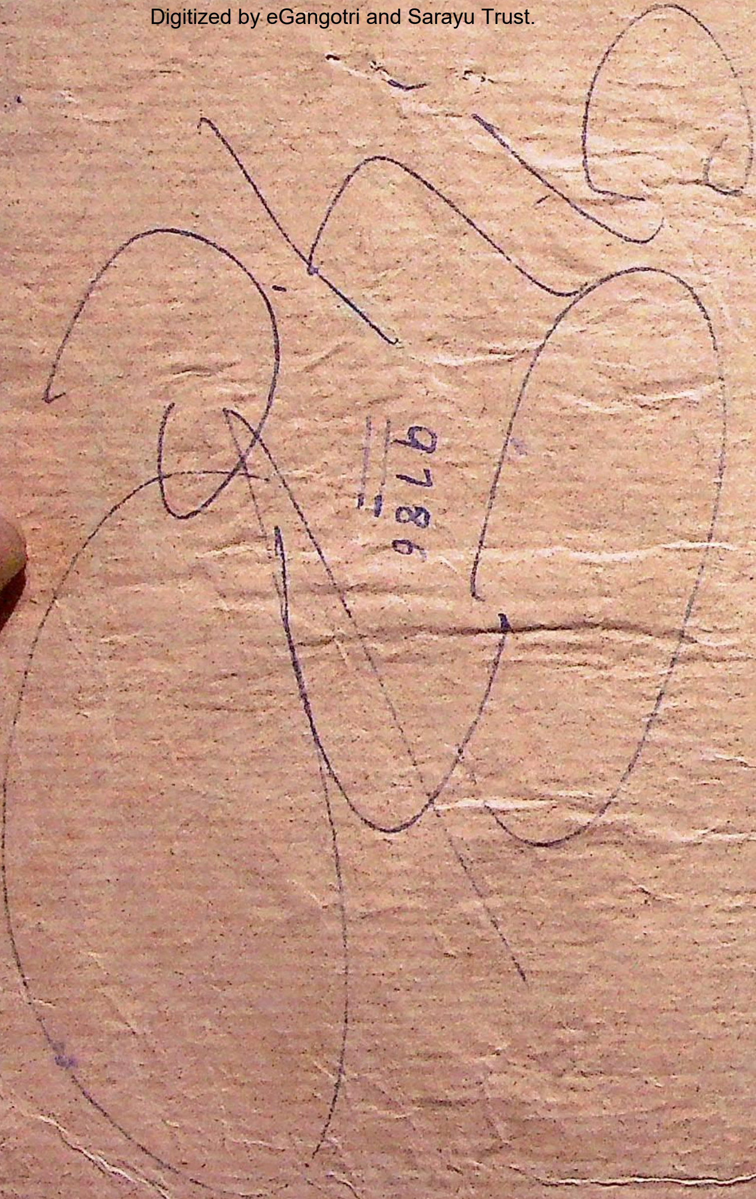

9786

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Acc. No 24188
Cost Rs. 11.00
Date 30.12.64

R17M

174

प्रकाशक : नवयुग प्रकाशन,
३६ यू. ए. वैंग्लो रोड,
मूल्य : ११.००
मुद्रक : राजकमल प्रिंटिंग प्रेस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपनी ओर से

लिखते समय ऐसा लगता है कि जैसे सब कुछ ठीक ही लिखा जा रहा है, पर पढ़ने पर आँखें विस्फारित होने लगती हैं। यह यहाँ छूट गया···यहाँ ये चाहिए था···यह और बढ़ाना ठीक होगा। यह बहुत सच है। लेकिन प्रथम आवेश में मनुष्य जो कुछ भी लिख जाता है—वह तत्व रूप से कभी भी कम नहीं होता। पर जिस शैली के आँचल में रहता है, वह फटी या अच्छी हो सकती है। सबसे ठीक बात यह है कि कोई भी सहसा उन्नति नहीं कर पाता। अभी मेरा औपान्यासिक जन्म है—लिखता हूं, और लिखूँगा। पर हर चीज का एक ध्येय होता है। कुँए का जल देना, पेड़ का फल और छाया, फिर इस लिखने का भी कोई ध्येय होगा। मैंने दो-तीन उपन्यास लिखकर यही अनुभव किया कि सबसे सफल कलाकार वही होगा, जो जितना ही यथार्थवादी हो। और वह आसमान का यथार्थ नहीं···हमारे चारों ओर···इर्द-गिर्द···सड़कों के किनारे, प्लेटफार्म पर, फुटपाथ पर, रंगीन और रूखे नजारों के बीच का है। चाहिए यह कि उनमें न फँसकर उसकी सच्चाई जानें। कोरी कल्पना मनोरंजन दे सकती है, मन गुदगुदा सकती है, पर आत्मा को नहीं छू सकती, जीवन को एक नयी राह नहीं दे सकती। तारीफ यह है कि नर और नारी की बातें पढ़कर लोग ऊब उठे हैं, पर उसके बिना कुछ सृजन भी नहीं हो सकता। प्रेम वही होता है, रातें वही होती हैं पर नयी पीढ़ी उसे रंगीन देखती है, मनभावना पाती है, धड़काने वाला पाती है। अतः महत्ता वस्तु में नहीं, मनुष्य में है। और कल्पना वस्तु को सतरंगी बनाकर ठग सकती है, पर जो यथार्थ है—मनुष्य के दिल-दिमाग में, उसे सामने नहीं रख सकती और इसीलिए वह कुछ नया नहीं दे सकती। हम न प्रेम से भाग सकते हैं, न नर,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भारत की ऋतुओं में वर्षा ऋतु सबसे अलौकिक है। घनघोर-घटायें उमड़ के आती हैं और टूट के बरसती हैं। ताल और नदियाँ एक हो जाते हैं। दीवारों पर मखमली काई फूटती है। जंगल-पर्वत, धानी जोड़ा पहन लेते हैं। मिट्टी से भी सुगन्ध आने लगती है। कण-कण पर निखार आ जाता है। क्या पशु-पक्षी, क्या मानव, हर एक के मन में नई आकांक्षायें जन्म लेती हैं। नन्हीं-नन्हीं फुहार पड़ती हैं और पपीहे की 'पीहू-पीहू' से वियोग के मारों का जीवन पहाड़ बन जाता है। कोयल की कूक से हूक उठने लगती है और यौवन-मातियाँ मधुर स्वर में गुनगुना उठती हैं—

'झूला किन डारो रे अमरइयाँ······हाय किन डारो···'

यही ऋतु थी और 'तीज' का त्योहार। मालवा देश के एक हरे-भरे सुन्दर गाँव चाँदनगर में सावन ने डेरे डाल रखे थे। तालाब के किनारे सुन्दर युवतियों का झुरमुट लगा था। एक से एक बढ़-चढ़कर बनी-ठनी······हाथों में ···तों के कंगन, कानों में फूलों की बालियाँ और जूड़ों में फूलों के गजरे देखकर ··धराज भी बावरा हो रहा था। एक युवती जिसका सौन्दर्य चन्द्रमा को भी लजाये, साधारण, किन्तु उजले वस्त्र पहिने, फूलों में लदी-फदी; ढोलक की गति पर झुरमुट में खड़ी झूम-झूमकर गा रही थी—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बलम परदेश कभी न जा
साजन जो मैं जानती प्रीत किये दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती प्रीत न कीजो कोय॥
बलम परदेस कभी न जा

गायिका का मधुर स्वर सुनने वालियों के मन को लुभा रहा था। स्वर के उतार-चढ़ाव में एक विशेष माधुर्य था, जो मन मोह लेता था। हरी, कोमल दूब पर उसके सुन्दर पाँव यूँ थिरक रहे थे, जैसे झील के तल पर हवा के झोंके से कोई पानी का बुलबुला इधर से उधर तैर रहा हो। प्रकृति के कण-कण से राग और रंग बरस रहा था। सुनने वालियों की मदमाती आँखें अपने परदेसी प्रीतम की कल्पना में छलक पड़ीं। कुएँ की मुँडेर पर कुछ पानी भरने वाली विस्मित खड़ी यह दृश्य देख रही थीं। एक ने दूसरी से कहा—

"गाँव-भर में रूपा से अच्छा तो कोई गाने वाला न होगा।"

दूसरी बोली, "चाचा ने गायन-विद्या सिखाने में लहू-पसीना भी तो एक कर दिया है।"

तीसरी अनायास कह उठी, "और देखो! रंग-रूप भी क्या निकला है··· सचमुच ही रूपमती है।"

इधर यह बातें हो रही थीं और उधर गाँव में घर-घर से छन-छन की झंकार आ रही थी, हँसी ठठोली हो रही थी, पकवान पक रहे थे।

एक बुड्ढा, खसखासी दाढ़ी, खिचड़ी बाल, घर के आँगन में हुक्के की नली मुँह से लगाये, टाँग पर टाँग धरे स्वयं ही धीरे-धीरे कुछ गुनगुना रहा था। हाथ की ताल जब घुटने पर पड़ती तो साथ ही गर्दन भी हिचकोला खाती थी। छोटी-छोटी दीवारें, फूस की नीची छत, सिर से पाँव तक कच्चा घर, किंतु साफ़-सुथरा, लिपा-पुता चंदन सा—सामने आँगन के एक ओर रसोई-घर के छप्पर के तले उसी की आयु की एक स्त्री बैठी बर्तन माँज रही थी। बर्तन माँजते-माँजते वह स्वयं बुड़बुड़ाने लगी, 'इस रूपा ने तो मेरा कलेजा जला दिया है···कब से राख से हाथ साने बैठी हूँ और वह है कि अभी तक पानी लेकर नहीं लौटी।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"कब से गई हुई है ?" बुड्ढा सहसा चौंक कर बोला।

"बड़ी देर हो गई,"—बुढ़िया ने उत्तर दिया।

बुड्ढा बिगड़ कर बोला—"मैं कई बार कह चुका हूँ कि रूपा को अकेले निकलने दिया करो ; किन्तु तुम्हारे कान पर जूँ भी नहीं रेंगती।"

"ए है ! तो क्या हो गया ? गाँव की और बहू-बेटियाँ भी तो पानी भरने हैं।"

"मैं नहीं सुनता जी···जाओ जाकर ले आओ,"—बुड्ढे ने फिर कड़क कर !

"हाय ! मैं अकेली कहाँ-कहाँ मर रहूँ···तुम्हारे पाँव में क्या मेंहदी लगी तुम्हीं क्यों नहीं चले जाते ?"

बुड्ढा बुढ़िया को घूरने लगा, "तुम तो बहरी हो···सुनती नहीं हो ढोलक गाने की आवाज··· बस वहीं-कहीं होगी वह भी···मैं क्या लड़कियों में जाता लगता हूँ ?"

"हमको नहीं सुनता कुछ···यह तो तुम्हारे ही कान हैं, जो ढोलक पर ने लगते हैं।" बुड़बुड़ाती हुई बुढ़िया हाथों पर पानी डालकर उठी, अलगनी पट्टा खींचा और सिर पर डालकर बाहर निकल गई।

ढोलक और गाने के बोल निरन्तर सुनाई दे रहे थे 'बलम परदेस कभी न ··· पहुंचकर पुकारने लगी—"रूपा, रूपा···अरी ओ रूपा !"

गायिका युवती ने जब यह आवाजें सुनीं तो दाँतों तले जीभ दबा कर एका-प हो गई। झुरमुट का झुरमुट मुड़ कर देखने लगा। एक बोली, "उफ ! ..."

ाची थी कि बिफरी हुई सिंहनी की भाँति चली आ रही थी। सब सहम गईं न जाने क्या पहाड़ टूटे। किन्तु जब रूपा लड़कियों के झुरमुट से, निकलकर आई तो चाची का उबाल यूँ उतर गया मानो उठा ही न था। उसने मुस्कराते हुए हल्की सी चपत रूपा के गाल पर लगाई और बाँह पकड़ कर हुए बोली—"तोड़ डालूँ मुँह, खेल कूद से जी नहीं भरता, उधर तेरे आकाश सिर पर उठाये हैं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चाची का यह परिवर्तन देखकर सब एक साथ खिल-खिलाकर हँस पड़ीं। रूपा प्यार से चाची से लिपट गई और उसके गले में बाँहें डालते हुए चंचलता से मुँह बना कर बोली, "चाची, यह चुड़ैलें सब की सब चिमट गईं—गाओ, गाओ गाओ...यह देखो, मटका तो मेरा भरा धरा है।"

"क्या करूँ...इस भरे मटके को...सिर पर दे मारूँ—अपने...बँदरिया कहीं की... चल उठा।"

रूपा घड़ा उठा कर चाची के पीछे-पीछे चल पड़ी। मुड़-मुड़कर सखियों की ओर हँस-हँस के देखती और हाथों से संकेत में कहती जा रही थी कि घड़ा रख कर अभी आई।

पूर्वीय सभ्यता का यह अटल नियम था, कि जहाँ लड़का लड़की युवावस्था पहुँचे, माता-पिता तो एक ओर, सम्बन्धी और पड़ोसी, यहाँ तक कि दूर की जा पहचान वाले भी उस पर ऐसी कड़ी दृष्टि रखने लग जाते थे मानो वह को निधी हो। हर व्यक्ति उसे हर वास्तविक अथवा कल्पित आपत्ति से बचाना के अपना ही कर्त्तव्य समझता......इन्हीं नियमों के आधार पर यहाँ ढलते रहे, जीवन बनते रहे।

अब दुनिया वालों को क्योंकर विश्वास दिलाया जाये कि मानव भावनायें तो जन्म-जन्म से चलती आती हैं। वह वर्तमान समय की देन ...यौवन में उन्माद पहले भी था, परन्तु इतनी बेसुधि नहीं......'पाप पहले भी थी, किन्तु इतनी खुले मुँह नहीं......आकांक्षायें पहले भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इतनी व्याकुल नहीं, आँख पहले भी चंचल थी, परन्तु इतनी निडर नहीं, उसमें कुछ संकोच था, लज्जा थी······चितवन पहले भी नटखट था। किन्तु निर्लज्ज नहीं। यह परिवर्तन किसलिये ? इसका कारण केवल यह है कि हमारे आचरण का लक्ष्य बदल गया है, उसकी सीमायें बदल गई हैं। अब किसी अन्य व्यक्ति की क्या मजाल कि कुछ कह सके। माता-पिता की रोक-टोक भी स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप समझी जाती है। इस युग का हर व्यक्ति अपनी इच्छाओं और वासनाओं को अपने ही उचित अथवा अनुचित ढंग से पूरा करना अपना अधिकार समझता है।

उस समय के उच्च और शिष्ट लोगों का तो क्या कहना, यह गायिकायें और र्तकियाँ, जिनका कार्य केवल रंगशालाओं को गरमाना और अमीरों, वजीरों मन को भरमाना ही था, वह भी मृदुभाषी होने और बेगमों रानियों से रख-खाव के कारण सम्मान से देखी जाती थीं। भरी सभाओं में उन पर, आवाजें सना तो एक ओर, किसी को आँख उठाकर देखने का भी साहस न होता था। च्च-घरानों की महिलायें उनसे उठने-बैठने, बोलने-चालने की शिक्षा लेती थीं, ाष्ट व्यवहार सीखती थीं। उनकी तुलना यदि आजकल के शिक्षित और भ्य समाज के क्लब घरों से की जाये तो ऐसी आँधियाँ उठती दिखाई दें कि ँख इस दृश्य को सहन न कर सके।

रूपमती, इसी युग के उपवन का पुष्प थी, चाचा-चाची तो अलग रहे, गाँव र के वृद्ध स्त्री-पुरुष उसके उठते यौवन की बहार देखकर काँप उठते। सबकी ी इच्छा थी कि शीघ्र ही उसके हाथ पीले कर दिये जायें। कोई अच्छा वर ोजकर माँग भर दी जाये। गाँव के नाई गंगू को वर खोजने का भार सौंपा ा। इस बात का महत्त्व एक घटना से अधिक हो गया था। बात यूँ हुई कि व के चौधरी का बड़ा बेटा बड़े समय से रूपमती पर आँख लगाये था। दिन न-दिन उसकी कुवासनायें तीव्र होती जा रही थीं, किन्तु रूपमती को टोकने साहस न होता था।

एक दिन दुर्भाग्यवश रूपमती कुएँ पर पानी भरने गई तो वहाँ कोई और न थी। उसने दोनों घड़े तो भर लिये, किन्तु उठवाये किससे ? इधर-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उधर देख रही थी कि चौधरी का बेटा वहाँ आ पहुँचा। अभी तक उसे रूपमती से अकेले में मिलने का अवसर न मिला था। रूपमती उसकी कुदृष्टि को पहले से भाँपे हुए थी। उसे आता देखकर आँखें चुराकर खड़ी हो गई और कोई ध्यान न दिया। चौधरी के बेटे ने बात-चीत आरम्भ करनी चाही, किन्तु रूपमती ने मुँह न खोला और चुप रही, ढीठ बनकर उसने कहा, "आओ घड़े उठवा दूँ।"

रूपमती जब घड़े उठाकर चलने लगी तो उसने हाथ बढ़ाने का कुछ साहस किया। रूपमती को यह सहन न हुआ और वह घड़े सिर से उठाकर रोती हुई गाँव को भागी। इस घटना से सारे गाँव में खलबली मच गई। चौधरी जब खेतों से घर को लौटा तो सारा माजरा सुनकर आग-बबूला हो गया। लड़के को लाठियों से पीट-पीटकर बेसुध कर दिया और चाचा-चाची से गिड़गिड़ाकर क्षमा याचना की।

चाचा-चाची के पास रूपा के दहेज के लिये फूटी कौड़ी न थी और यह चिन्ता दिन-रात उन्हें घुन बनकर खाये जा रही थी। मन न चाहता था कि जिस बालिका को, जान छिड़ककर, सन्तान से बढ़कर, छाती से लगाकर पाला हो, बड़ा किया हो, उसे यूँ खाली हाथों बिदा कर दें। सो गाँव के चौधरी से परामर्श करने पर यह ठहरा कि दोनों गाँव के सेठ के पास नगर चलें और ब्याह के लिये कुछ पूँजी की प्रार्थना करें।

इस योजना का ज्ञान चौधरी के बेटे को भी हो गया। अपनी असफलता पर वह पहले ही जला-भुना बैठा था। तुरन्त एक काम का बहाना बनाकर नगर को उठ दौड़ा। आवभगत के पश्चात् सेठ ने आने का कारण पूछा। वह बोला "अकेले में कुछ बातें करनी हैं।" सेठ आश्चर्यचकित हो उसे भीतर ले गया।

सेठ—"पहले तो यह बताओ कि गाँव में सब कुशल तो हैं न? तुम्हारा इस प्रकार आना कुछ विचित्र सा लगता है।"

चौधरी का बेटा—"हाँ, कुशल है और नहीं भी।"

सेठ घबरा-सा गया और बोला, "चौधरी, पहेलियों में बात न करो, खुल कर कहो।"

चौधरी का बेटा—"रूपा को जानते हो?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सेठ—"गाँव में किसको नहीं जानता ? रात-दिन का आना-जाना हो तो आँखों से कौन ओझल रह सकता है।"

चौधरी का बेटा—"मैं पूछता हूँ, रूपा को भी जानते हो ? कभी उसको देखा है ? कभी आमना-सामना हुआ है।"

सेठ—"हाँ, हाँ ! भली प्रकार जानता हूँ...हज़ार बार देखा है...हज़ार बार सामना हुआ है...तुम अपना अभिप्राय कहो !"

चौधरी का बेटा सेठ के पाँव में गिर पड़ा और बोला—"मेरी इज्जत तुम्हारे हाथ है।"

सेठ ने हाथ पकड़कर उसे उठाते हुए गम्भीरतापूर्वक कहा—"पागलों की सी बातें मत करो...ठीक-ठीक बताओ क्या बात है ?"

चौधरी का बेटा लड़खड़ाती हुई ज़बान में कहने लगा—"वास्तव में बात यह है कि मैं रूपा से प्रेम करता हूँ...कुछ दिन हुए मैंने उससे बात करना चाही तो उसने गाँव भर में शोर मचाकर मुझे बदनाम कर दिया।"

चौधरी के बेटे ने तो बहुत कुछ बात बनाकर कही ; किन्तु सेठ सयाना था, तुरन्त ताड़ गया कि इसने अवश्य कुछ ऐसी बात की होगी जिससे कोई भी सभ्य स्त्री सहन नहीं कर सकती। चौधरी के बेटे को समझाते हुए उसने उत्तर दिया—"चौधरी ! गाँव की बहू-बेटियों को कुदृष्टि से देखना बड़ी नीचता है। तुम ऊँचे घराने और आदरणीय पिता के सुपुत्र हो। तुम्हारी बात सुनकर मुझे खेद ही हुआ। ऐसी बातों का यही परिणाम होना चाहिये था। अच्छा तो यह बताओ मेरे पास तुम आये किस अभिप्राय से ?"

सेठ के इन शब्दों से चौधरी के बेटे पर ओस-सी पड़ गई और खिसियाना सा होकर इधर-उधर देखने लगा।

सेठ ने फिर कहा—"हाँ, हाँ, बताओ मुझसे क्या चाहते हो ?"

चौधरी का बेटा रुक-रुककर बोला—"मेरे पिता और रूपा के चाचा ने यह निश्चय किया है कि शीघ्र ही रूपा का लगन कर दिया जाये और वह दोनों कुछ रुपये-पैसे की माँग लेकर तुम्हारे पास आयेंगे। मैं चाहता हूँ कि तुम उन्हें टाल दो और अभी रुपया न दो। इस प्रकार जब कुछ दिन के लिये बात ठंडी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पड़ जायेगी तो हो सकता है उनका विचार भी बदल जाये।"

सेठ—"विचार बदल जाये ? मैं समझा नहीं।"

चौधरी का बेटा—"यह कि मुझसे रूपा का व्याह कर दें।"

सेठ—"तो क्या अभी तक उसका नाता कहीं नहीं हुआ।"

चौधरी का बेटा—"नहीं..."

सेठ—"तो फिर व्याह के लिये रुपया देने का अभी प्रश्न ही नहीं उठता।"

चौधरी का बेटा—"किन्तु वह तुम्हारे पास यही प्रार्थना लेकर आयेंगे।"

सेठ—"क्या भोलेपन की बातें करते हो। जब तक मँगनी न हो जाये, व्याह किस से होगा ?"

चौधरी का बेटा—"मँगनी समझो हो जायेगी। गंगू से कह दिया गया है।"

सेठ—"तो देखा जायेगा, जब मँगनी हो चुकेगी।"

चौधरी का बेटा—"परन्तु तुम यह वचन तो दो कि तुम उन्हें इस कार्य के लिये रुपया न दोगे।"

सेठ—"सुनो चौधरी ! मुझ से यह तो न होगा कि वह मेरे पास आयें और मैं उन्हें टाल दूँ। जब गाँव में सब को देता हूँ तो उन्हें क्यों न दूँ ? वह कोई चोर हैं ? दूसरे यह मेरे धंधे और नियमों के विरुध है कि मैं अकारण ही अपने ग्राहकों से बिगाड़ लूँ। तीसरे यह कि किसी की जवान बेटी के व्याह में रोड़े अटकाना बड़ा पाप है। ऐसे पुण्य के कार्यों में तो सौ पराये की भी सहायता करना हर मानव का कर्त्तव्य है और फिर मेरा देना-लेना तो सूद-व्याज का देना-लेना है, जो किसी प्रकार भी उपकार नहीं कहा जा सकता। यदि मैं इससे भी कन्नी काटूँ, तो मुझ से वढ़कर पापी कौन होगा ? मैं तुम्हारी यह सहायता कर सकता हूँ कि जब वह मेरे पास आयें तो मैं तुम्हारे पिता को यह परामर्श दूँ कि यह नाता तुम्हारे लिये लेने का प्रयत्न करे।"

यद्यपि चौधरी के बेटे को सेठ की ओर से संतोषजनक उत्तर न मिला, तथापि इतना तो हुआ कि सेठ ने उसके नाते के प्रयत्न का वचन दे दिया, और उसके लिए इतना ही पर्याप्त था। सेठ का धन्यवाद करते हुए वह बोला—"अच्छा तो, यह वचन पक्का रहा सेठ जी ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सेठ जी ने उसे सांत्वना देते हुए उत्तर दिया, "अवश्य···और विश्वास रखो, यह बात छिपी न रहेगी···तुम्हें सब स्वयं पता चल जायेगा।"

मानव का शरीर, जो देखने में केवल माँस और हड्डियों का एक ढाँचा सा है बड़े अनोखे और विचित्र भावों का सन्दूकचा है। एक छोटा सा माँस का लोथड़ा, जिसे हृदय कहते हैं, इसकी अथाह गहराइयों की कोई सीमा नहीं। कभी-कभार वर्षों तक कोई भावना इसमें छिपी दबी पड़ी रहती है, और फिर सहसा किसी बाह्य कारण से वह भावना उजागर हो जाती है, और यूँ उभरती है कि लाख यत्न करने पर भी इसको दबाना असम्भव हो जाता है; और मानव-प्रकृति विवश होकर रह जाती है।

चौधरी के बेटे के चले जाने के पश्चात् यही दशा सेठ की भी हुई। उसकी युवा पत्नी ढाई वर्ष हुए, छः महीने की एक बच्ची छोड़कर मर गई थी। दूर-निकट के सम्बन्धियों में कोई ऐसा न मिला जो इस बच्ची को सँभालता। इस-लिए सेठ ने इसके लालन-पालन के लिए नौकरानी रख ली, जो बच्ची को भी देखती और सेठ का खाना-वाना भी पकाती। इस बीच में काम-काज में लगे रहने के कारण सेठ को नये विवाह का कभी विचार भी न आया। परन्तु, अब इस नई प्रेरणा ने एकाएक उसकी सोई हुई भावना को जगा दिया और उसे यूँ अनुभव हुआ मानो कोई चिंगारी राख के ढेर के नीचे दबी पड़ी थी कि अचानक किसी ने राख को कुरेदा और वह धधक कर अंगार बन गई।

चाँद नगर में उसका निशदिन आना-जाना लगा रहता था। रूपा को सैकड़ों बार उसने आते-जाते, चलते-फिरते देखा था और कभी मन में किसी प्रकार का विचार भी उत्पन्न न हुआ था, किन्तु आज उसे यूँ अनुभव होने लगा जैसे रूपा जन्म से उसके मन की रानी थी, उसके मन-मस्तिष्क पर छाई हुई थी, उसकी आत्मा में बसी हुई थी। यह विचार आना था कि वह सिर पकड़ के बैठ गया। अपनी नन्हीं सी बच्ची का ध्यान आया कि उसकी माँ अब रूपा से बढ़कर कौन हो सकती है···उससे अधिक उसे कौन प्यार कर सकता है···रूपा का अपना लालन-पालन भी तो ऐसे ही वातावरण में हुआ है···बिचारी के न माता न पिता···वह इस दुःख को भली प्रकार समझती है···रूपा सौन्दर्य की मूर्ति है, रूपा पवित्रता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की देवी है···ऐसी···ऐसी निष्कलंक कि निर्धन होने पर भी गाँव के मुखिया के बेटे को धत्कार दिया···रूपा से बढ़कर संसार में पवित्र कोई स्त्री नहीं हो सकती···वह व्यक्ति वास्तव में बड़ा भाग्यशाली होगा जिसे रूपा जैसी पत्नी मिले। यह थे वह विचार जो सहसा ज्वर की भाँति उसके मस्तिष्क में उठे और उसे बहाकर ले गये।

आँगन में चाचा चारपाई पर बैठा गुड़गुड़ी पी रहा था। बाहर से रूपा गुनगुनाती हुई आई और उसके पास बैठकर पूछने लगी, "चाचा! विहाग, शंकरा और सोहनी, दीपकराग की शाखायें कही जाती हैं किन्तु, दीपक आज तक नहीं सुना।"

चाचा—"हाँ, यही कहा जाता है यह उसकी शाखायें हैं।"

रूपा—"किन्तु, दीपक···"

चाचा कुछ देर सोचकर बोला—"होगा···मैं तो नहीं जानता···तुमने भी सुना होगा। अभी पिछले दिनों यह बात प्रसिद्ध हुई थी कि मियाँ तानसेन ने अकबर बादशाह की बीमार राजकुमारी को, जिसके इलाज से सब राज-वैद्य और हकीम हाथ धो चुके थे, दीपकराग सुनाकर अच्छा कर दिया था। किन्तु वह स्वयं उस राग के प्रभाव से बीमार पड़ गया और ऐसा ताप चढ़ा कि उसका उतारना किसी हकीम के बस की बात न रही।"

रूपा झट बोल उठी—"फिर?"

चाचा—"फिर मियाँ तानसेन ने स्वयं यह बात कही कि जब तक मेघ-मल्हार न गाया जायेगा ताप न उतरेगा।"

रूपा फिर अधीर हो बोली—"फिर?"

चाचा—"फिर तानी बुलाई गई या स्वयं तानसेन को उसके यहाँ पहुँचाया गया। उसने मेघ-मल्हार गाया और तब कहीं तानसेन का ताप उतरा।"

"यह तानी कौन है चाचा?" रूपा ने उत्साहपूर्वक पूछा।

चाचा—"तानी उसकी प्रेमिका है और तानसेन ने स्वयं उसे गायन-विद्या सिखाई है।"

रूपा—"चाचा···उससे तो मुझे भी मिलाओ न।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चाचा हँस पड़ा और कोई उत्तर न दिया।

रूपा कुछ रुककर फिर बोली—"मेघ-मल्हार राग को तो मैं भी जानती हूँ··· परन्तु यह प्रभाव वाली बात तो चाचा, मैंने आज ही तुम्हारे मुँह से सुनी।"

चाचा फिर हँसा और कहने लगा—"सच यह है कि लोगों ने बहुत सी कल्पित कहानियाँ घड़ ली हैं, जिनमें वास्तविकता बिल्कुल ही छिप गई है···जैसे दीपक-राग के विषय में यह कहते हैं कि उसके प्रभाव से आग लग जाती है, अथवा दीपक स्वयं जल उठते हैं···और मेघ-मल्हार से वर्षा होने लगती है···यह सब व्यर्थ की बातें हैं और केवल कल्पना की उड़ान है, वास्तविक राग से उसका कोई सम्बन्ध नहीं।"

रूपा—"तो क्या मियाँ तानसेन वाली बात झूठ है?"

चाचा—"बिल्कुल झूठ। किसी साधारण घटना को बढ़ा-चढ़ाकर बताने में, उसमें रंग भरने में जन साधारण को एक विशेष प्रकार का आनन्द मिलता है··· वह हर घटना को एक चमत्कार बना देते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मियाँ तानसेन बड़ा कलावंत है और यह कहना मिथ्या न होगा कि हज़ार वर्ष से ऐसा रागी भारत में नहीं जन्मा। किन्तु मैं उसके चमत्कार को नहीं मानता। मेरा विचार है मियाँ तानसेन ने स्वयं ऐसा कभी नहीं सोचा।"

रूपा—"तो क्या राग के प्रभाव में कोई वास्तविकता नहीं?"

चाचा—"है···किन्तु इस प्रकार नहीं जैसे लोगों ने प्रसिद्ध कर रखा है।"

रूपा—"फिर कैसे?"

चाचा—"देखो, सुनो! तनिक समझने की बात है···इस ब्रह्माण्ड में चन्द्रमा, सूर्य और तारे सभी भगवान् की उत्पत्ति हैं। इनमें कोई छोटा है, कोई बड़ा··· कुछ ग्रह अपने स्थान पर स्थिर हैं और कुछ जो गतिमान हैं। यूँ तो यह गतिमान ग्रह अगणित हैं और इनके चक्र निश्चित समय पर समाप्त हो जायेंगे, किन्तु सात ग्रह ऐसे हैं जो दिन-रात के आठ पहरों में अपने चक्र पूरे समाप्त कर जाते हैं···और यह स्पष्ट है कि किसी वस्तु की तनिक सी हलचल से भी···वायु द्वारा रगड़ से ध्वनि उत्पन्न होती है···हिन्दुस्तान के रागियों ने इन्हीं ग्रहों की गति से, जो इनके छोटे-बड़े होने के कारण धीमी अथवा तीव्र है, 'सरगम' की नींव डाली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है और इसी के आधार पर विभिन्न रागों के समय निश्चित किये हैं···यही कारण है कि हर राग एक निश्चित समय पर मन में विशेष भावनायें जागृत करता है और इसी का नाम है राग का प्रभाव···इस विशेष राग के सुर उसी ध्वनि के साथ मिलते हैं जो उस समय इन सात ग्रहों की गति से उत्पन्न होती है।"

रूपा—"ठीक है, समझ गई, परन्तु यह बात अब तक बुद्धि में नहीं बैठी कि इन सात ग्रहों की ध्वनियाँ सुनी कैसे गईं।"

चाचा—"तुमने बड़ा उचित प्रश्न किया है···सुनो! संगीत और ज्योतिष ऐसी विद्यायें हैं कि आरम्भ में उन्हें समझना तो एक ओर, साधारण बुद्धि के व्यक्ति उनके शब्दों के अर्थ तक को नहीं पहुँच पाते। यह वह विशेष ज्ञान है, जिनकी नींव स्वयं देवताओं ने रखी है···अवतारों और पैग़म्बरों ने इन्हें परवाना चढ़ाया है और वह भगवान की दी हुई असाधारण शक्तियों के स्वामी थे कि इन ध्वनियों को सुन सकते थे। वैसे यह तर्क भी दिया जा सकता है कि आकाश मण्डल को प्रकृति ने बारह राशियों में विभाजित किया है और जैसे दुनियाँ वालों ने इन्हीं राशियों की संख्या के आधार पर वर्ष को बारह मासों में बाँटकर धरती पर समय को निश्चित किया है और ऋतुओं के अदल-बदल के समय निर्धारित किये हैं ऐसे ही इन सात-ग्रहों की परिक्रमा की अवधि के अनुपात से इनकी गति का अनुमान लगाया गया है और इनकी क्रिया से उत्पन्न होने वाली ध्वनियों का भी ज्ञान हुआ है, परन्तु इस विषय में मेरा अपना विश्वास वही है जो मैं पहले बता चुका हूँ और इसी को मैं सत्य मानता हूँ।"

अभी यह बातचीत चल ही रही थी कि चाची भीतर से गरजती हुई निकली और चाचा पर बरस पड़ी, "मैं कहती हूँ, तुम पागल हो जाओगे। आकाश की बातें छोड़कर कभी धरती की बातें भी किया करो···बस सदा एक ही झक-झक, कभी दुनियाँ का कोई काम करना न जाना।"

चाचा, दम साधे चाची का मुँह ताकने लगा और रूपा गर्दन घुमाकर हँसी को रोकते हुए साड़ी का आँचल मुंह में ठूँसकर बैठकर गई। चाची लगातार कहे जा रही थी, "ए, मैं कहती हूँ इधर को क्या ताक रहे हो? उठो, चौधरी के पास जाओ, आज कै दिन की बात हो गई। उसने नगर चलने को कहा था पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुमने फिर हट कर सुध ही न ली···क्या दुनियाँ के काम यूँ होते हैं ?"

चाचा ने कुछ कहने को मुँह खोला ही था कि चाची फिर बोल उठी—"बस-बस, मैं कुछ नहीं सुनना चाहती, उठो और चौधरी के पास जाओ।"

रूपा हँसी को अधिक न रोक सकी। उठी और झुकी-झुकी बाहर की ओर भागी। चाचा को छोड़कर चाची उसको लिपट गई—"सुन री—यह मुँह तोड़ डालूँगी तेरा, जिससे खिद-खिद हँसे जा रही है। तुझे इतनी बुद्धि नहीं कि चम्पा को ससुराल से आये आज तीन दिन हो गये, उससे मिल तो आती। यहाँ तू मेरा कौन सा काज सँवारती है कि अवकाश नहीं मिलता···बस यहाँ बैठी गुन-गुनाती रहती है या चाचा से व्यर्थ इधर-उधर की बातें करती है। ए है यह कैसा कलयुग आ गया, प्यारी सखियों से यह बरताव···वह क्या सोचती होगी मन में और हाँ देखो···भाँजे के लिये मिठाई लेकर जाइयो—"

एक ही साँस में यह सब कुछ कह कर चाची का क्रोध ठंडा पड़ गया और चाचा को सम्बोधन करते हुए बोली, "रूपा के चाचा ! अपनी ऐड़ी देखूँ, कितना प्यारा बच्चा है, जीता रहे, मैं कहती हूँ, तुम यहाँ पड़े क्या करते हो ? जाओ, चम्पा के सिर पर हाथ फेर आओ, बच्चे को तो मैं एक रुपया दे आई हूं।"

चाचा कहते हुए उठ खड़ा हुआ—"लो अभी जाता हूँ। नहीं तो फिर भूल जाऊँगा।" चाची को फिर पहली बात याद आ गई और कड़ककर बोली—"और मैं कहती हूँ चौधरी की ओर कब जाओगे ?"

चाचा मुस्कुराने लगा और उसकी ओर देखकर नम्रता से बोला—"भली मानस ! चौधरी कहीं गाँव गया हुआ है—एक दो दिन में आ जायेगा और सम्भव है कि आज ही आ जाये।"

चाची का पारा यद्यपि उतर गया था; किन्तु फिर भी इतना कह गई, "अच्छा तुम जानो, पर देखो मैं तुम्हें चैन न लेने दूँगी।"

चाचा हँसता हुआ बाहर चला गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पौ फट चुकी थी, अभी सूर्य उदय न हुआ था। सेठ बिस्तर से उठकर कोठे की छत पर टहलता फिर रहा था कि चाँदनगर की सड़क पर धूल उड़ती दिखाई दी। सेठ की दृष्टि उधर ही जम गई; हवा के झोंके ने धूल की चादर को परे हटाया तो दो सवारों की झलक पड़ी, किन्तु तुरन्त ही धूल ने उन्हें फिर लपेट में ले लिया। सेठ की दृष्टि, निरन्तर उस धूल पर जमी रही। मिट्टी की उड़ान से इतना अनुमान तो लगाया जा सकता था कि सवार घोड़ों को डपटाये लिये आ रहे हैं, किन्तु दिखाई कुछ न पड़ता था कि फिर एक तीव्र झोंके ने धूल को हटा दिया। इस बीच में सवार और भी निकट पहुँच चुके थे। सेठ ने चौधरी और चाचा को तुरन्त पहिचान लिया। मन, धक से होकर रह गया। शीघ्र नीचे उतरा। कली को ताजा किया, चिलम में आग रखी और नौकरानी को लस्सी बनाकर तैयार रखने का आदेश देकर बैठक में गावतकिये से पीठ लगाकर बैठ गया।

थोड़ा ही समय बीता था कि गली में घोड़ों की टाप-सुनाई दी और चौधरी और चाचा आन विराजे। सेठ ने सन्तोष की लम्बी साँस ली और हँसता हुआ बाहर निकल कर कहने लगा—"आइये, आइये। बड़े दिनों बाद दर्शन दिये—अरे ओ फ़ज्जा, घोड़े थाम।" फ़ज्जा ने शीघ्र आकर घोड़े थाम लिये और वह तीनों बैठक में आकर बैठ गये, नौकरानी आई और एक तसली लस्सी की और तीन गिलास रखकर भीतर चली गई। कुशलता पूछने और लस्सी पिलाने के बाद सेठ ने अतिथियों के आने का कारण पूछना चाहा, पर झिझक कर रह गया। आखिर चौधरी ने बात आरम्भ की।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चौधरी—"आज तो हम सवेरे ही सवेरे एक विशेष कार्य से आये हैं तुम्हारे पास, सेठ !"

सेठ नम्रता से बोला—"मैं तो दास हूँ आप सब लोगों का···आज्ञा दीजिये।"

चौधरी ने हँसते हुए कहा—"तुम्हारी इन्हीं बातों ने तो हमें मोह रखा है, वरन् शहर में शाहूकारों की क्या कमी है !"

सेठ ने उत्तर दिया—"चौधरीजी, क्यों लज्जित करते हो अच्छा, कहिये क्या कर सकता हूँ ?"

चौधरी—"बात यह है कि चाचा की लड़की रूपा को तो तुम जानते हो।"

रूपा का नाम सुनते ही सेठ न जाने क्यों सन्न-सा रह गया। चौधरी ने बात चालू रखी—"अब वह सयानी हो गई है···हम गाँव वालों की हार्दिक इच्छा है कि शीघ्र उसका ब्याह कर दिया जाये।"

सेठ बीच में बोल उठा—"बड़ा शुभ विचार है। प्राय: जवान लड़के-लड़की का बिठाये रखना बड़ी आपत्ति का कारण बन जाता है।"

"निस्सन्देह," चौधरी ने बात समाप्त न होने दी, "यही बात हमारे मन में भी है···सो हम इसी आशय से तुहारे पास आये हैं, कि तुम व्यय उठाने के लिये तैयार रहो···बस सवेरे-साँझ किसी समय आवश्यकता पड़ सकती है।"

सुनकर सेठ के प्राण से निकल गये। उसने यही समझा कि रूपा का नाता कहीं निश्चित हो चुका है और एक-आध दिन में ब्याह की तिथि निश्चित होने वाली है। उसका मस्तिष्क चकरा गया। उसे ऐसा जान पड़ा कि सारा घर उस के गिर्द घूम रहा है। आँखें स्वयं बन्द हो गईं। कली की नली हाथ से छूट गई और वह बेसुध सा गावतकिये से जा लगा। सेठ की यह दशा देख कर चौधरी और चाचा दोनों घबरा गये। समझे, कि सेठ के पास पूँजी नहीं अथवा वह देना नहीं चाहता। सोच में बैठे उसे देखते रहे और फिर फ़ज्जा को पुकारा कि पानी का गिलास लाये। फ़ज्जा पानी ले आया। मुँह पर छींटे दिये, पंखा झला। थोड़ी देर बाद सेठ ने आँखें खोलीं। परन्तु, चाचा और चौधरी के मुख पर वैसे ही हवाइयाँ उड़ रही थीं। कुछ समय पश्चात् सेठ की दशा तनिक सँभली और वह उठकर बैठ गया। किन्तु चुप, मानो साँप सूँघ गया हो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आखिर चौधरी ने चुप्पी को तोड़ा और ग्रामीण-भोलेपन में पूछ लिया, "क्यों सेठजी, क्या पूँजी तैयार नहीं या देना नहीं चाहते ?"

सेठ ने साहस बटोरकर स्वयं को सँभाला और दृढ़ता से उत्तर दिया "चौधरीजी, दोनों बातों में से कोई भी नहीं, कई दिनों से मन कुछ अस्वस्थ है, इसी से कभी-कभार यूँ हो जाता है, हाँ तो नाता कहाँ किया ?"

यह सुनकर चौधरी और चाचा की भी घबराहट दूर हुई। उत्तर दिया, "नाता तो अभी कहीं नहीं हुआ, भरसक प्रत्यन हो रहा है...सब गंगू नाई पर निर्भर है...तुम जानते हो वह बहुत चतुर और चलने-फिरने वाला व्यक्ति है... आशा है कहीं न कहीं शीघ्र ही बात ठहरा देगा।"

चौधरी के इस वाक्य से सेठ का मुख खिल उठा और धमनियों में रुका हुआ लहू फिर प्रवाहित हो गया। किन्तु व्यक्ति चतुर था, मानसिक भावना प्रगट न होने दी और बोला—"चौधरी ! आप गाँव वालों के सम्मान को मैं अपना सम्मान समझता हूँ, आप लोगों के सुख को अपना सुख, और आप लोगों के दुख को अपना दुख जानता हूँ। जहाँ तक आपका और चाचा का सम्बन्ध है, मैं आपको बड़ा जानता हूँ...आप मेरे लिये आदरणीय हैं...आप जब चाहें और जितना चाहें रुपया ले सकते हैं...मेरी मजाल नहीं कि चूँ करूँ।"

चौधरी और चाचा प्रसन्न होकर फूल के समान खिल उठे। यह बात यहीं समाप्त हो गई और इधर-उधर की बातें होने लगीं। चाचा को शहर में भी काम था। चौधरी से कहने लगा—"तुम थोड़ा बैठो, मैं अभी आता हूँ।"

सेठ को चाचा के चले जाने से अकेले में चौधरी से बात करने का अवसर मिल गया। उसके बेटे की बात छेड़ दी और उसके यहाँ आने का अभिप्राय और दोनों के बीच हुई पूरी बातचीत बता दी। चौधरी, बेटे की इस बात पर बड़ा झल्लाया और बोला—"यदि उसने ऐसी मूर्खता न की होती तो मैं अवश्य चाचा से प्रार्थना करता, परन्तु; अब तो कोई बात कहते मेरी जीभ कटती है..."

सेठ बोला—"यदि तुम नहीं कहना चाहते तो लाओ चाचा से मैं कह दूँ।"

चौधरी सोच में पड़ गया और फिर सिर हिला कर बोला, "नहीं अब तो कदाचित् यह न होगा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सेठ—"तो क्या तुम्हारा यह निर्णय अटल है ?"

"बिल्कुल अटल ।" चौधरी ने तनकर उत्तर दिया ।"

सेठ—"यदि यही बात है तो मुझे कुछ कहने की अनुमति दो ।"

चौधरी—"नहीं, इस विषय में बिल्कुल नहीं । हाँ, और कोई बात हो तो कहो ।"

सेठ आँखें नीची करके बोला—"मैं अपने लिये कुछ कहना चाहता हूँ ।"

"अवश्य कहो," चौधरी ने उत्तर दिया ।

सेठ—"तुम जानते हो चौधरी, मेरी पत्नि ढाई वर्ष हुए, छः महीने की बच्ची छोड़कर मर गई थी, और जब से इस घर को सँभालने वाला कोई नहीं । कई स्थानों से नाता आया पर मन न जमा । यही समझा वह लोग मेरे धन के भूखे हैं । आप सब लोगों से मेरा मन पर्चा हुआ है । कई बार कहना चाहा पर होंठ न खुल सके । अब चूँकि अकस्मात ही यह बात चल निकली है, मुझे भी साहस हुआ । उचित समझो तो चाचा से मेरे लिये कह दो । यदि मेरा निवेदन स्वीकार हो जाये तो अपने को बड़ा भाग्यवान समझूँगा और आजीवन आप का दास रहूँगा, वरना चौधरी जी ! मैं तो यही निश्चय किये बैठा हूँ कि कहीं व्याह न करूँगा ।"

सेठ की यह बात सुनकर चौधरी बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला, "सेठ जी मैं मन से भरसक प्रयत्न करूँगा और मुझे विश्वास है मेरी बात मानी भी जायेगी ।"

"तो फिर कब तक मेरी बात का उत्तर दोगे ?" सेठ ने प्रसन्नचित कहा ।"

"बस, यही दो-एक दिन में···और यह समझ लो कि काम बन ही जायेगा ।" चौधरी ने विश्वास से उत्तर दिया ।

सेठ कुछ और कहने ही को था कि सामने से चाचा आता दिखाई दिया और बात यहीं समाप्त हो गई । चाचा ने आते ही चौधरी से कहा, "अच्छा तो अब सेठ जी से आज्ञा लो, दोपहर चढ़ी आ रही है ।"

सेठ ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया कि दोपहर को आराम करके दिन ढले जायें, किन्तु वह न रुके और गाँव की ओर लौट गये ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लौटते हुए चाचा और चौधरी एक दूसरे से सेठ की प्रशंसा करते चले जा रहे थे कि चौधरी ने बात पलटी और कहने लगा, "चाचा ! यह सेठ बड़ा भद्र पुरुष है, देखो जवान है, धनी है, पत्नि ढाई तीन वर्ष से मर चुकी है, किन्तु आज तक इसने किसी को कुदृष्टि से नहीं देखा—इसकी कोई बुरी हवा नहीं उड़ी।"

"इसमें क्या सन्देह है और यह वास्तव में बड़ी प्रशंसनीय बात है।" चाचा ने समर्थन किया।

चौधरी—"और शील, देखो कितना है।"

चाचा—"हाँ, देख लो ना हमसे किस सद्भाव से मिला है।"

चौधरी—"हमारी रूपा सुन्दर है। ऐसे ही घर के योग्य है।"

चाचा हार्दिक कामना से बोला—"ऐसा घर कहाँ से लायें, चौधरी जी !"

चौधरी—"लाना कहाँ से है, है जो।"

"इसका अर्थ ?" चाचा आश्चर्य से चौधरी की ओर देखते बोला।

चौधरी—"इसका अर्थ यह कि यदि तुम चाहो तो प्रयत्न किया जा सकता है।"

चाचा—"क्या बातें करते हो यार चौधरी ! बात वह करनी चाहिये जो होती दीखे।"

चौधरी—"होने वोने को तो मैं नहीं जानता। तुम हाँ करो, फिर देखो क्या होता है ?"

"क्या तुम सच कह रहे हो चौधरी ?" चाचा ने आँखों में आँखें डालकर पूछा।

चौधरी—"तो और क्या मैं ठट्टा कर रहा हूँ ?"

चाचा—"यदि तुम्हें इस बात की सचमुच आशा है तो भाई चौधरी, मैं जी-जान से प्रसन्न हूँ।"

चौधरी—"है पक्की बात ?"

चाचा—"हाँ, बिल्कुल पक्की। किन्तु यह बताओ तुम्हें यह सूझी क्योंकर और इस बात के बनने का विश्वास क्योंकर है ?"

चौधरी हँसते हुए बोला—"चाचा अब मैं तुमसे नहीं छिपाता। सेठ ने तो स्वयं यह इच्छा प्रगट की है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपा से खाना परोसने के लिये कहा ।

"और चाची कहाँ चली गई ?" रूपा ने बनते हुए पूछा । चाचा—"वह किसी कार्यवश बाहर गई हैं···जाने कब लौटे ?"

रूपा सुई-धागे दुपट्टे में लपेट कर उठी और चाचा को खाना खिलाने लगी। थाली में खाना और गिलास में पानी लाकर चाचा के सामने रख दिया। फिर कली को ताज़ा किया, चिलम में आग धरी और बाहर छप्पर के नीचे बिछी चारपाई के पास रख आई। चाचा खाना खाकर चारपाई पर जा लेटा और कली पीने लगा। रूपा खाने के बर्तन उठा कर फिर कढ़ाई का काम ले बैठी।

कुछ समय पश्चात् चाची लौटी और सीधी चाचा के पास पहुँची। फिर चुपके-चुपके कुछ बातें करने लगी। अभी कुछ ही समय बीता था कि चम्पा की आवाज़ कान में आई जो बाहर खड़ी चाची से पूछ रही थी, "रूपा कहाँ है ?" रूपा दबे होठों मुस्कराई और वहीं आँगन में बैठे-बैठे पुकार उठी—"इधर आओ चम्पा यहाँ बैठी हूँ, आँगन में।" चम्पा हँसती हुई भीतर आई और चारपाई पर साथ बैठते बोली—"अभी से छिप कर बैठने लगीं ?" रूपा इस वाक्य का अर्थ तो समझ गई, किन्तु मुस्कुरा कर चुप हो रही।

चम्पा ने फिर छेड़ा। दुपट्टे की ओर संकेत करके बोली—"प्रायः अपने कामों की तैयारियाँ स्वयं ही करनी पड़ती हैं।"

रूपा उसकी छेड़ों को भली-प्रकार समझ रही थी और देख रही थी कि वह कैसे धीरे-धीरे बात के ढब को वास्तविक उद्देश्य की ओर ला रही है। उसकी ओर देखकर मुस्कुराई और बोली, "अधिक चतुराई न दिखाओ, सीधी-सीधी बात करो।"

चम्पा हँस कर उससे लिपट गई और बोली, "बड़ी काईयाँ हो रूपा ?"

रूपा—(हँसते हुए) "क्यों, इसमें काईयाँपन की क्या बात है ?"

चम्पा—(हँसते हुए) "अच्छा बताओ तुम क्या समझीं ?"

रूपा—"वही जो तुम समझाने आई हो।"

अब तक तो बातें हँस-हँस कर हो रही थीं, किन्तु, चम्पा कुछ गम्भीर हो गई और बोली, "यह तुम क्योंकर समझी कि मैं कुछ समझाने आई हूँ ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपा ने भी बनावटी गम्भीरता से सुई-धागे पर दृष्टि जमाये उत्तर दिया, "चाची की बुलाई हुई जो आई हो।"

चम्पा हँसी न रोक सकी और खिलखिला कर हँस पड़ी। रूपा भी हँसने लगी।

चम्पा—"अच्छा, तनिक यह दुपट्टा परे रख दो और कुछ बातें कर लो।"

रूपा—"अभी छोड़ती हूँ, दो चार धागे रह गए—ए लो बस शेष फिर करूँगी।" रूपा दुपट्टा लपेट कर उठी और ताक में रखते हुए बोली, "हाँ, अब कह, लो···क्या कहती हो ?"

चम्पा—"कहूँ क्या, तुम सब कुछ जानती ही हो।"

रूपा—"हाँ, मैंने चाचा-चाची की सब बातें सुन ली हैं··· । वह तो भीतर बैठे अपनी बूझ में चुपके-चुपके बातें कर रहे थे और मैं यहाँ बैठी सब कुछ सुन रही थी।"

दोनों हँसने लगीं।

चम्पा—"तो तुम्हारा क्या विचार है ?"

रूपा—"क्या बताऊँ, बड़ी उलझन में हूँ।"

चम्पा—"रूप-रंग का अच्छा है। धन वाला है। अच्छे चाल-चलन का है। अब इसके अतिरिक्त और क्या चाहिए, मैं तो यह कहती हूँ तुम हमारे गाँव में सबसे अधिक भाग्यशाली लड़की हो। हाँ, इस नाते में एक उलझन अवश्य है कि पहली पत्नी से ढाई वर्ष की एक बच्ची है। पर मुझे विश्वास है, कि तुम्हारा प्यार और स्नेह उसे ऐसा बना लेगा कि वह तुम्हीं को अपनी वास्तविक माँ समझने लगेगी।"

रूपा—"मैं इतनी संकीर्ण-हृदया नहीं चम्पा, कि इस नन्हीं-सी बच्ची को अपने लिये उलझन समझूँ। यदि वह बड़ी होती तो भी उसे उलझन न समझती ···मैं स्वयं भी तो ऐसी ही अनाथ थी और दूसरों ने ही अपनी सन्तान समझ कर मेरा लालन-पालन किया है। साफ़-साफ़ कहती हूँ यदि मुझे उस घर में जाना ही पड़ा तो भी उस बच्ची को कलेजे से लगा कर रखूंगी।"

चम्पा—"रूपा ! मेरी प्यारी रूपा ! तुम बड़ी अच्छी हो, बड़ी ही अच्छी, मुझे विश्वास है, कि तुम्हारा आचार-व्यवहार और तुम्हारी शुभ-कामनायें, तुम्हें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इतना ऊँचा उठा ले जायेंगी कि हम तुम पर गौरव किया करेंगी। अच्छा तो वह फिर कौन सी बात है, जिसे तुम उलझन समझती हो और जो तुम्हारे निर्णय में रुकावट बनी हुई है।"

रूपा—"मैं क्या बताऊँ चम्पा बहिन ! बस यही कह सकती हूँ कि मैं कुछ नही बता सकती।"

चम्पा—"बुरा न मानो तो एक बात पूछ लूँ।"

रूपा—"खेद है चम्पा ! यदि तुम्हें मुझसे ऐसी ही शंका थी तो मुझसे बात ही न करनी चाहिए थी।"

चम्पा लज्जित सी हो गई और बोली—"यह बताओ क्या चौधरी के बेटे की ओर विचार है ?"

रूपा—"कदापि नहीं, बल्कि मुझे उससे घृणा है। उसकी अपेक्षा सेठ को मैं आदर की दृष्टि से देखती हूँ।"

चम्पा—"तो क्या इसके अतिरिक्त कोई और बात है ?"

रूपा—"विश्वास करो, ऐसी कोई बात नहीं।"

चम्पा—"तो फिर रूपा ! इस झिझक का कारण क्या है ?"

रूपा—"यही तो मैं बताने से विवश हूँ।"

चम्पा—"फिर वही बात। आख़िर विवश क्यों हो ?"

रूपा—"चम्पा सच कहती हूँ, इसे मैं स्वयं नहीं जानती...बस यह समझ लो कि भीतर से मन नहीं मानता।"

चम्पा—"रूपा ! बड़ा पछताओगी, ऐसा अच्छा घराना न मिलेगा।"

रूपा—"मैं समझी, तुम मुझे ग़रीब जान कर किसी के धन का लालच दिला रही हो, किन्तु विश्वास रखो रूपा की दृष्टि में संसार-भर का धन तुच्छ है। मुझे इस झौंपड़ी में वह सुख है, जो किसी राजमहल में भी न मिलेगा। मैं समझती हूँ कि मेरे इस इन्कार से चाचा-चाची को दुख होगा। मैंने सदा उन्हें अपने माँ-बाप से भी बढ़कर समझा है...परन्तु क्या करूँ, विवश हूँ और क्यों विवश हूँ, यह मैं स्वयं भी नहीं जानती। चम्पा ! मैं नहीं जानती मेरे भाग्य में क्या लिखा है और मेरी मिट्टी कहाँ ठिकाने लगेगी—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहाँ जन्मे, कहाँ पले, कहाँ लड़ाये लाड़,
क्या जाने इस देह के कहाँ गड़ेंगे हाड़ ।

यह कहकर रूपा रो पड़ी और ऐसी अधीर हुई कि सिसकियाँ ले लेकर रोने लगी । चम्पा विस्मित खड़ी उसे तक रही थी कि चाचा-चाची उसके रोने की आवाज़ सुन कर भागे हुए आये ।

५

रूपा के इन्कार ने गाँव-भर में खलबली सी मचा दी । जितने मुँह उतनी ही बातें । स्त्री पुरुष सब की जुबान पर इसी की चर्चा थी । और विशेषत: स्त्रियाँ तो जहाँ कहीं भी चार मिल बैठतीं, वह तालाब का घाट हो अथवा कुएँ की मुण्डेर, बस रूपा ही वार्तालाप का केन्द्र होती । कोई उसकी मूर्खता पर उसे बुरा-भला कहती, कोई उसकी व्यर्थ की हठ की बातें करती, कोई उसके चाल-चलन पर सन्देह करती और चौधरी के बेटे वाली घटना बीच में आ जाती । चाचा-चाची और उधर नगर में सेठ की तो यह दशा थी, मानो बिजली गिर पड़ी हो । हाँ, गाँव में कोई प्रसन्न दीखता था, तो बस चौधरी का बेटा था, जो रूपा के इन्कार को अपना सौभाग्य समझ कर यह आस लगाये बैठा था, कि जब गाँव में उसके विरुद्ध लांछन का ताप उतर जायेगा, तो एक न एक दिन रूपा, उसकी बन जायेगी अथवा बना दी जायेगी ।

चाचा के घर की यह दशा थी कि जिस घर से साँझ-सवेरे प्राय: रूपा के गीतों तथा सोने-चाँदी के फूल बखेरने वाले ठहाकों की ध्वनियाँ उठा करती थीं,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वहाँ अब मृत्यु का सा सन्नाटा रहने लगा। घर में तीन व्यक्ति थे और तीनों ही की यह दशा थी कि इस घर में एक दूसरे से अलग-अलग दीखते थे। चाचा छप्पर के तले, कली की नड़ी मुँह से लगाये गुम-सुम पड़ा रहता। चाची रसोई-घर में चूल्हे से लगी सिर पकड़े बैठी रहती और रूपा चुपचाप काढ़ने में लगी रहती। यदि किसी ने दिन को दो चार ग्रास खाने के गले में उतार लिये तो रात को बिना खाये पड़ रहे और यदि रात को कुछ खा लिया तो दिन का खाना बंद।

जब से चौधरी के बेटे वाली घटना हुई थी, चाची ने रूपा का गाँव में निकलना और फिरना बन्द कर दिया था, यहाँ तक कि जब सवेरे-शाम कुएँ पर पानी भरने जाती, तो चाची भी साथ जाती। गाँव की साथ खेली लड़कियाँ रूपा के पास उठने-बैठने के लिये उसी के घर आ जाया करती थीं, किन्तु चाचा-चाची की चिन्ताओं ने उनके पाँव भी रोक लिये। हाँ, चम्पा निरन्तर आती रही, पर व्याह के विषय में फिर उसने कभी रूपा से बातचीत न की।

ऐसे ही घन्टों और पहरों से दिन, दिनों से सप्ताह और सप्ताहों से महीने बनकर बीतते रहे। समय का चक्र बड़ी वस्तु है, यह बड़ी-बड़ी विवशताओं को भुला देता है, कठोरताओं को नम्रता में परिवर्तित कर देता है। आखिर गाँव में किसी को रूपा से कोई बैर तो था ही नहीं। चाचा-चाची का तो कहना ही क्या, वह तो उसको देख-देख कर जीते थे। रूपा फिर वही रूपा थी, सखियाँ वही सखियाँ, और चाचा-चाची फिर वही चाचा-चाची। जीवन धीरे-धीरे उसी ढब पर आ रहा, जिस पर पहले था, घर का वातावरण भी बदल गया और सखियों का जमघट भी रहने लगा।

एक दिन, साँयकाल, कुएँ पर पानी भरने वालियों की भीड़ थी। कुछ घाटों पर पानी भर रही थीं और कुछ घाटों के खाली होने की प्रतीक्षा में इधर-उधर दो चार की टोलियाँ बनाये खड़ी बातें कर रही थीं। सामने नगर से आने वाली सड़क पर से एक बूढ़ा आता दिखाई दिया। श्वेत लम्बी दाढ़ी, पीठ पर लिपटा हुआ कम्बल, कंधे पर झोला लटकाये, एक हाथ में हुक्का और दूसरे हाथ में लठिया सँभाले चला आ रहा था। सबकी आँखें उसकी ओर उठ गईं। बूढ़ा अजनबी न था, सब का जाना पहिचाना था। बहुत सयाना, जड़ी बूटियों द्वारा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुराने ताप को जड़ से उखाड़ देने, साँप बिच्छू के विष और भूत चुड़ैल के प्रभाव को मन्त्रों से दूर करने और हस्तरेखा से भाग्य पढ़ने में विशेषज्ञ समझा जाता था। आज वर्षों के बाद इसका इधर आना हुआ था। मुस्कुराता हुआ सीधा कुएँ की ओर आया। किसी ने हाथ जोड़े, किसी ने केवल माथे पर हाथ रखना ही पर्याप्त समझा, किसी ने हँस कर स्वागत किया। कोई बड़े भैया, कोई चाचा और कोई बाबा के नाम से सम्बोधन करके उसकी कुशलता पूछने लगी। बूढ़े ने भी खिले हुए मुख से सब के घरों और बच्चों की कुशल पूछी। एक हँसकर बोली, "बड़े भैया! आज किधर भूल पड़े। बहुत दिनों में चाँदनगर याद आया। हम तो सोचा करती थीं, क्या बात है, बड़े भैया क्यों नहीं आये?" एक अल्हड़ बोल उठी—"हम तो समझ बैठी थीं कि बाबा जी परलोक सिधार गये।" सब हँस पड़ी, बूढ़ा भी हँसने लगा। बूढ़े ने कम्बल की गठड़ी एक ओर उतार कर रखी। पाँव की मिट्टी झाड़ कर झोले से चिलम, तम्बाकू और कोयले की थैली निकाली और हुक्का एक लड़की की ओर बढ़ा कर बोला—"लो बिटिया। इसका पानी तो बदल डालो।" लड़की ने हुक्का थाम लिया। एक स्त्री बोल उठी, "हाय! बड़े भैया गाँव में न चलोगे क्या?" बूढ़ा बोला—"हाँ बहना! आज रात को तो सामने बहारपुर में विश्राम करूँगा। एक रोगी को देखना है।"

बुड्ढे ने कोयलों पर कपड़े की धज्जी रखकर दियासिलाई से उसे आग दिखाई और भड़काने लगा। वह स्त्री फिर बोली, 'बड़े भैया! मैंने तो अपनी पोती को दिखाना था, छः महीने से खाँसी में तड़प रही है।" दूसरी बोल उठी, इतने दिनों पश्चात आये हो चाचा! एक-आध दिन तो रुकते। मेरे छोटे बच्चे को फुंसियों ने दुखी कर रखा है।" "हाँ, हाँ, आऊँगा" बुड्ढे ने आग भड़काते हुए उत्तर दिया।

लड़की हुक्का ताजा करके ले आई। बुड्ढे ने चिलम में तम्बाकू जमा कर आग रखी और बैठकर पीने लगा। स्त्रियाँ उसके पास ही बैठ गईं और इधर-उधर की बातें होने लगीं।

एक ने अपना हाथ बढ़ाकर भर्राये हुए स्वर में कहना आरम्भ किया—"चाचा! मेरा हाथ देखो, हम बड़ी मुसीबत में फँसे हुए हैं। एक भैंस एकाएक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मर गई। धान की फ़सल कीड़े ने नष्ट कर दी। एक बैल को फाली लग गई और वह लँगड़ा बना घर खड़ा है। आगे की जुताई का काम यूं पट हो गया...बस हमारा तो ईश्वर ही रक्षक है।"

बुड्ढे ने हाथ थाम कर देखना आरम्भ किया और थोड़ी देर बाद सोच कर बोला—"कुछ चिन्ता न कर बेटा! ग्रह का चक्र समाप्त हो गया है, अब भगवान ने चाहा तो अच्छा ही अच्छा है।"

रूपा की चाची को हर समय रूपा की ओर से उधेड़-बुन लगी रहती थी। यह अवसर देखकर उसके मन में भी बवंडर सा उठने लगा। रूपा मचलती ही रह गई, किन्तु चाची ने हाथ घसीट कर उसे बुड्ढे के सामने ला ही बिठाया और बोली—"बड़े भैया! बताओ तो सही, मेरी रूपा का ब्याह कब होगा?"

बुड्ढे ने ध्यान पूर्वक देखकर रूपा को पहचाना और हँसते हुए उसके सिर पर हाथ फेर कर बोला—"अरी, तू रूपा है? तू तो जवान हो गई बँदरिया।" इस पर सब हँसने लगीं और रूपा संकोचवश नीची दृष्टि करके मुस्कुराने लगी।

चाची हँसते हुए बोली—"बड़े भैया तुम वर्षों बाद आये हो, लड़की और ककड़ी की बेल तो रात बसे में कहीं से कहीं पहुँचती है।"

सब हँसने लगीं। बुड्ढे ने रूपा का हाथ थाम लिया और ज्योंही हाथ पर दृष्टि डाली, उसकी आँखें आश्चर्य से फटी की फटी रह गईं। भवें ऊपर को तन गईं, और माथा सलवटों से भर गया। बड़े ध्यान से हाथ को बार-बार देखता था। कभी हथेली को फैला कर रेखाओं पर दृष्टि डालता, कभी हथेली को ढीला करके उनका निरीक्षण करता। कभी उसका ध्यान उसकी लम्बी लम्बी सुकुमार उँगलियों पर और कभी हथेली के उन उभारों की ओर होता जो हथेली के दोनों किनारों पर स्पष्ट थे। लगातार ध्यान पूर्वक देखते रहने के पश्चात् उसने दूसरा हाथ देखा और फिर उसके माथे पर आँखें गाड़ के देखता रहा। आखिर उसने हाथ छोड़ दिया और बोला—"बस, बेटा! बैठो।"

रूपा खिसक के पीछे हट गई। न जाने उसके मस्तिष्क में क्या-क्या विचार घूम रहे थे किन्तु, इतना उसके मुख से अवश्य प्रगट हो रहा था कि वह बड़ी बेचैन है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बुड्ढा बैठा हुआ सोच रहा था, और कभी-कभी हुक्के की नाड़ी से गुड़-गुड़ कर लेता और फिर गहरे विचारों में डूब जाता। सब स्त्रियाँ मूर्त्तिवत चुपचाप बैठी थीं। उनकी दृष्टि कभी रूपा पर, और कभी बुड्ढे पर जम जाती थी। चाची, यह सब देखकर बड़ी व्याकुल हो रही थी। कुछ देर तो वह भी बैठी देखती रही और फिर स्वयं ही मौन को तोड़ते बोली—"बड़े भैया ! इतना तो बता दो, मेरी रूपा की कुशल भी है।"

बुड्ढा खिलखिला कर हँस पड़ा और बोला—"पगली बहना ! कुशल क्यों नहीं ? सब कुशल है।"

"तो फिर बड़े भैया ! तुम इतने चिन्तित क्यों हो ?"—चाची ने व्यग्र भाव से पूछा।

बुड्ढा फिर चुप रहा और हुक्का पीता रहा। चाची ने कुछ देर तो प्रतीक्षा की और फिर व्याकुल होकर बुड्ढे के पाँव में गिर पड़ी, और रोने लगी। बुड्ढा चौंका, और उसे पकड़कर उठाते हुए बोला—"अरी ! क्यों पगली हुई है। सुन ! इस लड़की का हाथ मत दिखाईयो···तेरी रूपा बड़ी भागों वाली है···बड़ी भागों वाली।" इतना कहकर बुड्ढा चुप हो गया और हुक्का पीने लगा। चाची के मुख पर प्रसन्नता की तरंग दौड़ गई और वह हर्ष से फिर बुड्ढे के पाँव पर गिर पड़ी।

बुड्ढा घबरा कर उठ खड़ा हुआ, और चाची का हाथ पकड़ कर उठाते हुए कहने लगा—"बहना ! तेरी रूपा रानी है, रानी !" यह कहकर, उसने झुककर झोला और कम्बल उठाया, लठिया बग़ल में दबाई और खड़ा हो गया। सब स्त्रियाँ भी उठ खड़ी हुईं। बुड्ढे ने रूपा पर दृष्टि डाली जो आँखें झुकाये खड़ी थी। और लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए मुस्कुरा कर बोला—"बेटा इस बुड्ढे को न भूलना।"

बुड्ढा हुक्का पीता, धुआँ छोड़ता चला जा रहा था और सब खड़ी उसे तक रही थीं। जब वह झाड़ियों में आँखों से ओझल हो गया, तो सबकी सब हँसती हुई कुएँ पर जा चढ़ीं और रूपा की चाची को बधाई देने लगीं। चाची हँस रही थी और हर्ष से फूली न समा रही थी। किन्तु रूपा की दशा सबसे भिन्न थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूखे होंठ, पीला मुख, हवाइयाँ सी उड़ती हुई, खोई-खोई सी ! एक दो सखियों ने जब उससे चिपट कर 'रूपा रानी' 'रूपा रानी', जो कहा तो उसकी आँखें डबडबा गईं। सब विस्मित थीं कि उसकी यह दशा क्यों है और कोई कुछ न समझ सकी। चाची ने लड़कियों से कह कर शीघ्र अपने घड़े भरवाये और रूपा को लेकर घर की ओर चल दी।

६

रूपा के इन्कार की घटना अपने ढंग की अनोखी घटना थी। इसकी सूचना सेठ को भी तुरन्त शहर में पहुँच गई थी। चाचा-चाची तो कलेजा थाम कर रह ही गये थे पर इन से बढ़ कर बिजली सेठ पर गिरी कि उसकी प्रार्थना का यूँ ठुकरा दिया जाना न केवल मन को ठेस पहुँचाने वाला था, बल्कि अपमानजनक भी था। इस विषय में वह चौधरी के अतिरिक्त किसी से भी बातचीत न करना चाहता था। कई दिन के पश्चात् जब चौधरी शहर जाकर सेठ से मिला और उनका आपस में विचार-विमर्श हुआ। वे दोनों हैरान थे कि किसलिए वह लड़की अपना भविष्य बिगाड़ने पर तुली हुई है। वह कौन-सा ऐसा रहस्य है कि जिसे वह प्रगट नहीं करती। नियम है, जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, तो दुनियाँ वाले भाँति-भाँति के अनुमान लगाने लगते हैं। कोई न कोई कारण घड़ लिया जाता है और विचारों की दौड़ चारों ओर आरम्भ हो जाती है। सेठ कहने लगा—"यूँ तो चौधरी जी ! मेरा भी गाँव में आना-जाना हर समय का है। बच्चे-बच्चे को जानता हूँ, किन्तु; तुम्हारी अपेक्षा मेरा ज्ञान इतना गहरा नहीं हो सकता। क्योंकि तुम्हारा वहीं का रहन-सहन है। दूसरा यह कि तुमने जग देखा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है, भला यह तो बताओ कि इस लड़की के चाल-चलन में किसी प्रकार की आशंका भी कभी तुम्हें है।"

चौधरी—"नहीं सेठ जी, कभी नहीं। मैं यह बात विश्वास से कह सकता हूँ, यह लड़की बड़ी अच्छी है। यद्यपि, इसके चाचा ने इसे नाचने-गाने की शिक्षा स्वयं भी दी, और दूसरों से भी दिलवाई है। इसे हर प्रकार की स्वतन्त्रता भी है. फिर भी यह बात बड़ी प्रशंसनीय है कि वह दूसरी लड़कियों से अधिक लजीली और पवित्र है।"

सेठ—"जिन लोगों ने इसे शिक्षा दी वह कौन थे ?"

चौधरी—"यह क्या बताऊँ वह कौन थे। चाचा ने कईयों को समय-समय पर अपने घर रखा। कोई फ़ारसी और संस्कृत का अध्यापक, कोई गणित का, कोई कवि और कोई रागी—बस यही लोग थे—यह बात पूछने से तुम्हारा अर्थ क्या है ?"

सेठ—"मेरा अर्थ यह है, कि सम्भव है कि इनमें से कोई व्यक्ति ऐसा हो, जिस पर यह लड़की आकृष्ट हो।"

चौधरी हँस पड़ा और बोला—"नहीं, नहीं। यह शंका तो मिथ्या है। वे सब तो बुड्ढे थे। बुड्ढे भी कैसे थे, खूसट। और यूँ भी बहुत भले लोग। वर्षों जो गाँव में रहे क्यूँ कर न पहिचाने जाते।"

सेठ—(सोचकर) "आश्चर्य है फिर क्या बात है ?"

चौधरी—"आश्चर्य सा आश्चर्य, सारे गाँव को अचम्भा-सा हो रहा है।"

सेठ—चौधरी जी। कुछ हो, थाह में कुछ न कुछ बात अवश्य है।"

चौधरी—"बस एक बात मेरे मस्तिष्क में आती है।"

सेठ—"क्या ?"

चौधरी—"सब जानते हैं कि यह लड़की अच्छी कवि भी है। फ़ारसी इत्यादि तो मैं ऐसी कुछ नहीं जानता। हाँ, भाषा के जो दोहे उससे सुने हैं उससे यह अनुमान लगाना सहज है, कि इस लड़की का विचार कुछ इस प्रकार का है, कि धन-दौलत को बड़ा कष्टप्रद समझती है। संसारिक सुख को ढलती-फिरती छावँ और जीवन को माया। सम्भव है कि इन्हीं विचारों के कारण उसे गृहस्थ से भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अरुचि हो। दूसरी बात यह है कि इसे चाचा-चाची से बड़ा अनुराग है। यद्यपि बड़ी हो गई है, फिर भी अभी प्यार में उनसे बालकों का-सा हठ करती है। इस से अनुमान लगाया जा सकता है कि वह चाचा-चाची से अलग नहीं होना चाहती।"

रूपा के इन्कार ने सेठ जी को बड़ा दुख पहुँचाया, किन्तु उसके मन में उसके प्रति सम्मान और भी बढ़ गया, और हर मूल्य उसे प्राप्त करने की चाह ने उसके हृदय में अंगारे से दहका दिये। बार-बार करवटें बदलता था, सोचता था, किन्तु कोई विधि ऐसी सुझाई न देती थी जो सफल हो। कहने लगा—"चौधरी जी! तुमने जो कुछ मेरे लिए किया, उसका मैं आभारी हूँ। तुम्हारे उपकार कभी न भूलूँगा, परन्तु; इतना फिर कहता हूँ कि तुम अपनी ओर से प्रयत्न करते रहना। सम्भव है कि समझाने-बुझाने और कहने-सुनने से किसी समय उसके विचार में परिवर्तन हो जाये। निरन्तर पानी की बूँद-बूँद भी पत्थर की सिल में छेद कर देती है।"

चौधरी—"सत्य है सेठ जी! मैं अपना प्रयत्न चालू रखूँगा। किन्तु जहाँ तक इस लड़की को मैं जानता हूँ, वह बड़ी हठ वाली है। अपने निश्चय से पलटने वाली नहीं।"

सेठ—"हाँ! ऐसी ही होगी। किन्तु जीवन में प्राय: यह देखने में आता है, कि हम-तुम कोई दृढ़-निश्चय भी कर लेते हैं, तो परिस्थितियाँ बाद में वह बदलने पर भी विवश कर देती हैं। सत्य यह है कि हमारे निश्चयों को बदलने वाली, और उनमें बाधा देने वाली एक ऐसी दैवी-शक्ति भी होती है जो काम करती रहती है और जिसके अधिकार से हम पल भर के लिए भी स्वतन्त्र नहीं हो सकते। यदि भाग्य से यह कार्य हमारे पक्ष में होना लिखा है, तो अवश्य होकर रहेगा। यत्न तो करना ही होगा। आगे भगवान की इच्छा।"

चौधरी—(हँसते हुये) "सेठ जी! हो तो युवक, पर बातें तो बड़ों की सी करते हो। तुम्हारे कहने से मुझे कुछ अपनी घटनायें याद आ गई। मेरा एक बैल था, अल्प-आयु, सुन्दर और बहुत चतुर। हाथ पाँव का बड़ा सुथरा और मेरे मन चढ़ा, इसके बड़े-बड़े मूल्य पड़े, पर मैंने कभी उसे देना न चाहा। एक दिन कहीं खुल गया। पास वाले गिरे हुए मकान के मलबे से होता हुआ छत पर जा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पहुँचा। तुम जानते हो यह बात कितनी अशुभ होती है। अड़ौसी-पड़ौसी सभी इस बात की चर्चा करने लगे। विवश होकर उसे बहुत ही थोड़े मोल पर बेचना पड़ा। मन बहुत दुखा। और एक दिन ऐसा हुआ कि इधर चौधरानी के बच्चा हुआ और उधर भैंस दूध से भागी। छिल्ले में दूध-घी का घर में होना बड़ा आवश्यक है। दूसरी भैंस की खोज हुई। बहुत देखा-भाला न मिली। एक भैंस बहुत समय से गाँव में बिकाऊ थी किन्तु, उस में सब से बड़ा दोष यह था, कि मारती थी। दूध-घी की भी ऐसी अच्छी न थी इसलिए कोई ग्राहक न बनता था। आवश्यकता थी, इसलिए इच्छा के विरुद्ध भी लेनी ही पड़ी, और दाम भी अच्छे ही लगे। इससे मारें भी खाईं, चोटें भी सहीं, परन्तु रखी और अब तक है। बेचना चाहता हूं, पर कोई ग्राहक नहीं बनता।" सेठ मारे हँसी के लोट-पोट हो गया और चौधरी भी हँसने लगा।"

सेठ—"अच्छा, अब यह बताओ कि कौन सी विधि अपनाई जाये ?"

चौधरी—"कोई नई विधि तो मुझे नहीं सूझी, यदि तुम कुछ बता सको तो······।"

सेठ—"मेरा विचार तो यह है, कि तुम चाचा पर दबाव डालते रहो।"

चौधरी—"यह तो करता ही रहूंगा। किन्तु रूपा की इच्छा के विरुद्ध, चाहें चाचा हो या चाची, दोनों में से एक भी बाल-भर इधर से उधर नहीं हो सकते।"

सेठ—"फिर वही बात। तुम केवल उन पर दबाव डालते रहो और वह रूपा को समझाने का प्रयत्न करते रहें! हमें तो बस इतना ही कहना है।"

चौधरी—"हाँ, यह तो होता ही रहेगा, किन्तु, सफलता की आशा थोड़ी ही है।"

सेठ—चौधरीजी, बड़े भोले हो। हमें सफलता का वचन तो नहीं लेना, यदि होनी है तो हो जायेगी, नहीं होनी तो नहीं। हमें तो यत्न करना है।"

चौधरी—"हाँ यह बात मैं मानता हूँ।"

सेठ—"यदि उचित समझो तो गंगू से भी कह दो कि ध्यान रखे। मैं स्वयं उससे नहीं कहना चाहता।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चौधरी—"बड़े दिन से तुम गाँव में भी नहीं आये। कभी लगाओ न चक्कर।"

सेठ—(कड़वी हँसी से) "क्या कहूँ चौधरी, कुछ झेंप सी हो गई है।"

चौधरी—"वाह! झेंप काहे की।"

सेठ—"यही एक बात जीवन में मुंह से निकली थी, वह भी परवान न चढ़ी। अपमान भी हुआ, लज्जित भी होना पड़ा। यदि यह बेल मँढे चढ़ जाती तो अच्छा ही था।"

चौधरी—"ऐसे विचार नहीं रखने चाहियें सेठ जी। यह तो संसार के धँधे हैं, यूं ही चल के आये हैं और यूं ही चलते रहेंगे।"

सेठ हँस पड़ा और कोई उत्तर न दिया।

७

चाँदनगर और उसके आस-पास के गाँव में बुड्ढे बाबा पर कुछ ऐसा विश्वास था, उसके मुँह से निकली हर बात पत्थर की लकीर समझी जाती थी चाची पर बधाई के इतने मैंह बरसे, कि जिनकी कोई सीमा न रही। सारे गाँव में यही चर्चा बच्चे-बच्चे की जुबान पर कई सप्ताह तक रही। उस दिन कुएँ पर चम्पा न थी, किन्तु सखियों द्वारा बुड्ढे बाबा का हर शब्द उसके कानों तक पहुँच चुका था। और उस समय जो दशा रूपा की थी, वह भी उसे ज्ञात हो गई थी।

रूपा के चाचा-चाची पर पिछले महीनों निराशा की जो घटनायें छाई रहीं वह एकाएक छट गईं। अब वही मन की खिलन थी और वही हर्षोल्लास।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चाचा-चाची के मुँह की खिलन फिर वापिस आ गई थी हर दिन का सूर्योदय, उनकी आशा के उपवन में नई बसन्त लेकर प्रकट होता। किन्तु वह अनुभव करते कि रूपा कुछ बुझी-बुझी रहती है। उसकी मनोदशा उन्हें काँटे की भाँति खटकती थी।

सखियाँ आ जातीं, तो रूपा उनसे दो घड़ी हँस-बोल लेती और उनके जाने के बाद फिर वही मुरझाई-सी। चाची ने एक-दो बार पूछा भी, पर वह न खुली और बात को हँस कर टाल गई। अन्त में चाची ने फिर चम्पा से सहायता ली और कहा कि वह उसकी चिन्ता का कारण पता करे। एक दिन उसे अकेले पा-कर चम्पा ने बात आरम्भ की। कहने लगी—"रूपा यदि मेरी कोई सगी बहन होती तो विश्वास करो मुझे उससे उतना ही स्नेह होता जितना तुम से है। मैं जिस मानसिक उलझन में तेरे को देख रही हूँ। वह मेरे लिए बहुत दुखदायी है। मैं अब तक इस प्रतीक्षा में रही, कि शायद तुम भी मुझे अपना जानकर, कभी न कभी अपने मन की दशा वर्णन करोगी। किन्तु मुझे बड़ी निराशा हुई कि तुमने मुझे इस योग्य न समझा और आज तक चुप साधे हो। मैं अब भी तुम से न पूछती पर यूं विवश हो गई कि मैं अब जाने वाली हूँ। तुम्हारे बह-नोई का संदेश आ चुका है। वह कुछ दिन में आकर मुझे ले जायेंगे। इसलिए मन न माना, कि तुम्हारा दुख जाने बिना चली जाऊँ और यह काँटा मेरे हृदय में खटकता रहेगा। क्योंकि न जाने अब बिछड़ने के बाद हम तुम कब मिलें। यदि तुम्हें भी मेरे दुख का कुछ मान हो तो बता दो तुम्हें किस बात का दुख है?"

रूपा पर चम्पा की बात का ऐसा प्रभाव हुआ कि उसकी आँखें भर आईं। कुछ समय के बाद अपने मन को ठहरा कर उसने उत्तर दिया—"चम्पा बहन, मैं हाथ जोड़ कर तुम से क्षमा माँगती हूँ, कि मेरे कारण ही तुम्हें दुख पहुँचा। किन्तु सच जानो मैं इस कारण से अब तक अपने मन का हाल छिपाये रही कि मैं न चाहती थी कि तुम्हें भी अपने साथ चिन्ता में डालूं। क्योंकि मेरा दुख इस प्रकार का है कि इसका इलाज किसी के बस का नहीं। परन्तु अब सब सुना दूंगी। पहिले यह बता दो कि तुमने मुझे क्षमा भी कर दिया है या नहीं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चम्पा का भी जी भर आया। आँखें डबडबा आईं। आगे बढ़कर प्यार से लिपट गई, और उसका माथा चूम कर बोली—"रूपा, मेरी रूपा! मैंने तुम्हें मन से क्षमा कर दिया।"

"रूपा ने गम्भीरता से कहना आरम्भ किया—"मैं तुम्हारा धन्यवाद करती हूँ बड़ी बहन! अच्छा अब लो मेरे दुख की कहानी सुनो! लगभग एक वर्ष से मैं सपनों के संसार में खोई हुई हूँ, जिससे मेरे मन का सुख और चैन लुट चुका है—एक विशाल महल के पिछवाड़े के उपवन में एक ऐसे सुन्दर युवक को अपने सम्मुख खड़ा हुआ पाती हूँ, जिसके सौंदर्य के तेज से आँखें चुंधिया जाती हैं। श्वेत, रेशम के वस्त्र, सिर पर हीरों का जड़ित मुकुट, गले में मोतियों की माला। कटि में जड़ाऊ कटार, होठों पर मुस्कान। मुझे ऐसी दृष्टि से देखता है, जिसे मैं सहन नहीं कर पाती। मुझे अपना शरीर उसकी दृष्टि के प्रभाव से ऐसे पिघलता हुआ अनुभव होता है, कि जैसे सूर्य की किरणों से बर्फ पिघलती है। उसके नयन-बाण मेरे हृदय में उतरते प्रतीत होते हैं। फिर, जब वह आगे बढ़ कर मेरे कन्धे पर हाथ रखता है, तो मैं बखान नहीं कर सकती कि उसके हाथ का स्पर्श मेरी आत्मा को कैसे अपने में समा लेता है। वह दशा जागने के बाद भी नहीं बदलती। बल्कि इसका प्रभाव मुझ पर दिनों रहता है। मैं यह भी देखती हूँ, कि यही हाथ देखने वाला बुड्ढा-बाबा, गुलाब के पौधे के पीछे खड़ा बार-बार अपनी लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेरता है और मुस्कुराता है।"

"उस दिन सायंकाल जब मैंने इस बाबा को दूर से आते हुए देखा, तो मुझे यही सपना याद आ गया और मेरी मनोदशा बदलने लगी। फिर जब चलते हुए मेरी ओर देखकर मुस्कुराया और उसने अपनी लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेर कर मुझ से यूं कहा, "बेटा इस बुड्ढे को न भूलना तो मेरी आँखों में वही समाँ फिर गया, जो मैं सपनों में देखती रहती हूँ।"

"यह सपना बिना किसी परिवर्तन के हर दूसरे-तीसरे महीने मुझे दिखाई देता है और निष्क्रिय कर जाता है। मेरा जी किसी काम में नहीं लगता। बस यही चाहती हूँ, कि कपड़े फाड़ कर निकल जाऊँ और जंगलों में रोती फिरूँ। चम्पा! कुछ पता नहीं वह कौन है? मैं उसे कब देखूंगी? वह मुझे कब मिलेगा,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहाँ मिलेगा और कब मिलेगा ?"

इतना ही कह पाई थी, कि उसका हृदय भर आया, गला रुँध गया और आँसुओं के मोटे-मोटे कण गालों पर ढलक गये ।

चम्पा, चकित हो मूर्ति बनी उसे तक रही थी । कुछ समझ में न आता था कि उसे क्या कहे । आखिर बोली—"रूपा ! मुझे आश्चर्य हो रहा है, कि तुम जैसी बुद्धिमति और पढ़ी लिखी लड़की किस भ्रम में पड़ गई है । किसी कल्पना पर अपने को कष्ट में डालना और स्वयं भविष्य को बिगाड़ना, कहाँ की बुद्धिमानी है ? मैं अब समझी कि तुम ने सेठ का नाता इसी भ्रम के आधार पर ठुकराया था । साफ़ कहती हूँ कि बड़ी भूल की । और अब भी कुछ नहीं बिगड़ा, बात फिर हाथ आ सकती है ।"

इतनी देर में रूपा के मन में कुछ ठहराव आ गया था । कुछ रुक कर उस ने बात फिर चालू कर दी—"चम्पा ! तुम मुझे बहलाना चाहती हो, और मेरे सपनों को भ्रम बता कर, मुझे पथभ्रष्ट करने का प्रयत्न करती हो । यह सब व्यर्थ है । यदि मैंने आत्मिक ज्ञान की यह पुस्तकें न पढ़ीं होती तो मैं तुम्हारे बहलावे में आ सकती थी । मैं सपनों के सत्य से भली प्रकार परिचित हूँ । मैं जानती हूँ, कौन से सपने भ्रम से उत्पन्न होते हैं और कौन से वास्तविकता के प्रतीक—अभी तो मैंने सपने का एक ही भाग सुनाया है । दूसरा भाग वह है, जिसकी कल्पना में तुम्हें याद होगा मैंने उस दिन कहा था,

कहाँ जन्मे कहाँ पले, कहाँ लड़ाये लाड़,
क्या जाने इस देह के कहाँ गड़ेंगे हाड़ ।

यह दूसरा भाग इतना भयप्रद है, चम्पा ! कि उसकी कल्पना ही से मैं काँप उठती हूँ । किन्तु; तुम्हें चूंकि सुनाना ही है, इसलिये सुनाती हूँ ।"

मैं देखती हूँ रण-स्थल है, और मैं भी इस सुन्दर युवक के साथ ही एक घोड़े पर सवार हूँ । लोहे से लोहा टकरा रहा है । तोपों की गरज से धरती दहल रही है । कानों के पर्दे फटे जाते हैं । वातावरण धूआँधाड़ हो रहा है, लाशों के ढेर पर ढेर लग रहे हैं । सुन्दर युवक बार-बार घोड़े को ऐड़ लगाकर आक्रमण करता है, शत्रुओं के घेरे में डूब-डूब कर निकलता है और हर बार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुझसे कहता है, 'प्रिये ! तुम यहाँ से चली जाओ ।' एकाएक फिर शत्रु का हमला होता है। वह फिर झपटता है, यहाँ तक कि मेरी दृष्टि से ओझल हो जाता है। शत्रु मुझ पर पिल पड़ते हैं और मैं उनसे लड़ती हुई घावों से चूर हो कर घोड़े से गिर पड़ती हूँ।"

इतना कहकर वह रुक गई और हृदय पर हाथ रखकर कहने लगी, "आह चम्पा ! फिर मैं अपने आपको, एक पत्थर के दुर्ग में बंदी देखती हूँ और इस सुन्दर युवक के लिए दुर्ग की दीवारों से सिर टकराती फिरती हूँ कि एकाएक एक अनोखी बला मेरे सामने उत्पन्न होती है, जिसका शरीर मानव का, केवल मुख भेड़िये का है। मुंह फैलाए, दाँत निकाले और आँखों से आग बरसाती मुझ पर झपटती है। मेरे हाथ में न कटार है, न तलवार। इधर से उधर निहत्थी दौड़ती फिरती हूँ। कोई मेरी सहायता को नहीं दौड़ता और वह है कि मेरा पीछा ही किये जा रही है।"

"बस चम्पा ! यहाँ मेरे स्वप्न का यह भाग समाप्त हो जाता है। और जब मेरी आँख खुलती हैं तो मैं अपने को पसीने से लथ-पथ पाती हूँ। यह दोनों स्वप्न कभी मुझे इकट्ठे नहीं आते। पहले-पहला भाग, इसी रूप में, फिर कुछ दिन बाद दूसरा भाग, इसी रूप में। यह क्रमशः ऐसे ही आते हैं। बताओ मेरे सपनों को क्या तुम अब भी भ्रम कहोगी ? मैं अपने सपने के पहिले भाग से भयभीत अवश्य हूँ, किन्तु यह जान कर कि भाग्य का लिखा कोई नहीं मिटा सकता इसलिए इतनी अधीर भी नहीं हूँ। मेरी चिंता और व्याकुलता का कारण स्वप्न का पहिला भाग है। यह विश्वास है, कि वह सुन्दर युवक मुझे मिलेगा तो सही, किन्तु ; चम्पा यह बताने वाला कोई नहीं कि वह कौन है ? कब मिलेगा ? कहाँ मिलेगा ? क्योंकर मिलेगा ?" उस की आँखों के सोते फिर फूट पड़े और वह बेसुध सी होकर घुटनों में सिर देकर बैठ रही।

चम्पा स्वप्न को भ्रम से अधिक कोई महत्व न देती थी। जब रूपा कुछ शान्त हुई तो उसने फिर कहा—'बहन, यह तो सब भ्रम है। तुम व्यर्थ मन को अशान्त करती हो।"

रूपा उसकी ओर देखकर मुस्कराने लगी और बोली—"चम्पा ! तुमने तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निर्णय दे दिया कि स्वप्न केवल भ्रम होता है। किन्तु ऐसा नहीं है। प्रकृति ने इस भौतिक-संसार के अतिरिक्त एक आत्मिक-संसार भी बनाया है जिसको हम ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव नहीं कर सकते। उस संसार की हर वस्तु अलौकिक है, भौतिक नहीं जिसे हम केवल अन्तर द्वारा ही अनुभव कर सकते हैं। तुम आश्चर्य करोगी कि अलौकिक शरीर का होना क्योंकर सम्भव है। इस का उदाहरण तुम्हारे शरीर का वह प्रतिबिम्ब है, जो तुम्हें दर्पण में दिखाई देता है कि शरीर तो है, परन्तु भौतिक नहीं। ऐसे ही अन्तर में भी एक दर्पण होता है जहाँ वास्तव में घटने वाली घटना का पहले ही प्रतिबिम्ब आ जाता है। प्राय: यूं होता है कि हमें कुछ घटनाओं का पूर्व-ज्ञान हो जाता है वह उसी अन्तर के दर्पण का प्रतिबिम्ब नहीं तो क्या है? मनुष्य दो शक्तियों का मिश्रण है, दानवी और दैवी। पहली शक्ति केवल शारीरिक आवश्यकताओं तक सीमित है, इससे आगे नहीं, किन्तु दूसरी शक्ति के चमत्कार विचित्र हैं, यह असीम है। कल्पना द्वारा यह हमें दूर-दूर के स्थानों की सैर कराती है, अभी पूर्व में तो अभी पश्चिम में, अभी उत्तर में है और अभी दक्षिण में, अभी धरती पर है और अभी आकाश पर। अवतारों और पैग़म्बरों की अग्रसूचनायें इसी शक्ति का परिणाम हैं। हमारी आत्मायें उन पवित्र आत्माओं की अपेक्षा बहुत दुर्बल हैं, इसलिए सपनों की आश्रित हैं।"

इतना कहकर, रूपा रुककर, चम्पा को देखने लगी, जो स्तब्ध—बिना हिले-डुले—बैठी उसको तक रही थी। फिर बोलने लगी—"कहो, कुछ समझीं या और समझाऊँ?" वह फिर भी चुप रही और उसके मुख पर दृष्टि जमाये सोचती रही। रूपा फिर बोली—"अच्छा, एक बात और सुन लो, तुम्हारे अनुसार यदि हर सपना भ्रम ही होता, तो किसी धार्मिक पुस्तकों में इसका वर्णन न होता पर हम देखते हैं कि हर धार्मिक पुस्तक में सपनों का भी वर्णन होता है। भ्रम केवल वह सपने होते हैं जो वासना के भावों के अधीन उत्पन्न होते हैं।"

चम्पा निरुत्तर होकर हँसने लगी और बोली—"मैं तुम्हारी बातों को मानती हूँ, पर पूछती हूँ कि जब तुम्हें विश्वास है कि तुम्हारा सपना सच्चा है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तो तुम दुखी क्यों रहती हो । तुम्हें तो प्रसन्न रहना चाहिये कि तुम्हारा प्रियतम तुम्हें मिलेगा ।"

रूपा मुस्करा कर बोली—"प्रतीक्षा मृत्यु से बढ़कर है ।"

चम्पा—(गम्भीर होकर) "तुम्हारे तर्क से तो मैं हार मान गई, परन्तु यह अवश्य कहूँगी कि तुम्हें सँभलना चाहिये । यदि तुम्हारे यही विचार रहे तो तुम अवश्य बावली हो जाओगी । तुम्हें तो दृढ़ हृदय से अपने प्रियतम के मिलन की प्रतीक्षा करनी चाहिये । फिर चाचा-चाची की चिन्ताओं से तुम अपरिचित नहीं, यह तुम्हारे ही कारण हैं । उन्हें प्रसन्न रखने के लिये तुम्हें अपनी यह दशा बदलनी चाहिये । अच्छा, अब बताओ कि जब चाची मुझ से पूछेंगी, तो क्या कहूँ ?"

रूपा—"किस विषय में ?"

चम्पा—"यही कि रूपा चिन्तत क्यों रहती है ?"

रूपा—(सोचकर) "पहले तो वैसे ही झूठ बोलना पाप है, फिर माँ बाप से झूठ बोलना तो महापाप है, किन्तु मैं यह नहीं चाहती कि मेंरे लिये उन्हें लेशमात्र भी दुख हो इसलिये उन्हें मेरे सपनों के विषय में कुछ न कहना, कोई और बात बना कर कह देना ।"

चम्पा—"क्या बात बनाऊँ ?"

रूपा—"कह देना वह कभी-कभी यह सोचकर चिन्तित हो जाती है कि ब्याह हो जाने पर उनसे अलग हो जाना पड़ेगा । और यह सच भी है चम्पा ।"

चम्पा—(हँसकर) "यही कहूँगी । अच्छा, अब यह वचन दो कि तुम अपने आप को सँभाले रखोगी ।"

रूपा—(हँसकर) 'हाँ ! वचन देती हूँ···जलती हुई भी तुम सबको मुस्कुराती ही दिखाई दूंगी ।"

चम्पा—(हँसकर) "तोड़ डालूं मुँह तेरा । अपनी बातों से न हटेगी । अच्छा, दूसरा वचन यह दो कि जब तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी तो मुझे न भूलोगी ।"

रूपा यह कहती हुई हँसकर लिपट गई—"कभी नहीं ।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

८

गंगू नाई पुराना व्यक्ति था। पूरे क्षेत्र में उसकी अच्छी जान-पहिचान थी। बुरे-भले को पहचानने वाला। इसीलिये लोग उस पर भरोसा करते थे। मँगनी नाते के सम्बन्ध में बड़ी सचाई से छान-बीन करके कोई बात मुँह से निकालता था। कई बार ऐसा हुआ कि लोगों ने उसे लालच देकर काम निकालना चाहा किन्तु उसने इन्कार कर दिया। सेठ लोगों की बड़ी-बड़ी हुन्डियाँ और बहुमूल्य गहने इधर से उधर ले जाना, उसका नित्यदिन का काभ था। व्याह के सम्बन्ध में सब कार्य उसी के हाथों में पूर्ण होते थे। सब को विश्वास था कि उसका होना इस बात का प्रमाण है, कि कार्य सफलतापूर्वक पूर्ण होगा। रूपा के लिये भी वर खोजने का भार इसी भरोसे उस पर सौंपा गया था।

चौधरी का बेटा जब सेठ से मिल कर वापिस आया, तो रास्ते भर यही सोचता आया था कि सेठ ने उसको सहायता का वचन तो दिया है किन्तु सफलता दिखाई नहीं देती। वह सोचने लगा कि उसे गंगू से भी बातचीत करनी चाहिये। परन्तु थोड़े ही दिन हुये उसका अपमान हुये, इसलिये झिझकता था कि कहीं गंगू साफ़ ही उत्तर न दे दे। इसी असमंजस में दिन बीतते गये। आखिर साहस करके वह सवेरे-सवेरे उसके घर पहुँच गया और कहा—"दादा ज़रा खेत तक चलोगे ? कुछ बातें करनी हैं। गंगू का आना-जाना, उठना-बैठना जो कुछ भी था चौधरी के साथ था और उसके बेटे का किसी परामर्श के लिये उसके पास आना एक नई-सी बात थी। तुरन्त खटक गया कि लौंडे के सिर पर वही भूत सवार है, और उसी धुन में आया है। हो न हो नाते ही की बात होगी। मन में तो आई साफ़ उत्तर दे दे, किन्तु रुक गया कि आखिर चौधरी का बेटा फिर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी चौधरी का बेटा है। उत्तर दिया—"चौधरी जी ! आप चलें मैं खाना खाकर अभी पहुँचता हूँ।" वह कहने लगा—"देखना देर न करना"। उसका विचार था कि यदि गंगू ने पहुँचने में देर की तो हो सकता है इस बीच में उसका बाप भी खेत में जा पहुँचे और अकेले में बात करने का अवसर न मिले।

चौधरी के बेटे के पीठ मोड़ते ही, गंगू ने अपनी घरवाली से खाना देने को कहा। और अनाप-सनाप ग्रास गले में उतार पीछे ही पीछे चौधरी के खेत में जा पहुँचा। चौधरी का बेटा उसे साथ लेकर अलग नहर पर जा बैठा और यूँ ही बात आरम्भ की—

चौधरी का बेटा—"दादा ! मैंने इसलिये तुम्हें कष्ट दिया है कि सिवा तुम्हारे मुझे कोई ऐसा नहीं दीखता जो मेरी विपदा दूर करे। तुम्हें ज्ञात है कि पिछले दिनों जो कुछ मेरा अपमान हुआ, किन्तु मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं बिल्कुल निर्दोष था। मेरा कोई विचार बुरा न था। मुझे रूपा से प्रेम है। मैं उससे दो बातें करना चाहता था।"

गंगू—'चौधरी जी, बुरा न मानें तो कुछ कहूँ।"

चौधरी का बेट—"हाँ-हाँ, कहो दादा ! इसमें बुरा मानने की क्या बात है ?"

गंगू—"आप उससे दो बातें किस अभिप्राय से करना चाहते थे ?"

चौधरी का बेटा—"मैं उससे ब्याह करना चाहता हूँ बस उससे यही पूछता।"

गंगू—"भला चौधरी जी ! कहीं कँवारी लड़कियों से ऐसी बातें भी की जाती हैं। आपने तो उसे यूँ समझा जैसे कोई बेसवा हो। यदि आप ब्याह के इच्छुक थे, तो अपने माँ-बाप से कहते। यदि माँ-बाप से कहने में लाज आती थी, तो किसी निजी व्यक्ति द्वारा कहलाते। या फिर मुझी से कहते। आप ने तो···क्षमा कीजिये, वह ढंग अपनाया, जो लुच्चों-लफंगों का···"

चौधरी का बेटा लज्जित-सा हो गया और आँखें झुका कर बोला—"सच कहते हो दादा ! मुझ से बड़ी भूल हुई। भावुकता में पड़कर मैंने इन बातों को न सोचा और वह कुछ कर बैठा, जो न करना चाहिये था। अब मैंने तुम्हें इसी आशा पर कष्ट दिया है, कि तुम मेरी सहायता कर सकते हो। मेरा यह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

धब्बा मिटा सकते हो।

गंगू—"फिर बताइये मैं क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

चौधरी का बेटा—"पहले तो मेरे बाप से कह कर मुझे क्षमा दिलवाओ। इस घटना को इतने दिन हो गये हैं, पर उन्होंने आज तक मुझ से सीधे मुँह बात न की। सदा त्यौरी पर बल ही पड़ा रहता है। दूसरी बात यह है कि चाचा का मन भी मेरी ओर से साफ़ करो और मेरे लिए उनसे कहो।"

गंगू सोचने लगा और कुछ क्षण बाद बोला—"बहुत अच्छा, मैं चौधरी जी से बात करूँगा, और मुझे आशा है कि वह मेरी प्रार्थना स्वीकार भी कर लेंगे। किन्तु रूपा के चाचा से बात करना मेरे बस में नहीं। हाँ, मैं इतना कर सकता हूँ कि बड़े चौधरी जी से यह बात भी कह दूं। यदि उनके मन में आये तो वह स्वयं ही रूपा के चाचा से बात कर लें। पर मुझे आशा नहीं कि यह बात वह मानेंगे। क्योंकि मैं उनके स्वभाव से भली प्रकार परिचित हूँ। वैसे अपनी ओर से मैं पूरा प्रयत्न करूँगा।"

चौधरी के बेटे के मुख पर निराशा सी छा गई थी। सिर झुकाये बैठा सोच रहा था कि गंगू जो कहता है ठीक है। कुछ सोच कर बोला—"जो कहते हो दादा ठीक कहते हो, किन्तु प्रयत्न भी करो मैं तुम्हारा उपकार जीवन-भर न भूलूंगा।"

उसकी दशा पर गंगू को भी दया आ गई। कहने लगा—"चौधरीजी होनी होके हटती है। यदि कहीं पहले संकेत भी कर देते तो यह काम ही क्या था ? ऐसे चुटकियों में हो जाता। अच्छा देखो प्रयत्न करूँगा।"

दोनों उठ खड़े हुये और गंगू ने गाँव का रास्ता लिया। गाँव के पास पहुँचा था कि चौधरी कंधे पर लठ धरे आता हुआ मिल गया। गंगू ने अभिवादन किया। चौधरी ने हँसते हुये पूछा—"इधर कहाँ से आ निकले गंगू राजा !" गंगू ने अवसर उचित जानकर पूरी बात सुना डाली और कहा—"चौधरी जी ! लड़कों से नासमझी में ऐसी बातें हो ही जाती हैं, वह अब बहुत लज्जित है। उसे क्षमा ही कर दें तो अच्छा है। क्योंकि आखिर आपका बेटा है। यदि वह आपके क्रोध से कहीं निकल गया तो आप क्या करेंगे ? लेने के देने पड़ जायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बराबर का पला-पलाया जवान बच्चा कहाँ मिलता है ? कहावत है, सवा लाख गले तब एक लाल पले ।"

चौधरी हँस पड़ा और बोला—"सच कहते हो गंगू ! पर उसने बात ही ऐसी बुरी की, जिसे छोड़ा नहीं जा सकता । उधर उस समय मुझे उसकी माँ के रोने-पीटने का विचार आ गया, वरन् मुझे तो ऐसा क्रोध आ गया था कि मैं उसे घर से निकालने पर तुल गया था । इस समय तुम्हारी बात मुझे बहुत भली लगी । यदि वह वास्तव में अपने किये पर लज्जित है, तो मैं उसे क्षमा कर दूँगा और यही समझ लूँगा कि अभी इतना ही दंड पर्याप्त है ।"

गंगू—"धन्य हो, चौधरी जी !"

गंगू ने यह सोच कर कि इस समय लोहा नर्म है, दूसरी बात भी कह डाली । कहा—"चौधरी जी ! यदि यह नाता भी आप ही ले लें तो क्या हानि है ?"

यह सुनते ही चौधरी की त्यौरी पर बल पड़ गये । गंगू की ओर देख कर उत्तर दिया—"क्या उसने यह इच्छा भी प्रकट की है ?"

गंगू उसके तेवर देख कर सहम गया । मन में सोचा यदि इस समय यह स्वीकार करता हूँ तो शायद क्षमा की बात भी बिगड़ जाये । बात को सँभालते हुए बोला—"नहीं, यह तो अपनी ओर से कहता हूँ । उसने मुझ से कुछ नहीं कहा ।"

चौधरी—"तुम समझदार हो, सयाने हो । सोचो ! जितना अपमान हो चुका है, इसके बाद यह बात मुँह से निकालना, कितनी अनुचित है । भला मैं तुम से पूछता हूँ कि क्या तुम यह संदेश रूपा के चाचा के पास ले जाने का साहस रखते हो ?"

गंगू—"नहीं, मैं तो यह साहस नहीं कर सकता ।"

चौधरी—"तो फिर गंगू तुम मुझे इतना निर्लज्ज क्यों समझते हो ? यदि घटना इतनी घिनौनी न होती तो मैं तुम से भी कहता और स्वयं चाचा से भी प्रार्थना करता । किन्तु, अब तुम्हीं सोचो कि यह कहाँ तक उचित है । यदि मैं अब ऐसी भूल कर बैठूँ तो रूपा का चाचा और सब गाँव वाले मुझे क्या कहेंगे । यही न कि मेरा वह क्रोध बनावटी था, सब दुनियादारी थी । गंगू ! यदि सन्तान को रोका-टोका न जाये तो गाँव में बहू-बेटियों वालों का रहना ही दूभर हो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाये। यह तो न होना चाहिये कि अपने लगी तो मन पर लगी और दूसरे लगी तो दीवार पर लगी।"

गंगू हँस पड़ा और वही वाक्य दोहराते बोला—"धन्य हो, चौधरी जी

बात समाप्त हुई, चौधरी अपने खेतों में चला गया और गंगू गाँव में गया। मन में अत्याधिक लज्जित था कि क्यों लड़के के कहने में आकर ऐ बात मुँह से निकाली, जो इस समय यूँ चौधरी के सम्मुख हल्का होना पड़ा।

चाचा अपने छप्पर के नीचे चारपाई पर पड़ा कली पी रहा था। चाच तालाब पर कपड़े धोने गई हुई थी। रूपा आँगन में सीने-पिरोने और काढ़ने व काम लिए बैठी थी, और धीरे-धीरे कुछ गुनगुना रही थी। इतने में चम्पा अ पहुँची, रूपा उसकी ओर देख कर मुस्कुरा दी और बोली—"बड़ी आयु है चम्प अभी-अभी याद कर रही थी।" चम्पा हँसते हुए साथ वाली चारपाई पर बै गई और पूछने लगी—"चाची कहाँ है?"

"कपड़े धोने गई है, तालाब पर।" यह कह कर रूपा फिर गुनगुनाने लग और कढ़ाई में लग गई।

चम्पा—(हँसकर) "देखो! तुम गाने और काढ़ने के दोनों काम अपने लि कर रही हो, और मैं हूँ कि बैठी मुँह तक रही हूँ। रूपा हँस पड़ी और बोली— "अभी छोड़ती हूँ इसे। पाँच-सात धागे हैं, इन्हें पूरा कर लूँ।

चम्पा—"मैं यह नहीं छुड़वाती तुम से।"

रूपा—"और क्या चाहती हो?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चम्पा—"जो कुछ गुनगुना रही हो मुझे भी सुनाओ मैं सुनती रहूँगी, तुम काढ़ती रहना।"

रूपा—(हँसकर) "फिर बताओ क्या सुनाऊँ ?"

चम्पा—"बस यही सुनाओ, जिसमें तुम आकर आनन्द से झूम रही हो।"

रूपा खिलखिला कर हँस पड़ी, "यदि सुनाया तो तुम्हारा मज़ा किरकिरा हो जायेगा।"

चम्पा—(हँसकर) "नहीं होता। मुझे यह धुन बड़ी प्यारी लग रही है।"

रूपा—"ज़रा स्वर से एक फ़ारसी का पद्य गाने लगी।"

चम्पा की त्यौरी चढ़ गई। बोली—"अरी ! फ़ारसी बघारने लगी है।"

रूपा हँस पड़ी—"न कहती थी कि तुहारा मज़ा किरकिरा हो जायेगा।"

चम्पा—"अच्छा, एक बार मुझे इसका अर्थ समझा दो, फिर गाओ और गाये जाओ। यह धुन बड़ी प्यारी है।"

रूपा—(हँसकर) "इसका अर्थ यह है, कि मेरे प्रियतम की मेरे प्रति असावधानी ने, जिसकी मुझे कभी आशा न थी, मेरा मन तोड़ दिया है। जिसके परिणाम स्वरूप अपनों और परायों के आगे मेरी दुख और दुर्भाग्य की कहानी बहुत लम्बी हो गई है।"

चम्पा की जुबान से अनायास 'हाय' निकल गई और बोली—"कितने दुख में कहा है और कितना दुखी होगा कहने वाला।" रूपा की आँखें भर आईं। कहने लगी—"चम्पा ! दुनियाँ में सुखी कोई भी नहीं।"

चम्पा—"सत्य है, किन्तु इससे बढ़ कर कोई और दुख नहीं कि जिससे प्रेम के निबाह की आशा हो वही आँखें फेर ले। मुझे इसी विषय का एक दोहा याद आ गया—

साजन अखियाँ फेरीं, मेरी बात न पूछे कोय।
दुर-दुर करें सहेलियां, मैं मुड़-मुड़ देखूँ तोय।

रूपा—"हाय, क्या सुन्दर कहा है। किन्तु मेरे सुनाये हुए पद्य में कहने वाले की दशा अधिक दुखी है। वह यूँ कि यहाँ तो प्रियतम से उलाहना करके मन की कुछ भड़ास तो निकल गई, पर वहाँ तो इसका स्थान ही नहीं। बस अपने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ही दुर्भाग्य पर रोना, फिर यह कि साजन का नाम तक भी होठों पर नहीं आता।"

चम्पा झूम गई—"बिल्कुल सत्य है। अच्छा, तो फिर सुनाये जाओ। तुम्हारी धुन भी करुणामय है।" रूपा फिर गाने लगी।

चम्पा झूम रही थी। रूपा अपनी धुन में बार-बार गाये जा रही थी। उसके गालों पर लगातार आँसू ढलक रहे थे। इतने में चाचा उठकर आया और बाहर ही से पूछता हुआ आया—"रूपा कितना सुन्दर कहा है।" रूपा ने साड़ी के आँचल से शीघ्र आँसू पोंछे। चाचा भीतर आ खड़ा हुआ। रूपा बोली—"कोई 'तस्नीम' है कहने वाला चाचा! बहुत थोड़ा जिया वह।" चाचा ने जाँघ पर हाथ मारा और बोला—"सच कहती हो रूपा।"

अभी यह बात हो ही रही थी कि आँगन का द्वार खटाक से खुल गया। चाचा मुड़कर देखने लगा। चाची, धुले हुये कपड़ों का गट्ठर सिर पर उठाये बुड़बुड़ाती हुई भीतर आई। चाचा आँगन से निकलकर फिर चारपाई पर जा बैठा और मुस्कुराते हुये बोला, 'मैंने कहा, ज़रा यहाँ आओ तो। कहाँ चली गई थीं तुम?" चाची घबराई हुई आई थी, कोई उत्तर न दिया। कपड़ों का गट्ठर सिर से पटक कर भीतर चली गई। फिर हाथ में पंखिया लेकर बाहर आई और आँगन में खड़ी होकर झलने लगी।

चाचा फिर बोला—"मैंने कहा, कुछ रुष्ट हो क्या? यहाँ आओ!"

चाची वहीं खड़ी-खड़ी माथे पर बल डालते बोली—"क्या कहते हो? जो भी कहना है, यहीं कह डालो, मैं वहाँ नहीं आती।"

रूपा और चम्पा चाचा-चाची की बात पर आँगन में बैठी हँस रही थीं। चाचा ने फिर कहा—ओफ्फ़ोह, व्यर्थ बिगड़ी जा रही हो। मैं कहता हूँ, ज़रा आओ तो सही। बड़ी अच्छी बात सुनाऊँगा।"

"हाय! चैन नहीं लेने देते। अभी मरती हुई आई हूँ। अभी तुम भेजा चाटोगे।" पास जा खड़ी हुई और बोली—"हाँ, लो, कह लो! क्या कहते हो।" रूपा और चम्पा हँस रही थीं।

चाचा—"आज रूपा ने ऐसा पद्य सुनाया कि मन प्रसन्न हो गया। सच जानो तड़पा दिया।" चाची की भवें तन गईं, मुँह बनाकर बोली, "लगे हैं बातें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Please see page No-59

सुनाने। तुम और तुम्हारी रूपा को आता ही क्या है? करते रहो मन प्रसन्न और तड़पते रहो।"

चाचा रोकता ही रहा। चाची अलग चल दी।

१०

चौधरी को अपनी सद्भावना और चाचा से घनिष्टता के कारण, रूपा के इन्कार की सूचना से खेद तो वड़ा हुआ, किन्तु इस सम्बन्ध में उसने कोई और वातचीत करना उचित न समझा, इसलिये कि यह मोतियों के व्यापार की सी वात थी। इस सम्बन्ध में किसी पर दबाव डालने से शंकायें उत्पन्न होने का भय होता है। दूसरे प्राय: ऐसा भी होता है कि अपनी सूझ-बूझ में कोई काम किया तो अच्छा समझ कर किया जाता है, किन्तु अकस्मात वाद में उसमें कुछ ऐसे दोष उत्पन्न हो जाते हैं, कि सिवा लज्जा के कुछ प्राप्त नहीं होता। दोनों गुट बीच में पड़ने वाले को ही बुरा-भला कहते हैं और वही कहावत होती है कि कोयलों की दलाली में मुँह काला। किन्तु अब चूँकि वह सेठ को वचन भी दे आया था, और मन से भी इस नाते को अच्छा समझता था इसलिये उसने फिर निश्चय कर लिया कि इस सम्बन्ध में एक बार फिर चाचा के विचार ले ले। परन्तु समस्या की सूक्ष्मता का विचार करते हुए चाहता था, कि कोई ऐसा अवसर उत्पन्न हो जाये, कि न तो उसे चाचा के घर जाना पड़े और न चाचा ही को उसे अपने घर बुलाने की आवश्यकता पड़े; बल्कि यूँ हो कि किसी प्रकार यूँ ही बात चल निकले।

ऐसे ही अवसर की प्रतीक्षा में दिन बीतते गये। एक दिन वह अपने किसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतिथि को विदा करके चौपाल की सीढ़ी से कली हाथ में लिये उतर रहा था कि सामने से चाचा आता दिखाई दिया। वह रुक गया। पास पहुँच कर आपसी अभिवादन हुआ। चाचा कली का रसिया था। हँसते हुए बोला—"कहो चौधरी! इसमें कुछ है भी कि खाली लिये फिर रहे हो?" उसने हँसकर उत्तर दिया—"क्यों नहीं सब कुछ है। आग है, पानी है।

"और तम्बाकू?" चाचा ने हँसते हुए पूछा।

"हाँ, हाँ! तम्बाकू भी है···आओ दो चार सुट्टे लगा लो। बड़ा बढ़िया है।

चाचा हँसता हुआ चौपाल की सीढ़ियों पर चढ़ आया और दोनों वहाँ बिछी हुई चारपाई पर बैठ गये। चौधरी ने कली चाचा के आगे रख दी। पहला ही सुट्टा लगा कर चाचा खाँसते हुये बोला—"हाँ, खूब कुटा हुआ है···यहाँ क्यों आये थे?"

चौधरी—"एक अतिथि, रात से यहाँ ठहरा था। अभी-अभी विदा हुआ है। उसे विदा करके घर जा रहा था कि तुम दिखाई दे गये।"

चाचा कली के सुट्टे लगा रहा था और चौधरी मन में सोच रहा था कि कैसे बात आरम्भ करे। इतने में चाचा स्वयं ही बोल उठा—"तुमने सब कुछ सुन लिया होगा?"

चौधरी समझ तो गया पर बनते हुए बोला—"क्या?"

चाचा—(कुछ दुखित स्वर में) "यही कि रूपा नहीं मानती। न जाने इस लड़की के मन में क्या है? तुम्हें, अपना मित्र और शुभचिन्तक जान के मुझे अपना दुख बताने में कोई लाज नहीं यद्यपि मैंने और इसकी चाची ने देख-भाल करने में कोई कसर नहीं छोड़ी; फिर भी मन में भाँति-भाँति की शंकायें उत्पन्न होती हैं। जिससे, हम दोनों के मन में बड़ा दुख होता है। हमारा सुख-चैन उड़ गया है। और वैसे चौधरी जी! तुम भी हर बात को परखने वाले हो, और मैंने भी इस दुनियाँ की बहुत उड़ाई है। मुझ को तो उस लड़की में कोई दोष भी नहीं दीखता। किन्तु, मैं विस्मित हूँ कि उसके इन्कार का क्या कारण है?"

चौधरी—"नहीं, नहीं, चाचा! मन में यह भ्रम न उत्पन्न करो। तुम्हारी लड़की मोतियों में तोलने योग्य है। यद्यपि उसके इन्कार का उचित कारण अब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तक मेरी समझ में नहीं आया ।"

चाचा की आँखें भर आईं, कहने लगा—"चौधरी ! हम दोनों निःसन्तान थे । हम ने इसी लड़की को अपनी बेटी जान कर पाला है । हमें इससे इतना ही स्नेह है, जितना किसी को अपनी निजी सन्तान से हो सकता है । जो नाता तुमने सुझाया था, वह बिल्कुल हमारी इच्छानुसार था । पर जो भाग्य में न हो वह हो क्योंकर ?"

चौधरी सहानुभूति जताते हुए बोला—"मन मैला न करो चाचा ! बस, भगवान पर भरोसा रखो । हाँ ! एक बात कहता हूँ । तुम रूपा की सखियों को उसके पीछे लगाओ, कि वह उसे समझाती रहें और उसके विचार बदलें । मेरा अनुमान है कि उसे तुम दोनों से अत्यधिक स्नेह है और वह तुम से अलग नहीं होना चाहती । यही कारण उसके इन्कार का भी है । यदि उसे यह बात समझाई जाये कि तुम उसके इन्कार से बहुत दुखी हो, शायद वह सहमत हो जाये ।"

चाचा—"बात तो तुम्हारी है मन को लगने वाली । वास्तव में इस लड़की को हम दोनों से अत्यधिक लगाव है ।

चौधरी—"बस, यह बेल तो उसकी सखियों द्वारा ही मँढे चढ़ेगी । उन्हें ही इसके पीछे डाल दो ।"

चाचा—"हाँ, ऐसा ही करूँगा और उसकी चाची को भी यही समझाऊँगा । उस बिचारी का तो निराशा से मन ही टूट गया है । कुछ ही दिनों में आधी भी नहीं रही ।"

चौधरी—"समझाओ चाची को । निराश नहीं होना चाहिये । मेरा दृढ़ विश्वास है कि यह लड़की मान ही जायेगी ।"

चाचा—चौधरी ! मुझे तो एक उधेड़-बुन और भी लगी रहती है ।"

चौधरी—"वह क्या !"

चाचा—"यदि उसने स्वीकार कर लिया अथवा अस्वीकार कर दिया, मैं दोनों ही भाँति सेठ से सहायता पाने से रहा, और अब सहायता का दूसरा ठिकाना भी नहीं ।

चौधरी—"यह भ्रम तुम मन में उत्पन्न न करो । सेठ ऐसा ओछा व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नहीं कि ऐसी बात करे।"

चाचा—"वह न हो; किन्तु मैं अब उसके द्वार पर सवाली बनकर न जाऊँगा।"

चौधरी—"जब वह समय आएगा, देखा जाएगा। अभी से मन को क्यों व्याकुल कर रहे हो?"

चाचा—"और वह समय कब आयेगा, समय तो सिर पर सवार है? लड़की सयानी हो गई है। मैं तो कहीं न कहीं शीघ्र उसका ठिकाना करने की चिन्ता में हूँ। चाहे यह घर हो, चाहे कोई और।"

चौधरी—"तुमने फिर गंगू से भी बात की? उससे पूछा कि वह क्या कर रहा है?"

चाचा—"हाँ, उसे भी बुलाऊँगा।"

चौधरी—"और देखो, वह बात जो मैंने कही, उसे न भूलना। रूपा की सखियों को चिमटाओ, जो उसे समझायें। सेठ जैसा नाता, दिया लेकर ढूँढने से भी न मिलेगा।"

चाचा—"निःसन्देह! इसे तो मैं पहले से जाने हुए हूँ। और देखो, तुम भी इस बात का ध्यान रखना कि पैसे की सहायता के लिये किसी और व्यक्ति को ध्यान में रखो। सेठ के पास मैं कदापि न जाऊँगा।"

चाचा, यह कह कर उठ खड़ा हुआ और सीधा गंगू के पास पहुँचा। गंगू घर में न था। उसकी पत्नि को उसे आने पर घर भिजवाने को कहकर अपने घर चला आया। कुछ ही समय बाद गंगू आ उपस्थित हुआ। पूछा—"चाचा! क्या आज्ञा है?"

चाचा—"गंगू, मैं तुम्हारे उत्तर की बड़ी अधीरता से प्रतीक्षा कर रहा हूँ, सो मुझे स्वयं तुम्हें बुलाना पड़ा।"

गंगू—"यूँ तो नातों का कोई अभाव नहीं। एक छोड़ बीस; किन्तु जब तक स्वयं मेरी दृष्टि में कोई न जचे, तुम से आकर क्या कहूँ?"

चाचा—"हाँ भाई! यह तो ठीक है। अच्छा ही घर होना चाहिए। मैं अपनी रूपा को कूड़े पर तो न फेंकूँगा। वह मुझ पर कोई भार तो नहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गंगू—"एक बात पूछूँ चाचाजी ?"

चाचा—"हाँ, हाँ, पूछो !"

गंगू—"मैंने सुना है कि सेठ ने भी संदेश भिजवाया था।"

चाचा—"हाँ !"

गंगू—"फिर तुम ने स्वीकार क्यों न किया ?"

चाचा—"मुझ को और उसकी चाची को तो जी जान से स्वीकार है, और था। किन्तु रूपा नहीं मानती।

गंगू—(आश्चर्य से) "क्यों ?"

चाचा—"मैं क्या जानूँ ? बस नहीं मानती।"

गंगू—"बड़ी भूल है चाचाजी ! ऐसा नाता तो ढूँढे से भी न मिलेगा। यह तो घर बैठे ही लक्ष्मी आ रही है।"

चाचा—"मैं भी यह समझता हूँ, पर विवश हूँ। और यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती कि रूपा की इच्छा के विरुद्ध दबाव डाला जाए। जीवन-भर का साथ तो उसी का होना है।"

गंगू—"बात तुम्हारी बड़ी बुद्धिमानी की है। ऐसा ही होना चाहिए। रूपा अभी अनुभवहीन है। ऊँच-नीच और बुराई-भलाई की बात को इतना नहीं समझ सकती, जितना आप लोग समझ सकते हैं। प्रयत्न करो कि वह अपना विचार बदल दे।"

चाचा—"मैं क्या कर सकता हूँ ? मैं तो उससे इस विषय पर बात करने से रहा। वह तो अपनी चाची से भी नहीं खुलती।"

गंगू—"फिर तुम ने कैसे जाना कि उसने इन्कार कर दिया।"

चाचा—"उसकी चाची ने चम्पा द्वारा पुछवाया था।"

गंगू—"चम्पा से ही कहो कि उसे ऊँच-नीच समझाए।"

चाचा—"हाँ, यह यत्न तो किया जायेगा। पर इसका यह अर्थ नहीं कि तुम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहो। तुम्हें अपनी दौड़-धूप रखनी चाहिए।"

गंगू—"यह तो तुम कहो न कहो चाचा जी ! मैं अपना कर्त्तव्य कभी नहीं भूलूंगा। मेरा विश्वास है कि समय से पहिले और भाग्य से अधिक कभी किसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को कुछ नहीं मिलता।"

चाचा—(ठंडी साँस भर कर) "हाँ गंगू। यह तो सच हैं। वही कुछ होता है, जो भाग्य में हो। देखना चाहिए कि अब हमारे भाग्य में क्या है? और रूपा का संयोग कहाँ है?"

"अधिक चिंता न करो चाचाजी! भगवान पर भरोसा रखो।" यह कहते हुए गंगू ने जाने की आज्ञा ली और चला गया।

११

इधर रूपा के भविष्य के लिए विचार-विमर्श हो रहे हैं और उधर होनी का बलवान-हाथ मालवा की राजधानी मांडू में, पुरानी चौपट के उलटने और नई को विछाने की तैयारी में था और वह सिंहासन तैयारी किया जा रहा था जिस पर इस अनाथ लड़की को रानी बन कर बैठना था।

शुजात नामक एक सरदार, हिन्दुस्तान के सम्राट शेरशाह की ओर से मालवा पर राज्य करता था। इस बुद्धिमान शासक सम्राट का राज्य-काल, पाँच ही वर्ष में समाप्त हो गया। उसके उत्तराधिकारी दुर्बल और अयोग्य निकले जिसका परिणाम यह हुआ कि कई सरदार अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर बैठे। इन्हीं में शुजात खाँ ने भी राजा की उपाधि धारण करके मालवा के राजा की नींव डाली। और बारह वर्ष के बाद अपने युवा बेटे बायज़ीद खाँ अथवा बाज़बहादुर के लिए राज्य-सिंहासन खाली कर गया।

यह राजकुमार जिसने राजसी-वैभव में आँखें खोली थीं, हर्षोल्लास का मस्ताना और राग-रंग का रसिया था। सैंकड़ों डोमनियाँ और गायिकायें, राज-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दरबार में और राजा के अन्तपुर में नौकर थीं। इनके कारण दरबार, राजा इन्द्र का अखड़ा बना रहता। संगीत में स्वयं राजा इतना निपुण था कि अब्बुलफ़जल ने उसकी तुलना तानसेन से की थी।

जब अकबर की विजय की बाढ़, बंगाल और रणथम्भौर को साफ़ कर चुकी तो उसकी दृष्टि मालवा पर पड़ी कि वह काँटा भी निकल जाये तो अच्छा हो। अकबर के ऐतिहासिकों ने इस निश्चय का कारण बाजबहादुर के आमोद-प्रमोद और कुशासन को बताया है। किन्तु यह केवल एक बहाना था, जो हर शक्तिशाली, निर्बल को कुचलने के लिए अपनाता है। वास्तव में इसका कारण राजनैतिक था। अकबर अपने सामने किसी को न ठहरने देना चाहता था। जहाँ तक बाज़बहादुर के कुशासन का सम्बन्ध है, उसको इस बात से झुटलाया जा सकता है कि बाजबहादुर ने अकबरी सेना को दो बार पराजित किया। मालवा के पहले युद्ध में, अकबर के प्रसिद्ध पाँच-हजारी सरदार, बहादुरखाँ सीस्तानी को मुँह की खानी पड़ी, जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उसके वक्ष में पुरुष का नहीं सिंह का हृदय था। दूसरे युद्ध में बैरमखाँ जैसे प्रसिद्ध सेनापति को असफल लौटना पड़ा। यह इस बात का प्रमाण है कि बाज़बहादुर, नवयुवक और आमोद-प्रमोद का रसिया होने के अतिरिक्त, वीर साहसी और निपुण शासक था। उसकी प्रजा उससे सन्तुष्ट थी— रहा राग-रंग से उसका प्रेम, सो यह किस राजा अथवा सम्राट में नहीं होता। स्वयं अकबर के दरबार में, नृत्य और संगीत की सभायें जमी रहती थीं। पीना-पिलाना होता था। फूल जैसी कोमलाँगनाएं उनके मन को भरमाती थीं। अकबर के राजकुमारों की अन्तःपुर की कहानियाँ को तो छोड़ दीजिये। इनके बखान के लिये तो पोथियाँ चाहियें। इसलाम खाँ, शेख-सलीम-चिश्ती के पोते, और पवित्रता तथा धर्मानुराग के कारण पूज्य थे; उनके राग-रंग से प्रेम का यह हाल था कि बंगाल की कितनी ही कंचन बालायें नौकर थीं और सरकारी खजाने का अस्सी हजार रुपया इन्हीं पर व्यय होता था। फ़ैज़ी और अब्बुलफ़जल के पिता शेख मुबारिक, संगीत में निपुण थे और उन्हीं के कहे जाने पर तानसेन को दरबार में स्थान मिला था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फिर विचारा बाज़बहादुर भी यदि राग-रंग में डूबा था तो कौन सी बड़ी बात थी। यदि वह अवतार-पैग़म्बर भी होता तो भी मालवा का राजा होने के कारण अकबर की राजनीति उसे क्षमा न करती।

बाज़बहादुर, पिता के सिंहासन पर बैठा। मालवा की राजधानी मांडू में उसके राजतिलक की तैयारियाँ धूम-धाम से आरम्भ हुईं। महलों की सजावट, नगर में उत्सव का प्रबन्ध, सेना की पुनः क्रमबंदी, अलग-अलग सरदारों को सौंपी गई।

अनाथालयों, विधवा-आश्रमों, विद्यार्थियों और मस्जिदों-मन्दिरों में दान-पुण्य किये गये। राज्य-भर में डौंडी पिटवाई गई और ज़िलाधीशों और प्रान्तों के राज्यपालों को आदेश भिजवाये गये कि हर कलाकार को बिना रोक-टोक के राज-दरबार में आकर संगीत और नृत्य के उत्सव में भाग लेने की खुल्लम-खुल्ला अनुमति है। प्रजा को घर-घर में दीपमाला और सहर्ष उत्सव मनाने का आदेश हुआ, जिसका सारा व्यय राज्य-कोष से मिला। राज्य के कोने-कोने से कलाकार राजदरबार में आ कर अपनी कला की परिपूर्णता दिखाने की तैयारियाँ करने लगे।

जब से चम्पा और रूपा की बातचीत हुई थी, रूपा का ढंग कुछ बदल गया था। अब वह प्रसन्न दीख पड़ती थी, घर का वातावरण निराशामय न था। चाचा चाची भी सन्तुष्ट थे।

रूपा, आँगन में गुनगुनाती फिर रही थी कि चाचा कहीं बाहर से प्रसन्नचित्त घर में आया और रूपा को बुला कर छप्पर के नीचे चारपाई पर बैठ गया। फिर बोला—"रूपा! अभी-अभी डौंडी पिटती सुनकर आया हूँ कि नया राजा जो गद्दी पर बैठा है, उसका उत्सव होगा। देश के सब गायक और गायिकाओं को दरबार में आने का खुला निमन्त्रण है।"

चाचा के आने से पहले, रूपा की जो प्रसन्न दशा थी, वह यह सुनकर सहसा बदल गई। वह कुछ गम्भीर सी हो गई और सोचने लगी, 'यह सूचना देने से चाचा का क्या अभिप्राय है।' किन्तु इससे पूर्व कि वह कुछ पूछती, चाचा ने फिर अपनी बात आरम्भ कर दी—"यह राजा स्वयं भी बड़ा कलावन्त है रूपा!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इससे कला के जानने वालों का बड़ा मान और आदर करता है। राजकुमार होने के समय से ही बड़ा नाम पाया है। प्रजा को अब तक ऐसा राजा न मिला था।"

रूपा मौन सब सुन रही थी, और सोच रही थी कि अब चाचा आगे क्या कहेगा। चाचा ने जब देखा, कि वह टस से मस नहीं हुई तो कहने लगा—"रूपा ! तुम कुछ भी नहीं कहतीं ?"

रूपा ने क्षण-भर रुक कर गम्भीरता से उत्तर दिया—"मैं क्या कहूँ, चाचा ? हाँ होगा यह राजा ऐसा ही जैसा तुम कहते हो।"

चाचा—"तो फिर तुम्हारा क्या विचार है ?"

रूपा—(चौंक कर) "मेरा क्या विचार होगा चाचा ?"

चाचा उसकी यह रुखाई देखकर घबरा सा गया। झिझक-झिझक और अटक-अटक कर कहने लगा—"मेरा···मेरा आशय···यह है···कि···कि···हम-तुम भी चलें इस दरबार में।"

रूपा बात का ढंग तो पहिले ही समझ रही थी, किन्तु अब बात के स्पष्ट हो जाने से उसका मन कुछ बैठ सा गया, मुख पीला पड़ गया, होठ सूख गये और धीरे से बोली—"चाचा ! तुम चाहते हो कि मैं भी दरबार में जाकर गाऊँ ?"

चाचा—(दबी ज़बान से बोला) "क्या हानि है ? ऐसे अवसर तो जीवन में किसी भाग्यशाली को ही मिलते हैं।" रूपा के मुख पर कुछ अप्रसन्नता-सी छा गई। वह यह बात चाचा के मुख से सुनना न चाहती थी। व्यंगपूर्वक बोली—"सौभाग्य तो वह कहलाता है, जो किसी एक-आध को अकस्मात् मिल जाये। जहाँ सैकड़ों-हज़ारों भाग्य परखने को आये हों, वहाँ उसे सौभाग्य क्या कहें ?"

उसके तेवरों और बातचीत के ढँग से चाचा समझ तो गया था कि वह उसके सुझाव को भला नहीं समझ रही, किन्तु अब चूंकि बात चल निकली थी और चाचा की यह इच्छा भी थी कि वह दरबार में अपनी निपुणता दिखाये इसलिए वह अड़ बैठा। उत्तर दिया "सौभाग्य वही तो कहलाता है, जो सैंकड़ों-हज़ारों में से किसी एक को चुनाव दे।"

रूपा झट से बोली—"तो क्या तुम्हारा यह विचार है चाचा कि राजा की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दृष्टि बस मुझ ही को चुनेगी ।"

चाचा—"क्यों नहीं, प्रकृति ने जो श्रेष्ठता तुम्हें प्रदान की है, इसे मैं ही जानता हूँ रूपा ! तुम अपने मूल्य से इतनी ही अपरिचित् हो, जि कि कस्तूरी-मृग अपनी नाभि की कस्तूरी से ।"

रूपा निरुत्तर-सी होकर चुप हो गई । मन में दुविधा हो गई थी, कि क्या नयी विपदा-सी आ पड़ी । चाचा ने बड़ी देर तक उसकी ओर से उत्तर न पाकर, फिर कहा—"बोलो, तुम्हें वहाँ जाने में क्या आपत्ति है ?"

रूपा—"चाचा ! बुद्धिमानों ने कहा है कि राजाओं से निकटता प्राप्त क अपने प्राण और सम्मान को संकट में डालना, है । राजा, जोगी, आग और प इन चारों की रीत बड़ी उल्टी है । इन से अनुराग न वढ़ाना चाहिए वरना कु नहीं ।"

चाचा—"मैं इस विचार से तुम्हें नहीं ले जा रहा कि राजा से निकटता मित्रता प्राप्त हो । बल्कि इस ध्येय से लिए जा रहा हूँ, कि तुम अपनी श्रे कला की प्रशंसा पा सको । और जो सम्मान तुम्हें प्राप्त होगा उसका अधि भाग मुझे ही पहुँचेगा । क्योंकि मैंने तुम्हारे लिए बहुत परिश्रम किया है । सो रूपा ! उस हीरे के हीरा बनने से क्या लाभ जो खान से बाहर न निकला हो

रूपा—"चाचा ! किस भ्रम में पड़े हो । राजाओं के यहाँ, धरती से निक पत्थर के टुकड़े और सीप से निकले दोनों का तो मान है, क्योंकि इन्हें हीरे अ मोती कह कर राजमुकट की शोभा बढ़ा ली जाती है परन्तु मनुष्य और उस कला को वहाँ कोई नहीं पूछता ।"

चाचा—"नहीं रूपा, तुम नहीं जानतीं कि यह राजा कलाकारों को सि आँखों पर बिठाता है ।"

रूपा—"हाँ, सम्भव है कि एक समय सिर आँखों पर बिठाले और दू ही क्षण तुरन्त बाणों से छलनी भी कर डाले । राजाओं को न कोई प्रसन्न हो से रोक सकता है और न अप्रसन्न होने से ।"

चाचा—"मेरा मन साक्षी देता है कि तुम ऊपर उठोगी ।"

रूपा—"चाचा, में इस ऊपर उठने के विचार से ही तो काँप जाती हूँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्योंकि ऊपर उठने वाले ही समय से पहले नष्ट हो जाते हैं। बड़ा होने में बड़े दुख निकलते हैं, और छोटा रहने में दुख दूर रहते हैं। चाँद-सूरज को ही देख लो कि ग्रहण, इन्हीं को लगता है और तारे बचे रहते हैं। चाचा थोड़े ही की 'कामना' में कुशलता है। में हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ कि यह विचार छोड़ दो। तुम्हारी रूपा, इस फूस की छत्तों की साया के तले, कच्चे घर और अपने चाचा-चाची के पावों में रह कर, जिस चैन सुख से जीवन बिता रही है; वही उसके लिए प्रर्याप्त है।"

अभी यह बात चल ही रही थी कि चाची बीच में ही टपक पड़ी और रूपा को चाचा के सामने यूँ हाथ जोड़े बैठी देखकर रूपा से बोली—"क्या बात है ? क्या कह रहे हैं तुम्हारे चाचा ?"

रूपा चुप रही, और आँखें झुका लीं। चाची ने फिर कड़क कर पूछा—"अरी बताती क्यों नहीं ?"

रूपा ने उसी भाँति आँखें झुकाये धीरे से उत्तर दिया—"चाचा कहता है, कि राजा के दरबार में चलो !"

चाची—(बिगड़कर) "राजा के दरबार में किस लिए ?"

रूपा—"गाने के लिए।"

चाची का पारा चढ़ गया, और चाचा को सम्बोधन करके कहने लगी—"रहे झोपड़ों में और स्वप्न देखे महलों के। मैं पूछती हूँ, तुम्हारी बुद्धि में कुछ विकार तो नहीं आ गया। देखना, धक्के देकर निकाल दिए जाओगे, धक्के। बैठे बिठाये क्या धुन सवार हो गई है। 'कहाँ राजा भोज, कहाँ कँगला तेली। साथ ही दूसरी डाँट चाची ने रूपा को पिलाई—"उठ री यहाँ से, क्यों बैठी है ?"

चाचा पहले ही रूपा की बातों से क्षुब्ध हो रहा था। अब अपनी इच्छा के विरुद्ध उसकी हठ पर चिन्तित था, कि चाची की जली-कटी बातों ने जलते तेल पर पानी के छीटों का काम किया। मन में क्रोध उत्पन्न होने के स्थान पर, उसे खेद हुआ। वह उठ बैठा। आँखें डब-डबा आईं, और कहने लगा—"रूपा की चाची, क्रोध न कर ! बात मुँह से निकाल बैठा। मैंने आज तक कभी तुम दोनों की इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं किया। यही एक बात ऐसी हो गई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिसका मुझे खेद है। मैं अपनी मूर्खता पर लज्जित हूँ।"

आँसुओं की कुछ मोटी-मोटी बूँदे चाचा की आँखों से उबल कर दाढ़ी टपक गईं। चाची यह देख कर ठगी सी खड़ी रह गई। मुख फीका पड़ गया होंठ सूख गये। उसे इसका विचार तक भी न था कि उसके मुँह से निकले साधारण शब्द उसके मन को चोट लगायेंगे। चाचा घुटनों में सिर दे कर गया। चाची खड़ी तक रही थी। आँख तक न झपकती थी। असमंजस में थ क्या करे और क्या न करे ?

रूपा यह सहन न कर सकी। चाचा के पाँव में सर रख दिया, और सिसक सिसक कर रोने लगी। चाचा और चाची दोनों ने उसे बड़ी कठिनता से उठाया हाथ जोड़कर चाचा के सामने बैठ कर कहने लगी—"चाचा मुझे क्षमा क दो। मुझ से भूल हुई। मैं दरबार में चलूँगी, मैं नाचूँगी, मैं गाऊँगी। मैं तुम्ह इच्छा के विरुद्ध बाल भर इधर से उधर नहीं हो सकती। तुम ने मुझे पाल पोसा, जीवन प्रदान किया। चाचा ! मुझ पर तुम्हारे बड़े उपकार हैं। इत कि मेरे शरीर का कण-कण बँधा पड़ा है।" हिचकियाँ ले लेकर रो रही और कहे जा रही थी—"चाचा ! प्राणों को न्योछावर कर सकती हूँ, प तुम्हारी अप्रसन्नता सहन नहीं कर सकती। मैं तुम्हारे लिये सब कुछ कर सक हूँ ! मुझे क्षमा कर दो।"

चाचा का हृदय भर आया। उसके बँधे हाथों को लेकर चूमने लगा। व लगातार रोये जा रही थी। चाची ने बढ़कर उसकी बाँह थाम ली और उ कर भीतर की ओर ले चली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१२

यद्यपि रूपा दरबार में जाने को, मन से सहमत न थी, केवल चाचा को प्रसन्न रखने लिये, उसने जाना स्वीकार किया था परन्तु अब उसने स्वयं को इसके लिये बिल्कुल तैयार कर लिया था। उसके मन में कोई मैल न था। इस विचार से कि चाचा उससे सन्तुष्ट हैं, उसे एक विशेष सान्त्वना मिली।

ज्यों-ज्यों दरबार का उत्सव का समय निकट आता जा रहा था रूपा के पास चम्पा का आना-जाना बढ़ता जाता था। चूँकि वह स्वयं भी जा रही थी और इधर रूपा की तैयारी हो रही थी, इसलिये वह सोचती थी कि जाने अब के बाद कब मिलना हो। वह चाहती थी कि एक बार फिर रूपा से खुल कर बातें कर ले। एक दिन आकस्मिक चाचा जी घर में न थे। अकेले में बातें करने का अवसर मिल गया। पूछने लगी—"सच बताओ रूपा ! वह कल्पना तुम्हें अब भी सताती है ?"

रूपा मुस्कुराने लगी और उत्तर दिया—"चम्पा ! तुम अब भी उसे केवल कल्पना ही समझती हो ? सत्य को कल्पना नहीं कहा करते।"

चम्पा—(हँसकर) "अच्छा सत्य ही सही।"

रूपा—(मुस्करा कर) "बस तुमने सत्य को मान लिया तो तुम्हारा प्रश्न ही व्यर्थ है।"

चम्पा—"क्या ?"

रूपा—"यह कि सत्य सत्य ही है, इसमें कभी परिवर्तन नहीं हो सकता।"

चम्पा—(हँसते हुए) "बड़ी हठीली हो, अपनी बात को नहीं छोड़ती।"

रूपा—(हँसकर) "भूल करती हो चम्पा बहन ! मैं हठीली नहीं बल्कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह सत्य हठीला है जो मुझे नहीं छोड़ता।" दोनों हँसने लगी। चम्पा फिर बोली—"तुम्हारा अर्थ यह है कि यदि वह सत्य तुम्हें छोड़ दे तो तुम उससे छुटकारा पाने पर प्रसन्न हो।"

रूपा—"बड़ा दोषी है वह व्यक्ति, जो सत्य से छुटकारा पाने में प्रसन्न हो।"

चम्पा—तुम्हारा तर्क अनोखा है कि जिस सत्य ने तुम्हें दुखी बना रखा है, उससे छुटकारा भी नहीं पाना चाहती।"

रूपा—"तुम्हें मेरा तर्क इस कारण से अनोखा लगता है, कि तुम इस दुख के आनन्द को नहीं अनुभव कर सकती।"

चम्पा—"दुख की पीड़ा और कड़वाहट को तो सभी जानते हैं, किन्तु दुख का आनन्द आज तुम्हीं से सुना।"

रूपा—"हाँ चम्पा! दुख में बड़ा आनन्द है, ऐसा कि इस पर हज़ारों सुख न्यौछावर किये जा सकते हैं।"

चम्पा—"बताओ तो सही वह आनन्द है क्या?"

रूपा—"आनन्द बखान नहीं किया जा सकता?"

चम्पा—"क्यों नहीं किया जा सकता?"

रूपा—"अच्छा बताओ! फूल की सुगंध में क्या आनन्द है और तुम वाह-वाह क्यों करती हो?"

चम्पा—इसलिए कि मन-मस्तिष्क को ताज़गी मिलती है और मुँह से वाह-वाह निकल पड़ती है।"

रूपा—बस, उत्तर मिल गया। दुःख का आनन्द, वह आनन्द है, जिससे एक ही समय में दो प्रकार के आनन्द मिलते हैं, इसलिए मन से वाह निकलती है और मुँह से आह। और यह केवल समझ का फेर है, वरन् आह और वाह में कोई अन्तर नहीं—आह, वाह है और वाह, आह।"

चम्पा अनायास कह उठी—"वाह रूपा! क्या बात कही है आनन्द आ गया।"

रूपा (हँसकर)—"और यदि यूँ भी कह दो, आह रूपा! क्या बात कही है, आनन्द आ गया, तो भी कुछ अन्तर न पड़ेगा।"—दोनों खिलखिला कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हँस पड़ी ।

चम्पा—"अच्छा, अब इन टेढ़े-तिर्छे तर्क-वितर्क को छोड़ो और सीधे बताओ, क्या तुम दुनियाँ में यूँ ही अकेली रहोगी या किसी को जीवन-साथी भी स्वीकार करोगी ?"

रूपा—"देखो तुमने फिर वही वाद-विवाद आरम्भ कर दिया । मैं कहती हूँ कि यदि कोई व्यक्ति संसार में स्वयं को अकेला नहीं समझता तो वास्तव में बड़े धोखे में है । न केवल इस कारण से कि अकेला आया है और अकेला जायेगा, बल्कि इस दुनियाँ में रहते हुए भी हर व्यक्ति अकेला है, चाहे देखने में उसके सम्बन्धी, मित्र और साथी हों । वह अपने दुख-वेदना और सुख-चैन का स्वयं ही स्वामी है ।"

चम्पा कुछ चिढ़-सी गई और झुँझला कर बोली—"क्या बुद्धि है तुम्हारी ? सदा उल्टी ही चलती हो ।"

रूपा उसकी झुँझलाहट पर अनायास हँस पड़ी और प्यार से कहने लगी—"चम्पा ! मैंने तो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दिया है, उल्टी बात कौन सी कही है ?"

चम्पा—"उल्टी नहीं तो क्या सीधी है ? मैंने तो साधारणतः पूछा था कि प्राकृति ने सबको जोड़ा-जोड़ा बनाया है; तुम अपने जीवन-साथी से क्यों भागती हो ? किन्तु तुम अपना दर्शन ही बघारने लगीं ।"

रूपा—(हँसकर) 'अच्छा अब समझी कि साथी से तुम्हारा क्या तात्पर्य है ? चम्पा, क्षमा करना तुम्हें अब भी भ्रम है । मैं तो अपने जीवन-साथी को कब का स्वीकार कर चुकी ? उसकी बन भी चुकी हूँ ।"

चम्पा उसी झुंझलाहट में चीख कर बोली—"दिखाओ तो कहाँ है वह ? हमें तो दिखाई नहीं देता ।"

रूपा हँसी से लोट-पोट हो गई और चिढ़ाते हुए कहने लगी—"क्यों दिखायें तुम्हें ? हमारी आँखों में समाया हुआ है । हमारे मन में बस रहा है···तुम क्यों-कर देख सकती हो ? और हाँ, जब चाहेंगे दिखा भी देंगे ।"

चम्पा को उसकी बातों पर हँसी आ गई—"तो आखिर कब दिखाओगी ?"

रूपा—(हँसकर) "जब समय आयेगा ।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चम्पा --"और कब आयेगा वह समय ?"

रूपा—"यह नहीं बता सकती। मैं भी प्रतीक्षा कर रही हूँ, तुम भी प्रतीक्षा करो।"

चम्पा ने करुण दृष्टि से देखा और खेद प्रगट करते हुए बोली—"मेरी रूपा ! दीवानी हो गई हो दीवानी।"

रूपा प्यार से उससे लिपट गई और माथा चूमकर बोली—"मेरी प्यारी चम्पा। तुम्हारे प्रेम और सहानुभूति की यही माँग होनी चाहिए, किन्तु यह तो समझो यदि इस दुनिया से दीवाने निकाल दिये जायें तो फिर इसमें रह क्या जायेगा ? यह सारी चहल-पहल इन्हीं के कारण तो है।"

चम्पा—"हमने तो तुम्हें छोड़कर और कोई दीवाना नहीं देखा। और तुम जैसे दीवानों की वृद्धि हो जाए तो दुनिया में चारों ओर मिट्टी उड़ने लगे।"

रूपा खिलखिला कर हँस पड़ी—"मेरी भोली वहिन ! यदि तुम आँखें खोल कर न देखो तो दीवानों का क्या दोष ? इनसे तो संसार भरा पड़ा है।

चम्पा—(आश्चर्य से) "वह कौन से दीवाने हैं जो हमें दिखाई नहीं देते ?"

रूपा—(हँसकर) "बड़ी-सेनायें एकत्र करने वाले, देशों को विजय करने वाले, धन-दौलत इकट्ठी करने वाले, मान-मर्यादा के पीछे प्राण लगा देने वाले, पर्वतों और समुद्रों से हीरे-मोती समेटने वाले, महल बनाने वाले, बाग़ लगवाने वाले, फूलों के यौवन से बसंत उत्पन्न करने वाले, कोमल और सुन्दर ललनाओं से मन बहलाने वाले···कहाँ तक गिनवाऊँ, अंतहीन है--यह सभी दीवाने ही तो हैं चम्पा !"

चम्पा—(व्यंग से) "अच्छा, तो यह सब दीवाने हैं तुम्हारे निकट ?"

रूपा—"दीवाने नहीं तो और कौन हैं ? जिस घर में रहना न हो उसे बनाने सँवारने में मर मिटना, दीवानापन नहीं तो क्या है ?"

चम्पा का मुख झुंझलाहट से लाल हो गया। झल्ला कर बोली—"हटो, कौन सिर खपाये तुमसे ?"

रूपा ठहाका मार कर चम्पा से लिपट गई और चम्पा भी हँसने लगी।

चम्पा—"दरबार के लिए कब जाओगी ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपा—"बस अब तो सवेरे शाम चलना ही चलना है। आज चाचा-चाची शहर से कुछ कपड़ा इत्यादि लेने गये हैं। क्या कहूँ चम्पा ! मन कुछ स्वयं ही बैठा जाता है और यूं प्रतीत होता है कि यह गाँव फिर देखना भाग्य में नहीं लिखा।"

चम्पा—"तुम्हारे बाद मैं भी चली जाऊँगी। देखो अब कब मिलना हो ? मेरी आशीर्वाद है कि तुम सदा सुखी रहो।"

चम्पा का स्वर भर्रा आया और आँखें भर आई। रूपा भी प्रभावित हुए बिना न रह सकी, आँखों से मोती छलक पड़े और लिपट कर कहने लगी—चम्पा मुझे कभी न भूलना। मेरा जीवन-नैया ऐसी नदी में हिचकोले खा रही है, जिसका कोई तट नहीं दीखता। देखें इसका खेवनहार कब मिलता है और यह कब और कहाँ किनारे लगती है। सच जानो, मैं तो तुम्हें कभी न विसरा सकूंगी।

दोनों रोने लगीं।

१३

वह दिन भी आ ही गया कि रूपा को चाचा के संग जाना था। सेठ का बढ़िया रथ साँझ को ही पहुँच गया था। गाँव से राजधानी मांडू का फ़ासला लगभग डेढ़ मंजिल था। सवारियाँ प्राय: रात को मार्ग में पड़ाव करके अगले दिन दोपहर से पहले पहुँचती थीं। किन्तु सेठ के नागौरी बैलों की जोड़ी सवेरे की चली हुई उसी दिन, दिन ढले से पहले ही पहुँचाने वाली थी। गाड़ीवान ने रात ही को पहले पहर रथ के पहियों में तेल लगा कर सब सामान तैयार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर लिया था। बैलों को भूसी डाल दी और खाना खा कर चौपाल में लम्बी तान कर सो गया।

रूपा के घर में लगभग रतजगा ही रहा। आधी रात तक सखियाँ बैठी रहीं और चाची यात्रा के लिये पराठे और पूड़े तलती रही। जब इन कामों से अवकाश मिला और रूपा की सखियाँ भी अपने-अपने घरों को चली गई तो ओढ़ने-बिछाने और पहिनने के कपड़ों की सँभाल आरम्भ हुई। चाचा और रूपा के कपड़े अलग-अलग गठरियों में बाँधे गये। ओढ़ने-बिछाने का सामान अलग लपेटा गया और खाने-पीने के बर्तनों को अलग बोरी में सी दिया गया।

चाचा यद्यपि रथवान को खाना और बैलों को चारा दिला कर निश्चित होकर छप्पर के नीचे चारपाई डालकर लेट गया था, किन्तु आधी रात तक तो रूपा की सखियों के हँसने-बोलने के शोर में नींद न आई। जब उनके जाने के कुछ देर बाद आँख झपकी तो रूपा के रोकते-रोकते चाची आ धमकी। बोली, "ए! मैं कहती हूँ क्या सारी जवानी की नींद आज ही रात को पूरी करोगे। कुछ पता भी है घर में क्या हो रहा है?"

चाचा घबरा कर उठ बैठा और पूछने लगा, "हैं! क्या बात है?"

रूपा ने आगे बढ़कर चाचा को सांत्वना देते हुए कहा—"कुछ नहीं चाचा! सब कुशल है।"

चाचा ने सन्तोष का साँस लिया और चाची से बोला—"तुमने तो मुझे घबरा दिया। हाँ बताओ क्या बात है?"

चाची-चाचा के सायंकाल ही पड़े रहने पर मन ही मन कुढ़ रही थी, बोली—"लगे अब बात पूछने। रात-भर तो करवट न ली।"

चाचा—"तुम यूं ही बिफरी जा रही हो, मैं सोया कब हूँ?"

चाची—"लो और सुनो, यह खुर्राटे मैं मार रही थी? अच्छा अब कृपा करो, उठो!"

रूपा बीच में बोल पड़ी—"चाची! क्यों इन्हें तंग कर रही हो। क्या करेंगे यह उठकर? लेट जाओ चाचा।"

चाची—"चुप रह री! तू ने ही इनको बिगाड़ रखा है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपा को हँसी आ गई। चाचा भी हँस पड़ा। बोला—"देखती हो रूपा। अपनी चाची का नख़रा ?"

रूपा और चाचा दोनों हँस रहे थे कि चाची फिर चिढ़ गई—"मैं कहती हूँ उठोगे कि नहीं ?"

चाचा—(हँसकर) "भाग्यवान् ! यह तो बताओ उठकर करूँ क्या ?"

चाची—"यह अपना सामान देख लो ! बिस्तर, कपड़े, बर्तन, रास्ते के लिए यह खाना सब कुछ तैयार है।"

"और तम्बाकू ?" चाचा ने कहा।

चाची—"यह देखो ! अब सुध आई। लगे पूछने, तम्बाकू, कोयले को··· मैं कहती हूँ मैं नहीं जानती इस अला-बला को। उठकर स्वयं सँभालो।"

चाचा हँसता हुआ उठ खड़ा हुआ। आकाश पर दृष्टि डाली तो प्रभात का तारा चढ़ आया था, बोला—"ऊफ़ रूपा ! यह तो सवेर हो गई।"

चाची को अनायास हँसी आ गई, रूपा की ओर मुंह करके बोली—"ढिठाई के न्यौछावर जाइये। इस पर तो यूं कहते हैं कि मैं नहीं सोया और तारा चढ़ने का अब पता चला।"

चाचा हँसता हुआ भीतर चला गया और अपने तम्बाकू के सामान का झोला निकाल लाया इतने में चाची भी नर्म पड़ गई और नम्रता से बोली—"रूपा के चाचा ! देखना शीघ्र ही पलटना। मेरी तो अब इस घर में जी बड़ा घबरायेगा।"

रूपा और चाचा अनायास हँसने लगे और चाची भी मुंह फेर कर मुस्कराने लगी।

चाचा—"सुनती हो रूपा ! तुम्हारी चाची एक तमाशा है। बस, क्षण में तोला क्षण में माशा।"

चाची फिर बिगड़ गई। त्यौरी चढ़ा कर बोली—"अच्छा अब यह बातें बनाना छोड़िये। मैं कहती हूँ, बैलों के रास्ते की नहारी की भी कुछ चिन्ता है ? क्या रखा जायेगा? तुम्हें तो बस जीवन-भर कोई काम करना न आया।"

चाचा और रूपा मारे हँसी के फिर लोट हो गये और चाची थी कि दोनों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को देख कर बल खा रही थी। चाचा ने ती कोई उत्तर न दिया परन्तु रूपा हँसते-हँसते बड़ी कठिनता से बोली—"मैं बताती हूं चाची ! दो सेर घी, चार सेर गुड़, छै सेर दाना।"

पूरी तैयारी हो गई। पौ फट चुकी थी। चाचा ने जाकर गाड़ीवान को जगाया। नहाये धोये और रथ में सामान रखा जाने लगा। अभी सूरज उभरने न पाया था, कि रथ तैयार होकर गाँव से बाहर जा खड़ा हुआ और रथवान, रथ की कड़तनी पर बैठ कर गुड़गुड़ी गुड़गुड़ाने लगा।

रूपा के जीवन में गाँव से बाहर जाने का यह पहला अवसर था और इस-लिये एक घटना के समान था। सब साथ-खेली सखियाँ विदा करने के लिये आईं। गाँव की और भी कई स्त्रियाँ इकट्ठी हो गईं। सारा जमघट रूपा को बीच में लेकर रथ की ओर चल पड़ा। रथ के पास पहुँचकर जब वह एक-एक से मिलने लगी तो मन भर आया, किन्तु रोके रही। पर चम्पा से मिलते समय अधीर हो उठी और लिपट कर, फूट-फूट कर रो पड़ी। सखियों की आँखें भी भर आईं। चाची का मन भी पिघला तो सही, किन्तु जी कड़ा किये खड़ी रही। स्वयं तो बोला न गया किन्तु अपनी साथ वाली स्त्रियों को संकेत किया कि रूपा को सँभालें और समझायें। दो तीन ने आगे बढ़कर रूपा और चम्पा को अलग किया, रूपा के सिर पर हाथ फेरे, प्यार किया, सांत्वना दी। एक बोली,—"पगली कहीं की, चलते हुए यह अपशगुन नहीं किया करते।" दूसरी ने हँसते हुए कहा—'ससुराल तो नहीं जा रही।" तीसरी कहने लगी—"तेरी और सखियाँ हर पाँचवें-सातवें दिन कहीं-न-कहीं जाती रहती हैं, इसमें घबराने की क्या बात है ?"

रूपा ने बड़ी कठिनाई से मन को सँभाला और बड़ी हार्दिक कामना से सब को देखते हुए रथ में सवार हो गई। चाचा भी बैठ गया। गाड़ीवान ने रासें संभाल कर जो टोका, तो नागौरियों ने हिरण की सी चौकड़ी भरी और रथ तेज़ छनाके से चल पड़ा।

तालाब के घाट पर चौधरी का बेटा दातुन करते हुए खड़ा दिखाई पड़ा। उसकी आँखें रथ पर जमी हुई थीं। रूपा की त्योरी पर बल पड़ गये। उधर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का पर्दा गिरा कर दूसरी ओर मुँह फेर लिया और मुड़कर गाँव की ओर देखने लगी। पहियों का हर चक्र उसे अपनी जन्म-भूमि से दूर लिये जा रहा था। तकती रही, तकती रही, यहाँ तक कि दृष्टि और गाँव के बीच धूल ने एक चादर सी तान दी। भीगी पलकें मूंद कर भीतर हो गावतकिये से पीठ लगा-कर बैठ गई और विचारों में डूब गई।

साँप की भाँति फुंकारें मारते, धूल बरसाते नागौरी, मंजिल को लपेटते चले जा रहे थे। रथ के घुँघरूओं की झंकार, जंगल में यूँ गूँजती मानो बाज़ की शिकार पर झपट से सीटियाँ बज रही हों। रूपा मन-ही-मन बातें करने लगी, "रूपा! नाव छूट गई है और धार पर बह निकली है···देखें कहाँ थमे···राम जाने किसी भँवर में जा पड़ेगी या किनारे जा लगेगी···और वहाँ क्या दिखाई देगा।"

सहसा उसी सपने का विचार आ गया। आँखें स्वयं बंद हो गईं और जागते हुए भी स्वप्न देखने लगी। वह सुन्दर युवक सामने खड़ा है, श्वेत रेशम के वस्त्र, सिर पर हीरों से जड़ित ताज, गले में मोतियों की माला, कमर में जड़ित कटार, होठों पर मुस्कान और ऐसी तीव्र दृष्टि से देख रहा है कि देखे नहीं बनती···शरीर यूँ पिघला जा रहा है जैसे सूर्य की किरणों से बर्फ़। एका-एक़ उसने आगे बढ़कर कंधे पर हाथ रख दिया···सनसनाहट से प्राण घुलने लगे, घबरा कर आँखें खोल ही दीं, किन्तु शरीर की यह दशा हो गई। ठंडा, निष्प्राण, बिल्कुल मिट्टी। बेसुध हो कर फिर आँखें बंद कर के लेट रही।

रथ सपाटे भरता चला जा रहा था। चाचा रथवान से पूछने लगा—"क्यों भैया! बैलों को नहारी कहाँ दोगे? बहुत मंज़िल मार चुके हो।" रथवान ने उत्तर दिया—"बस अगले पड़ाव पर, फिर दूसरी डाँड में मांडू।"

रूपा ने पर्दा हटा कर देखा। सूर्य अभी सिर पर न पहुँचा था। चाचा से पूछा—"मांडू कब तक पहुँच जाएँगे?" चाचा उत्तर न दे पाया था कि रथवान बोल उठा—"दिन छिपने से पहले कड़ी मंजिल हम मार चुके हैं। अगले पड़ाव से जहाँ धुआँ उठता दिखाई दे रहा है, मांडू चौथाई मंजिल रह जाता है।" रूपा ने फिर पर्दा गिरा दिया और चुपचाप आँखें बंद करके करवट लेकर पड़ी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रही। रथ चला जा रहा था। थोड़ी देर में कुत्तों के भौंकने की आवाज़ें आने लगीं। समझी कि पड़ाव आ गया। पर्दा हटा कर देखने लगी। कुछ दिखाई न दिया। पूछा—"क्या पड़ाव आ गया चाचा ?"

चाचा—"हाँ बेटा ! आ गया।" वह बाहर झुक कर झाँकने लगी।

रूपा—"कहीं दिखाई तो देता नहीं।"

रथवान—"सामने वाले पेड़ों में है, रानी जी !"

रानी जी के शब्दों पर मुस्कुराने लगी। मन-ही-मन बोली 'रथ में जो सवार हूँ इसलिये रानी भी हूं।'

रथवान ने नागौरियों की रासें खींच लीं। पड़ाव आ गया था। पेड़ों की छाया में रथ रोक दिया गया और तीनों उतर पड़े। चाचा ने पेड़ों के नीचे एक ओर दरी फैलाई। रूपा थोड़ी देर टहलती रही। रथवान ने घी गुड़ की पतीली अलाव पर रख दी। जुटे जुताये बैलों को झाड़ा, कंधों पर मालिश की। इतने में ओंटी तैयार हो गई। नाल से पिला कर, बैलों को जूए से खोला और एक ओर पेड़ों की छाया में बाँध कर दाना-चारा डाल दिया। इस बीच में रूपा और चाचा मुँह-हाथ और खाने-पीने के बर्तन धो-धुला कर तैयार हो चुके थे। सबने बैठ कर खाना खाया। चाचा ने अपनी कली तैयार की, रथवान ने अपनी गुड़गुड़ी सँवारी और दोनों बैठकर पीने लगे।

इसी स्थान पर चौदह-पन्द्रह व्यक्तियों का एक और काफ़िला पहले से रुका हुआ था। इन में कुछ पुरुष थे और कुछ स्त्रियाँ। इनके साथ के कुछ साजों से यह स्पष्ट था कि यह लोग नायक और गायिकायें हैं। जब से रूपा रथ से उतरी थी वह देख रही थी कि सब की दृष्टि बार-बार उसकी ओर उठ रही है। खा-पी कर उठी और इन महिलाओं की ओर बढ़ी, जो पुरुषों से अलग कपड़ा बिछाये बैठी थीं। पास पहुँच कर अभिवादन किया और बैठ गई। महिलायें प्रसन्न-चित्त मिलीं। रूपा ने बातचीत आरम्भ की। वह लोग भी उत्सव में सम्मिलत होने के लिये मांडू जा रहे हैं। रूपा के साथ चूंकि गाने-बजाने का कोई सामान न था इसलिये उसके सम्बन्ध में यह न समझ सकीं, कि वह भी कोई गायिका है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक ने पूछा—"बीबी ! तुम मांडू में ब्याही हुई हो ?"

रूपा मुस्कराने लगी । उत्तर दिया—"नहीं ।"

दूसरी ने पूछा—"वहाँ कोई नातेदारी है ?"

रूपा फिर मुस्कराते हुए बोली—"नहीं ।"

पहली ने फिर पूछा—"तो मांडू से कहीं आगे जाओगी ?"

रूपा को हँसी आ गई । फिर उत्तर दिया—"नहीं ।"

उसकी हँसी और आँखों में चंचलता से महिलायें कुछ आश्चर्य में पड़ गईं और सब उसकी ओर ताकने लगीं । एक जो उनमें बड़ी थी और थोड़ी दूर तकिए पर सिर रखे पड़ी बातें सुन रही थी, न रह सकी । उठकर रूपा के पास जा बैठी और साथ वालियों से बोली—"तुम सब चुप रहो, मैं करूँगी इन बीबी से बातें ।"

सब हँसने लगीं । रूपा को भी हँसी आ गई । कहने लगी—"बहन ! मैं यही तो चाहती थी कि तुम भी आ बैठो । मैं तो आप लोगों से ही मिलने के लिए आई थी ।"

वह स्त्री लज्जित हो गई और बोली—"मुझे क्षमा कर दो । वास्तव में मुझसे बड़ी भूल हो गई । मैं लज्जित हूँ ।"

रूपा—(हँसकर) "मेरा तात्पर्य यह न था बहन कि तुम से मैं क्षमा मँगवाऊँ ।"

वह स्त्री—(वैसे ही लज्जित स्वर में) "तुम्हारा यह अभिप्राय हो या न हो पर मैं तो समझती हूँ कि मुझसे भूल हो गई । इस अशिष्टता का कारण तो केवल थकान है । हम लोग बहुत दिनों से यात्रा में हैं । मैं इस थकान को सब से अधिक अनुभव कर रही हूँ । इसीलिए वहाँ पड़ी लेटी रही ।"

रूपा—(बीच में ही) "यात्रा होती ही ऐसी है । आप लोग तो बहुत दिनों से यात्रा में हैं । मैं आज सवेरे ही चली हूँ, और थक गई हूँ ।"

वह स्त्री—(हँसकर) "अच्छा, तो बीबी तुमने मुझे क्षमा कर दिया है ?"

रूपा लजा गई और हाथ जोड़कर बोली—"आप मुझे क्यों काँटों में घसीटती हैं ! सच कहती हूँ, मेरा अभिप्राय यह न था, बल्कि मैं स्वयं लज्जित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हूँ कि मेरे मुँह से ऐसी बातें क्यों निकलीं। मैं प्रार्थना करती हूँ कि इस बात को छोड़ दीजिये।"

उस स्त्री को रूपा का सभ्य, वातचीत का ढंग बड़ा भला लगा। मन में कहने लगी कि लड़की अच्छी शिक्षा पाए हुए है। हँस कर चुप हो गई, और थोड़ी देर वाद बोली—"वीवी! फिर तुमने यह न वताया कि तुम कहाँ जा रही हो?"

रूपा सोचने लगी; कहाँ तक छिपाऊँगी इनसे। यहाँ न कहूँगी, पर आगे चलकर इन्हें स्वयं पता चल जाएगा।

उसने उत्तर दिया—"मांडू"

वह स्त्री—"किस कारण से?"

रूपा फिर सोचने लगी। फिर दृष्टि झुकाकर वोली—"जिस कारण से आप लोग जा रहे हैं।"

यह सुनकर सब प्रसन्न हुईं। उस स्त्री ने हर्ष प्रगट करते हुए हँसकर कहा, "फिर बीबी! तुम इतनी देर से अपने आपको छिपा क्यों रही हो?"

रूपा हँस पड़ी। संकोच से आँखें नीची करके विनम्र हो कहने लगी—"सच जानिये आप से यह कहते हुए लाज और झेंप सी अनुभव होती थी क्योंकि आप मुझसे बड़ी हैं और मैं आपके आगे एक शिशु से बढ़कर नहीं।"

इस उत्तर पर सब प्रसन्न हुईं और वह स्त्री जो अभी बातचीत कर रही थी, रूपा के व्यवहार से प्रभावित होकर प्यार से लिपट गई और उसका माथा चूम कर वोली—"जीती रहो! इसमें लज्जा-संकोच की कौन सी बात है। सम्भव है, प्रकृति ने तुम्हें, अपनी ऐड़ी देखूँ, जैसी सज-धज दी है वैसी कला में निपुणता भी दी होगी मुझे विश्वास है, होगा भी ऐसा ही।"

रूपा शरमा गई। उसने कोई उत्तर न दिया। कुछ क्षण के बाद कहने लगी--"एक बात से मैं कुछ चिन्ता में हूँ। मेरे साथ साज़िंदों का कोई प्रबन्ध नहीं है।"

वह स्त्री, उसका अभिप्राय समझ गई। तुरन्त बोली—"घबराओ नहीं वीवी। हमारे साज़िंदे तुम्हारे लिए उपस्थित हैं। वैसे दरबारी साज़िंदे संगत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के लिए रहते ही हैं। तुम इसकी कुछ चिन्ता न करो।" रूपा को सन्तोष हो गया। वह कृतज्ञता पूर्वक उसकी ओर देखने लगी। इतने में रथवान पुकार उठा—"रानी जी ! सूरज ढल गया है। मैं रथ जोड़ता हूँ।"

उसके मुँह से रानी जी सुनकर रूपा लजा-सी गई और आज्ञा लेकर उठ खड़ी हुई।

रथ तैयार हो गया। रूपा और चाचा बैठ गए। रथवान ने रासें सँभाल कर कड़तनी पर पाँव धरा ही था कि नगौरी फुंकारते हुए हवा से बातें करने लगे। यह जा, वह जा। रथ मंजिल को चाटता चला जा रहा था। अभी चार घड़ी दिन शेष था, कि मांडू के विशाल भवन और राजमहल के गगनचुम्बी बुर्ज दिखाई देने लगे। रूपा सूरज की ओर के पर्दे छोड़े लेटी हुई थी कि चाचा बोल उठा—"रूपा ! मांडू दिखाई पड़ने लगा।" रूपा एकाएक उठ बैठी और गर्दन बाहर निकाल कर देखने लगी। ज्यूँ-ज्यूँ रथ नगर के समीप पहुँचता जा रहा था, महल भी विशाल होते जा रहे थे और रूपा के मन की धड़कन भी तीव्र होती जा रही थी। मन में कह रही थी, 'देख रूपा ! भाग्य उधर ही खींच लाया है, जिधर से घबराती थी। राजाओं का साक्षात्कार करना, आग और पानी से खेलना है। न जाने भाग्य क्या दिखाता है ?'

रथ ने नगर में प्रवेश किया तो रूपा ने दोनों ओर के पर्दे उठा दिये। उसने जीवन में आज पहली बार नगर देखा था। विशाल भवन, बाजारों की चहल-पहल और चारों ओर की गहमा-गहमी को देखकर चकित हो रही थी। स्थान-स्थान पर रंग-बिरंगे झंडे लहरा रहे थे। सारा नगर दुल्हन की भाँति सजा हुआ था। खुले बाज़ारों के बीचों-बीच, नहरों का बहना, फव्वारों का छूटना, और सजे हुये उपवन, स्तब्ध करने वाले थे।

रथ ने सराय में प्रवेश किया, और सबने रात भर वहीं विश्राम किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपा की यात्रा यद्यपि इतनी कष्टप्रद न थी, परन्तु यात्रा फिर यात्रा थी। कुछ तो रात की जागी हुई थी, और कुछ गाड़ी के हिचकोलों से जोड़-जोड़ टूट रहा था। खाने से निपट कर लेट गई और लेटते ही सो गई। चाचा और रथवान हुक्का पीते रहे।

रथवान ने प्रात: को जाने की आज्ञा ली। पहियों में तेल डाला। बैलों को चारा डाला और थोड़े समय के बाद दोनों सोने के लिये लेट गए। सवेरे रूपा की आँख तब खुली, जब सूरज निकल आया था। बाज़ारों में पैदल और सवारों का आना-जाना आरम्भ हो गया था। गाड़ीवान तड़के ही जा चुका था और चाचा कली पी रहा था।

चाचा—"रूपा ! उठो, दिन चढ़ आया है। नहा-धोलो !"

रूपा ने अँगड़ाई ली और उठ बैठी। बोली—"रथवान चला गया ?"

चाचा—"हाँ बड़े तड़के।"

रूपा—"चाचा ! उसके लिए रास्ते में खाने-पीने, और नहारी का भी कुछ प्रबन्ध कर दिया था ? मुझे तो इतनी थकान हुई, कि साँझ ही से पड़कर सुध न हुई।"

चाचा—(हँसते हुए) "हाँ, बेटा ! तुम तो सो गई थीं। किन्तु मैंने उसके जाने का पूरा प्रबन्ध करके ही चारपाई से पीठ लगाई। खाने-पीने और नहारी के अतिरिक्त मैंने उसे चलते समय इनाम भी दे दिया।"

रूपा बहुत प्रसन्न हुई और बोली—"चाचा ! यह तो तुमने बहुत ही अच्छा किया। रथवान ने रास्ते भर, हमारे आराम का बड़ा ध्यान रखा और सेव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की कृपा का तो कहना ही क्या ? यदि उसका रथ न होता तो यह यात्रा यूँ सुविधा से न कटती ।"

चाचा—"यही बात है रूपा !"

रूपा दुपट्टा ओढ़ कर उठी और सराय के आँगन वाले कुएँ पर आई। वहाँ पिछले पड़ाव वाली स्त्री दातुन कर रही थी। आँखें चार होते ही दोनों मुस्कुराई। रूपा ने बढ़कर अभिवादन किया। उसने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। पूछने लगी—"यात्रा तो आराम से कटी ?"

रूपा—"जी, बहुत आराम से।"

वह स्त्री—"कब पहुँच गई थी ?"

रूपा—"जी, दिन छिपने से पहले।"

वह स्त्री—(हँसकर) "तुम्हारे बैल भी बला हैं। वहीं से जो वह फ़र्राटा भर कर उठे तो हम लोगों ने अनुमान लगा लिया था, कि यह साँझ से पहिले ही मांडू जा खड़े होंगे।"

रूपा—(हँसते हुए) जी हाँ ! ऐसा ही हुआ। आप लोग वहाँ से कब चले और कब पहुँचे ?"

वह स्त्री—"चल तो पड़े थे, तुम्हारे पीछे ही पीछे। किन्तु हमारी सवारियाँ ऐसी तेज़ न थीं। आधी रात आ गई थी, जब हम सराय में आये।"

रूपा—"दूसरी बहनें कहाँ हैं ?"

वह स्त्री मुड़ कर सामने संकेत करते हुए बोली—"वह सामने ! चलो वहीं चलकर बैठेंगे।"

रूपा—(हँसकर) "बहुत अच्छा।"

दोनों मुँह-हाथ धोकर चलने लगीं, तो रूपा को कुछ विचार आया। बोली—"कष्ट तो होगा, तनिक मेरे साथ आ जाओ, मैं चाचा से अनुमति ले लूँ।" वह रूपा की इस बात से बड़ी प्रसन्न हुई और बोली—"चलो, चाचा से मैं भी मिल लूँ।"

दोनों चाचा के पास आईं। रूपा ने चाचा से उसका परिचय करवाया। उस स्त्री ने अभिवादन किया और चाचा ने हँस कर बैठने को कहा। कुछ देर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बातें करने के बाद उस स्त्री ने रूपा को साथ ले जाने की आज्ञा चाही। चाचा बोला—"ठहरो ! पहले नाश्ता कर लें, फिर जाना।" वह स्त्री रोकती ही रही पर चाचा ने एक न सुनी, और लपक कर सराय से बाहर हो गया। दोनों हँसने लगीं। वह स्त्री चाचा की प्रशंसा करते हुए बोली—"यह मर्यादा कम ही देखने में आती है। अभी तो ढंग की जान-पहिचान भी तो नहीं हुई।" रूपा ने मुस्कुरा कर दृष्टि झुका ली और कहा—"यह तो साधारण बात है बहन ! जो शिष्टता पिछले पड़ाव पर आपने मुझसे बरती है, मैं तो उसे कभी न भूलूँगी।"

वह स्त्री—"अच्छा बीबी ! छोड़ो भी इस बात को। तुमने तो मेरी प्रशंसा की झड़ी लगा दी।" इस पर रूपा भी हँसने लगी।"

वह स्त्री—(हँसकर) "बहन, अब तक मैंने तुम्हारा नाम तो पूछा ही नहीं। देखो कितनी मूर्ख हूँ।"

रूपा—(हँसकर) "रूपमती मेरा नाम है। कहते सभी रूपा हैं।"

वह स्त्री—"और जन्मभूमि ?"

रूपा—(हँसते हुए) "देहातन हूँ। एक छोटा सा गाँव है, चाँदनगर।"

वह स्त्री प्रसन्न होकर हँसते हुए बोली—"भगवान नज़र न लगाये, सच ! रूपमती हो। तुम्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुई हूँ। तुम कल ही तनिक सी बात में मेरे मन में बस गई थीं।"

रूपा शर्मा कर हँसते हुए बोली—"बहन ! देख लो, शिष्टाचार के नाते अभी तक तुम्हारा नाम नहीं पूछ पाई।"

वह स्त्री इस बात पर अनायास हँस पड़ी और लिपट गई। बोली—"मुझे गुलनार कहते हैं। सारङ्गपुर की रहने वाली हूँ। किन्तु बात करने का ढंग इतना नहीं, जितना मेरे सामने बैठी देहातन को है।"

दोनों खिलखिला कर हँस रही थीं कि चाचा तीन बड़े-बड़े दोने लिये, सराय के फाटक पर दिखाई दिया।

नाश्ते से निपट कर गुलनार ने चाचा का धन्यवाद करने के बाद फिर आज्ञा चाही। चाचा बोला—"हाँ, हाँ, ले जाओ रूपा को ! परन्तु मेरा एक सुझाव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुलनार को ...

है ; वह यह कि तुम्हारे साथ जो साज़िन्दे हैं उनमें से दो एक को वहाँ सामान के पास बिठा कर, तुम सब रूपा के साथ यहीं चली आओ। तुम्हारे साथ वाले और मैं सब मिलकर नगर में जायेंगे ताकि ज्ञात करें दरबार में कब और किस ढंग से पहुँचा जायेगा ?"

गुलनार—"बहुत अच्छा सुझाव है आपका, चाचा !"

चाचा—"तो अच्छा शीघ्र करो !"

गुलनार रूपा को लेकर उठ खड़ी हुई। जब वहाँ पहुँचीं तो सब रूपा को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। कुछ परिचय तो पिछले ही पड़ाव पर हो चुका था। अब गुलनार ने रूपा का पूरा परिचय कराया और साथ ही चाचा के सत्कार का वर्णन भी किया। रूपा बीच में ही बोल उठी—"अब यह क्या कथा ले बैठीं आप ?"

सब हँसने लगीं। एक बोली—"बहन ! हम तो गायिकायें हैं। जिसका खाती हैं, उसी का गाती हैं। इस पर एक ठहाका पड़ा। जब यह गूँज ज़रा दबी, तो गुलनार ने चाचा का सुझाव रखा। यह सुझाव, सब को भाया और शीघ्र नाश्ता आदि से निपट कर सब की सब रूपा के यहाँ आ बैठीं। चाचा, उनके पुरुषों के साथ नगर को चल दिया।

नगर में चल-फिर कर यह पता चला कि उत्सव तीन दिन में है। किन्तु इसके अतिरिक्त और कुछ न ज्ञात हो सका। एक व्यक्ति ने, जो महलों से कुछ सम्बन्ध रखता था, बताया कि वह दुर्ग के नक्कारखाने पर जायें, जहाँ का दारोगा इसी काम पर नियुक्त है। वह सब सूचना दे देगा।

दुर्ग के फाटक पर पहुँचे। दूर से देखा कि फाटक के बाहर, घुड़सवारों की एक टुकड़ी, तड़क-भड़क कपड़े पहने, हाथों में भाले सँभाले दोनों ओर खड़ी है। यह लोग ठिठक गये। आगे बढ़ने का साहस न होता था। सोच रहे थे कि क्या करें, कि इतने में दो सवार फाटक के भीतर से निकलते दिखाई दिये। दोनों आपस में बातें करते, धीरे-धीरे इन्हीं की ओर आ रहे थे। पास पहुँचे, तो यह अभिवादन में झुक गये। सवार रुक गये और उनके वहाँ खड़े होने का कारण पूछा। चाचा ने आगे बढ़कर कहा—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"श्रीमान् ! हम लोग गायक हैं। दरबारी घोषणा पर यहाँ पहुँचे हैं। हम यह जानने के लिये उपस्थित हुए हैं, कि दरबार में हमारे आने का क्या साधन होगा ?" सवारों में से एक ने पलट कर उँगली का संकेत करते हुए कहा—"देखो तुम लोग सीधे चले जाओ, सामने वाले सवारों की टुकड़ी का अधिकारी, तुम्हें दारोगा जी के पास पहुँचा देगा, जो इसी कार्य पर नियुक्त है।" चाचा और उनके साथी चुप खड़े रह गये। सवार ने फिर पूछा—

"तुम समझे कि नहीं ?"

एक ने कहा—"श्रीमान् ! हमें तो आगे जाते हुये डर लगता है।" दोनों सवार मुस्कुराये, घोड़ों की रासें मोड़ लीं और बोले—"आओ।"

सवार सब को लेकर फाटक पर पहुँचे और टुकड़ी के अधिकारी को बताया "यह लोग गायक हैं, और दारोगा जी से मिलना चाहते हैं।"

अधिकारी ने विनम्र सम्बोधित किया और कहा—"देखो ! तुम लोग वहाँ फाटक के भीतर, बाग में ठहरो ! तुम्हें अभी बुला लिया जायेगा।"

आदेशानुसार सब बाग़ में जा खड़े हुए। बड़ा विशाल हरा-भरा उपवन, बीच में छोटे-छोटे सुन्दर मार्ग, फव्वारे और भरपूर फूलों की पंक्तियाँ। इसके तीनों ओर सुन्दर, विशाल-भवन, विचित्र दृश्य उत्पन्न कर रहे थे। नौकरानी और ख्वाजा-सरा तड़क-भड़क के कपड़े पहिने, इधर से उधर फिरते दिखाई दे रहे थे। एक ख्वाजा-सरा घूमता हुआ उनकी ओर आता दिखाई पड़ा। जब वह पास पहुँचा तो सब अभिवादन के लिये झुक गये। ख्वाजा-सरा मुस्कराया और बोला—"आओ !" यह कहकर पलटा और सब उसके पीछे चल दिये। ख्वाजा-सरा उन्हें एक दो-मंजिला मकान में ले गया। वहाँ हथियार बन्द प्रहरी खड़े थे। निचली मंचिल में दारोगा जी के सामने उपस्थित हुये। दारोग़ा एक चौकी पर तकिया लगाये बैठा था। पेचवान सामने धरा था। दाँये-बाँये उगालदान और पानदान रखे हुये थे। आठ-दस मुन्शी इधर-उधर बस्ते खोले कलमें कानों पर रखे बैठे थे। दारोगा के सामने सब अभिवादन को झुके। उसने मुस्कराते हुये पूछा—"तुम लोग कब आये ?"

चाचा—"श्रीमान जी ! कल सांय-काल।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दारोगा—"गायक हैं ?"

चाचा—"नहीं, श्रीमान जी ! सज़िंदे..."

दारोगा—"तुम्हारे साथ गायिकायें भी हैं ?"

चाचा—"जी हज़ूर !"

दारोगा—"कितनी हैं ?"

चाचा—"वह भी सात हैं, श्रीमान् जी !"

दारोगा—"कहाँ ठहरो हो ?"

चाचा—"सराय में सरकार।"

दारोगा ने मुंशियों की ओर देखा और बोला—"इन सबके नाम पते लिख लो।" मुंशियों ने सब के नाम, पते तथा हुलिया लिखना आरम्भ किया। दारोगा पेचवान की नली मुँह से लगाये धुआँ उड़ाता रहा। जब नाम-पते लिखे गये तो दारोगा बोला—"देखो ! तुम लोग, अपनी गायिकाओं को साथ लेकर दिन ढले तक यहाँ पहुँच जाओ। तुम्हारा आज ही यहाँ पहुँचना आवश्यक है। क्योंकि तुम्हारे लिये दरबार में पहिनने योग्य-वस्त्र तैयार करवाये जायेंगे। यदि तुम आज न पहुँचे तो तुम्हें दरबार में आने की अनुमति न मिलेगी।"

यह कहकर दारोगा मुंशियों से सम्बोधित होकर बोला—"इन्हें प्रवेश पत्र दे दो ! मुंशियों ने आज्ञा का पालन किया।

दारोगा फिर इन लोगों से बोला—"यह प्रवेश-पत्र तुम फाटक पर दिखा कर भीतर आ सकोगे। सराय में जो तुम्हारा सामान है, उसके पास एक दो व्यक्तियों को छोड़ आना ! तुम लोगों के पहुँचने पर सरकारी गाड़ियाँ उसे ले आयेंगी, और कुछ पूछना चाहते हो ?"

चाचा—"श्रीमान् का भाग्य ऊँचा हो ! उत्सव का समय जानना हमारे लिए आवश्यक है, साथ ही हमें राज-दरबार के नियमों से परिचित कराया जाए।"

दारोगा—(मुस्कुरा कर) "यह सब बातें तुम यहाँ पहुँच कर जान जाओगे।"

चाचा और उसके साथी अभिवादन में झुके। वहाँ से निकलकर बाग़ में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होते हुए दुर्ग के फाटक तक पहुँचे। फाटक अधिकारी ने प्रवेश-पत्रों का ध्यान पूर्वक निरीक्षण करते हुए कहा—"देखो, इन्हें सँभाल कर रखना। इनके बिना तुम्हें दुर्ग में प्रवेश की आज्ञा न होगी और आज सांयकाल से पहले तुम्हें हर प्रकार से यहाँ पहुँच जाना चाहिए।"

यहाँ से हँसी-खुशी यह लोग सराय में पहुँचे और सब गायिकाओं को, जो रूपा के पास बैठी गप्पें लगा रही थीं, यह सूचना दी।

सब सुनकर खिल गईं, किन्तु न जाने क्यों रूपा का हृदय धड़कने लगा।

दोपहर हो गई थी। गुलनार ने अपने साज़िन्दों को आदेश दिया कि शीघ्र जाकर बाज़ार से खाना ले आयें और खाकर राज-दुर्ग की ओर चलें।

गुलनार के आदमी जब बाज़ार को चलने लगे तो चाचा भी जाने के लिए उठा। गुलनार ने हँसते हुए चाचा का पल्ला पकड़ लिया और बोली—"आप नहीं जा सकते।"

चाचा आश्चर्य से बोला—क्यों ?"

गुलनार "यूँ" कहते हुए चाचा के पाँव की ओर झुकी थी कि रूपा ने झट बढ़ कर गुलनार को पकड़ लिया और हँसती हुई चाचा से बोली—"बैठ जाओ चाचा ! मत जाओ, यह बड़ी बहन के बिगड़ने के लच्छन हैं।"

सब हँस पड़े और चाचा ने भी गुलनार के सिर को चूमा और हँसता हुआ बैठ गया।

खाना आया। सबने मिलकर हँसी और ठहाकों की रेल-पेल में बड़ा आनंद ले लेकर खाया। खा-पीकर पाँच रथ-गाड़ियाँ भाड़े पर लेकर राज-दुर्ग को रवाना हुए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१५

राज दुर्ग के फाटक पर पहुँचकर सवारियाँ उतरीं और प्रवेश-पत्र दिखाये। द्वार पर नियुक्त सैनिक टुकड़ी के अधिकारी ने जाँच करने के लिए एक-एक का नाम पूछा। सिपाहियों की दृष्टि गायिकाओं पर पड़ रही थी। देखने का ढंग बता रहा था सब देखने वालों के मन डोल रहे थे, आखिर छान-बीन के पश्चात् उन्हें उसी बाग़ में प्रतीक्षा के लिए ठहरने की आज्ञा मिली, जहाँ सवेरे चाचा और उसके साथियों को खड़ा किया गया था।

रूपा आश्चर्यचकित खड़ी देख रही थी। सूर्य ढल जाने से फूलों पर निखार आ गया था और खिले हुए फूल यूँ प्रतीत हो रहे थे मानो दीपक जल रहे हों। नक्कार-खाने में तीसरे पहर की शहनाई बज रही थी। रूपा ने यह सजधज पहले कहाँ देखी थी! बार-बार आँखें झपकाती थी कि कहीं स्वप्न में तो नहीं? यह भवन, यह बाग़ सचमुच के ही हैं न?

सब खड़े यही देख रहे थे कि जिस भवन में सवेरे दारोगा जी से इन लोगों की भेंट हुई थी, वहीं से पाँच ख़्वाजा-सरा तड़कीले-भड़कीले वस्त्र पहने निकले और सीधे उधर ही आये। सबने झुक कर अभिवादन किया। ख़्वाजा-सरा मुस्कराये और उनमें एक जो आगे था बोला—"आइये।"

पाँचों ख़्वाजा-सरा आगे-आगे चल रहे थे और यह सब उनके पीछे-पीछे थे। पगडंडियों से घूमते हुए एक सुन्दर, श्वेत, विशाल भवन में पहुँचे। बरामदों में पत्थर के फूलदान सजे थे। खुले कमरे, कालीनों और रेशमी पर्दों और उन में बिछे बड़े-बड़े पलंग के बहूमूल्य और नर्म गुदगुदे बिस्तरों से सुसज्जित दिखाई पड़े। हर पलंग के साथ काले रंग की लकड़ी की चौकी। रुपहले पानदान, और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उगालदान रखे हुए थे। राज अतिथि-घर की सज-धज से सब की आँखों में चकाचौंध हो गईं। ख्वाजा-सरा सबको सम्बोधन करके बोला—"यह आप के ठहरने के लिए है, आपके अतिरिक्त यहाँ कोई न आयगा। आपकी सेवा के लिए यह चारों (दूसरे ख्वाजा-सराओं की ओर संकेत करके) यहाँ उपस्थित रहेंगे।"

यह कहकर ख्वाजा-सरा ने गायिकाओं में से एक-एक को ध्यान पूर्वक देखा और जब दृष्टि रूपमती पर आकर अटकी तो पूछा—"बहन ! आपका नाम ?"

रूपमती ने आँखें झुकाते हुए उत्तर दिया—"रूपमती।"

ख्वाजा-सरा मुस्कुराया—"तुम्हीं अच्छी रहोगी"। कहते हुए पीठ फिरा कर चल दिया।

सब मुस्कुरा दीं। रूपा लजा गई।

उसके जाने के बाद चारों ख्वाजा-सराओं ने कहा—"आप लोग अब खड़े न रहें, बैठें, लेटें, आराम करें और हमें बतायें किस चीज़ की आवश्यकता है ?"

चाचा—"भाई ! हमारा सामान शहर में राज-सराय में पड़ा हुआ है। यहाँ आकर सिवाय अपनी कली के, वैसे तो, अब हमें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं रही, परन्तु निवेदन है कि यदि वह भी मँगवा दी जाय तो हमारे साथी हमसे आ मिलें।"

कली का नाम सुनकर सब मुस्कुरा दिये।

ख्वाजा-सरा बोला—"इसकी चिन्ता न कीजिये। सरकारी गाड़ियाँ इसके लिये भेजी जा चुकी हैं। और आपके लिये (हँसकर) कली का भी अभी प्रबन्ध कर दिया जायेगा।"

सब-के-सब मुस्कुराने लगे, किन्तु चाचा घबरा गया और बोला—"बड़ा धन्यवाद ! किन्तु कली तो मैं अपनी ही पीऊँगा।"

सब अनायास हँस पड़े। ख्वाजा-सरा भी हँसने लगे।

अभी बातें हो ही रही थीं कि पहला ख्वाजा-सरा फिर आ गया और बोला—"देखिये ! वैसे तो हम स्वयं ही आकर पूछते रहेंगे, किन्तु जब भी किसी प्रकार की आवश्यकता हो हमें बुला लीजिये। हम इन सामने वाले कमरों में हैं। और हाँ, हमारे नाम भी याद कर लीजिये। मुझे फ़िरोज़ कहते हैं, इन्हें नीमरोज़,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इन्हें दिलदोज, इन्हें जिगरसोज़ और इन्हें शोला-अफ़रोज़ ।"

यह विचित्र नाम सुनकर सब मुस्कुराने लगे, किन्तु रूपा हँसी न रोक सकी। अनायास हँसने लगी। उसे हँसता देखकर और सब भी हँसने लगे और पाँचों ख्वाजा-सरा भी हँसते हुए चले गए।

इनके जाने के बाद भी बड़ी देर तक हँसी न रुकी। गुलनार हँसते हुए बोली—"ऐसे एक ही तुक वाले नाम आज तक न सुने थे।"

रूपा हँसते हुए बोली—"नामों से प्रतीत होता है कि यह नाम राजसी विनोद के लिये रखे गये हैं। इनके वास्तविक नाम कुछ और होंगे।"

गुलनार—"ऐसा ही होगा। तुम्हारा अनुमान ठीक हीं लगता है।"

शाम हो रही थी और सूर्य की किरणें धीरे-धीरे बढ़ते हुए अँधेरे में घुल-मिल रही थीं। रूपा, गुलनार और शेष सखियों को लेकर बाग़ में निकल आई और सब टहलती हुई हँसी-ठठोल की बातें करने लगीं।

गुलवार—"मन चाहता है, बस यहीं रहा करें।"

सब हँस पड़ीं। रूपा ठंडी साँस भरकर बोली—"बड़ी बहन! यह मत समझो यहाँ रहकर संसार की चिन्ताओं से मुक्त हो जाओगी। जिस सिर पर राजमुकुट है, उस सिर में सबसे अधिक पीड़ा है।"

गुलनार—"रूपा! बड़ी दिलदोज़ और जिगर-सोज़ बातें करती हो, यदि कहीं 'फ़िरोज़' सुन पाये तो क्या हो?"

सब ठहाका मारकर हँस पड़ीं। अभी यह बातें हो रही थीं कि सामने पग-डंडियों पर राज-सेवक सिरों पर कुछ उठाये आते दिखाई दिये।

गुलनार—"लो सामान तो आ गया...और पीछे-पीछे हमारे आदमी भी आ रहे हैं।"

एक बोली—"भाई! क्या बात है? क्या लगा-बँधा प्रबंध है।"

रूपा—"बहन! यदि ऐसा न हो तो राज्य क्योंकर चले?"

सामान एक ओर लगा दिया गया। चाचा ने अपनी कली निकाली और तम्बाकू चिलम में रखकर पुकारा—"अरे भैया जिगर सोज़।" जिगर-सोज़ तुरन्त लपक कर आया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चाचा—(चिलम उसकी ओर बढ़ाते हुए) "भैया ! ज़रा इसमें जलती-जलती चार अंगारियाँ तो रखकर ले आओ।"

सबकी सब हँसने लगीं और चाचा और जिगर-सोज़ भी एक दूसरे की ओर देखकर मुस्कुरा दिये।

रात का अँधेरा कमरों में छाने लगा था कि शोला-अफ़रोज़ आया। झरोखों में रखी हुई मोमबत्तियों को जलाकर उन्हें शीशे के फ़ानूसों से ढँककर चला गया।

थोड़े समय बाद फ़िरोज़ आया और भोजन के लिए कहा। सब भीतर चली गईं। दिलदोज़ और जिगरसोज़ हाथ धुलाने लगे और नीमरोज़ और शोला-अफ़रोज़ खाने के थाल ले आये। भोजन लगा और सब खाने लगे किन्तु खाने के थालों का ताँता था कि टूटता ही न था एक से एक बढ़िया पकवान।

रूपा हँसकर फ़िरोज़ से बोली—"भैया ! हमें जीता भी रहने दोगे कि नहीं ?"

इस वाक्य पर सब हँस पड़े और ख्वाजा-सरा भी मुस्कराने लगे।

खाना खाकर सबने अपनी-अपनी मसहरियाँ सँभालीं। पुरुषों ने एक ओर, और स्त्रियों ने दूसरी ओर। रूपा और गुलनार दोनों पास-पास रहीं। ख्वाजा-सराओं ने पान बना-बना कर हर मसहरी के साथ वाली चौकी पर रख दिये और आज्ञा लेकर चले गये।

कार्तिक की चाँदनी और ठंडी रात में फूलों की सुगन्ध में बसे हवा के झोंके कमरों को सुगन्धित कर रहे थे। सब पर एक उन्माद सा छाया हुआ था। रूपा और गुलनार थोड़ी देर तो मसहरी में लेटी बातें करती रहीं, परन्तु रूपा फिर मसहरी से बाहर निकल आई और गुलनार से बोली—"चलो बहन ! बाहर चलें।"

दोनों बाहर बाग़ में निकल आईं। चाँदनी खिली हुई थी। सामने दूधिया चाँदनी में राजमहल चमक रहा था जिसकी बुर्जियों में रंग-बिरंगी रोशनियों के फानूस एक समाँ उत्पन्न कर रहे थे। दोनों स्तब्ध मूर्त्ति बनीं, यह दृश्य देख रही थीं। रूपा मन-ही-मन सोच रही थी कि इन महलों में रहने वाला व्यक्ति कैसा होगा और उसका समय कैसे कटता होगा। गुलनार भी कुछ ऐसे ही विचारों में खोई हुई थी। कुछ देर बाद मौन को तोड़ते बोली—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"रूपा ! यह संसार भी विचित्र स्थान है और इससे विचित्र इसमें बसने वाले हैं। किसी को पेट भर रोटी नहीं मिलती और किसी के पास संसार के सब सुख एकत्र हैं। किसी के पास फूटी कौड़ी नहीं और किसी के पास धन-दौलत के ढेर लगे हैं। जाने भाग्य बनाने वाले ने यह अन्तर क्यों बना दिये हैं!"

रूपा—"सच कहती हो, इन भेदों को कौन जानता है ? किन्तु सत्य यही है कि यह रंगमय जीवन कोई ऐसी वस्तु नहीं, जिस पर ईर्ष्या की जा सके।

गुलनार—(आश्चर्य से) "यह क्या बात कही तुमने ?"

रूपा—"हाँ सच कहती हूँ। यह सुख तो केवल दर्शनीय हैं। वैसे इनका जीवन नित नई दुर्घटनाओं से भरपूर होता है। क्षण-क्षण के पीछे भय। हमारी साधारण आँखें तो इनकी राजसी विशालता पर चका-चौंध हो जाती हैं और हम इनके पीछे का अंधकार नहीं देख पाते। बहन ! ऐश्वर्य तो वह होता है, जिसमें शत्रु का धड़का न हो, सुख वही है जो पीड़ा रहित हो और जब यह नहीं, तो परिवर्तनशील स्थिति में भाँति-भाँति की इच्छायें और कामनायें भर लेना सबसे बड़ी भूल है। सुख जभी प्राप्त होता है, जब उसकी कामना छोड़ दी जाय और दुख से उसी समय मुक्ति मिलती है, जब दुख को दुख न समझा जाय।"

गुलनार आश्चर्य-चकित उसे तक रही थी। जब वह रुकी तो कहने लगी—"रूपा ! मैं तो तुम्हें केवल गायिका ही जानती थी। पर अब समझी तुम तो जोगन हो।"

रूपा—(हँसकर) "अब भी नहीं समझीं बहन ! जोगन तो नहीं, मैं बिरोगन हूँ।"

गुलनार—"किसका बिरोग है।"

रूपा—"जिसे आज तक देखा नहीं।"

गुलनार—"मैं नहीं समझी···"

रूपा कहने को तो यह बातें बहाव में कह निकली पर अब सँभली। न चाहती थी कि इसके आगे बढ़े। कहने लगी—"किसी मन-घड़ंत पुस्तक को पढ़ कर तुम उससे प्रभावित हुई हो ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुलनार—"हाँ कई बार···"

रूपा—"बस ऐसे ही, अपनी जीवन पुस्तक पर भी दृष्टि डाल लिया करो जिसमें मन-घड़ंत नहीं, बल्कि सच्ची कहानी लिखी है, तो बिरोगन ब जाओगी।"

गुलनार की आँखें छलक पड़ीं और वह उससे लिपट कर कहने लगी—"रूपा ! अब मैं समझी तुम स्वर्ग से उतरी हुई अप्सरा हो।"

रूपा हँस पड़ी, और आकाश पर दृष्टि डालकर चौंककर बोली—"ओह आधी रात हो गई।"

अभी यह बात हुई ही थी कि घड़ियाल ने बारह बजाये। दोनों बाग़ से पलट रहीं थीं कि फिरोज हाथ में चमकती हुई कटार लिये दिखाई दिया दोनों सहम कर खड़ी हो गईं।

वह ललकारा—"कौन हो तुम ?" रूपा ने सहम कर कहा—"मैं हूँ रूपमती।" फिरोज़ का उठा हुआ हाथ नीचे आ रहा, और बोला—

"हैं ! तुम, अब तक सोई नहीं ?"

रूपा—"हाँ भईया ! नींद नहीं आ रही थी। यहाँ आ खड़ी हुई। अब जो पलट रही थीं, तो तुमने, प्राण ही सुखा डाले।"

फ़िरोज़ हँस कर मुड़ गया और यहाँ दोनों भी दबे पाँव अपनी मसहरी में घुस गईं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपा और गुलनार की आँख उस समय खुली जब सुबह का नाश्ता चुना जा चुका था और सब खाने में व्यस्त थे। देखा कि चारों ख्वाजा-सरा खड़े हैं। फ़िरोज़ उनकी ओर देख-देखकर मुस्कुरा रहा है। उसे मुस्कुराते देखकर रात वाली कटार की बात याद आगई। एक दूसरी की ओर देखकरखूब हँसीं और फ़िरोज़ भी हँसने लगा।

सब आश्चर्य में थीं कि यह उठते ही इतनी हँसी किस बात पर है कुछ ने समझा कि हम लोगों के खाने पर इसलिए हँस रही हैं कि इनकी किसी ने प्रतीक्षा न की और स्वयं खाने बैठ गए। इसलिए जब कुछ ने इस बात पर क्षमा याचना की तो वह और हँसने लगीं और लोट-पोट हो गईं। इस पर सब का आश्चर्य और बढ़ा और जब एक ने इतनी हँसी का कारण पूछा तो रूपा हँसते-हँसते केवल इतना कह पाई कि—"प्राण बच गए।" जब हँसी रुकी और सब ज़रा सुध में आए तो रूपा ने रात वाली घटना सुना डाली। इस पर सब हँसने लगे किन्तु चाचा को क्रोध आ गया। कड़क कर रूपा से कहने लगा—"हँसी की बच्ची। कुशल हो गई, वरन् कुछ और हो गया होता तो? आज के पश्चात् कमरे से निकलीं तो टाँगें तोड़ डालूँगा तुम दोनों की।"

इस पर फिर सब मारे हँसी के लोट गये।

रूपा और गुलनार नहा धोकर नाश्ते पर बैठीं। अभी खाना आरम्भ ही किया था कि बाहर कोई दस बारह व्यक्ति एक ख्वाजा-सरा के साथ दिखाई दिये। सब उधर ताकने लगे। ख्वाजा-सरा ने भीतर आकर फ़िरोज़ को दर्जियों के आने की सूचना दी और फ़िरोज़ ने उन्हें बाहर ठहराने के लिए कहा। सब फ़िरोज़ का मुँह ताकने लगे। फ़िरोज़ ने बताया कि दर्जी आपका नाप लेकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दरबारी कपड़े बनायेंगे। सब एक दूसरे की ओर देखकर मुस्कुराने लगे।

दरबार की कल्पना से रूपा के हृदय में एक प्रकार की धड़कन-सी उत्पन्न हो गई। अकेली उठकर बरामदे में टहलने लगी। इधर नक्कार-खाने से शहनाई की धुन आरम्भ हुई। चौखट से लगकर चुप खड़ी सुनती रही। शहनाई बजाने वाले कलाकार थे। एक समाँ बँध गया। रूपा खो-सी गई। भीतर वाले भी सब शहनाई की आवाज़ पर झूम रहे थे।

शहनाई बंद हो गई किन्तु रूपा वैसे ही चौखट से लगी खड़ी थी। गुलनार भीतर से आई और हँसते हुए उसके कंधे पर हाथ रखकर बोली—"जागती हो!" रूपा ने चौंककर उसकी ओर देखा किन्तु कुछ न बोली। गुलनार ने फिर पूछा—"क्या सोच रही हो?" रूपा ने कोई उत्तर न दिया। उसका हाथ पकड़ कर बाहर निकल गई और बाग़ में फ़व्वारे के पास जा खड़ी हुई। कहने लगी—"बहिन! मैं कोई गाने वाली नहीं, यह कला मैंने केवल मन बहलाने के लिए सीखी थी। मैं यहाँ न आना चाहती थी इसलिए कि राजदरबारों से मुझे भय-सा लगता है किन्तु चाचा के असन्तोष के विचार ने विवश कर दिया, चली आई। अब ज्यों-ज्यों दरबार में जाने का समय निकट आ रहा है मेरे प्राण सन-सनाये से जारहे हैं। दूसरे सुनती हूँ, राजा स्वयं बड़ा कलावंत है तुमने शहनाई को सुना, जिसके दरबार में ऐसे-ऐसे योग्य गाने-बजाने वाले हों, उसके सामने भरे दरबार में स्वर निकालना कोई बालकों का खेल नहीं। फिर यह भी पता नहीं कि राजा किस स्वभाव का है? मुझे किसी के इनाम तथा प्रशंसा की इच्छा नहीं? हाँ! अपने अपमान से अवश्य भयभीत हूँ।"

गुलनार—"तुम तो पगली हो पहले तो हम निमन्त्रण पर आए हैं, जो कुछ आता है, सुना देंगे। चाहे राजा को अच्छा लगे या न...दूसरे यह कि राजा से डर हमें जब हो, जब हम कोई ऐसा अनुचित व्यवहार करेंगे। रहा यह प्रश्न कि राजा स्वयं कलावंत है, उसके सामने गाने का साहस क्योंकर होगा? यह धड़का व्यर्थ है। सोचो कि हम कहाँ की राधायें हैं जो यह विचार रखें कि हमारे गाने पर मस्त होकर सब नाचने लगेंगे। अभी शहनाई सुनते हुए चाचा की समझ-बूझ का जो अनुमान मैंने किया है, उसके आधार पर कह सकती हूँ कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चाचा तुम्हें बिना सोचे-समझे दरबार में नहीं ले आए···मैंने यद्यपि तुम्हें सुना नहीं···बस अब दरबार में ही सुनूंगी···किन्तु सच जानो, मुझे विश्वास है कि तुम हम सब से बढ़कर हो···"

रूपा बीच ही में अनायास हँस पड़ी। गुलनार ने बात चालू रखी—"हँसती क्या हो मैं बिल्कुल सच कह रही हूँ ?"

गुलनार अभी बात समाप्त भी न कर पाई थी कि चाचा नंगे पाँव बरामदे में आकर कड़क कर बोला—"भूल गई तुम दोनों को रात की कटार। क्यों प्राण देने पर तुली हो ?"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़ीं। रूपा बोली—"चाचा ! अब तो दिन है, कोई भय की बात नहीं।"

"चाचा (कड़क कर)—नहीं मानोगी ? भीतर आओ, नहीं तो मैं जाता

दोनों हँसती हुई बरामदे में चढ़ आईं और चाचा उनकी गर्दन में हाथ डाल कर उन्हें भीतर ले आया। इस पर सब खिलखिला कर हँस पड़े।

गुलनार ने रूपा की शंकायें दूर करने का यत्न तो बड़ा किया किन्तु, स्वयं उसका सन्तोष न हुआ था। थोड़ी देर इधर-उधर की बातों के बाद उसने चाचा से मन की शंका दूर करने के लिए पूछा—

गुलनार—"चाचा ! कुछ बातें पूछती हूँ, यदि आप अनुमति दें तो।"

चाचा—"हाँ, हाँ ! पूछो !"

गुलनार—"मेरा अनुमान है कि आप संगीत में निपुण हैं ?"

चाचा—(हँसकर) "यह अनुमान तुमने कैसे लगाया ?"

गुलनार—"यह बताने की आवश्यकता नहीं। बस आप यह बात बता दीजिए कि क्या मेरा अनुमान ठीक नहीं ?"

चाचा—"बेटा यह विद्या इतनी गहरी है कि इसके सम्बन्ध में कोई विश्वास से नहीं कह सकता कि वह इसमें निपुण है। मुझे इस विद्या की कुछ जानकारी तो है, किन्तु इतनी नहीं कि इसे निपुणता का नाम दिया जा सके··· आज सवेरे जो आप लोगों ने शहनाई सुनी उसमें राग तो ठीक था, किन्तु अन्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में तान भरपूर न थी। यह संगीत की बहुत बड़ी कमी है। इससे मेरा यह तात्पर्य नहीं कि मैं शहनाई बजाने वाले को बुरा कह रहा हूँ। वह इसका विशेषज्ञ है, किन्तु आखिर इन्सान है। अथाह सागर में कहाँ तक डुबकियाँ लगायेंगे, कहीं-न-कहीं साँस तो टूटेगी ही।"

चाचा की बात को सब ध्यान-पूर्वक सुन रहे थे। गुलनार बीच ही में हँस पड़ी और बोली—"बस चाचा ! मेरा अनुमान आपके सम्बन्ध में यदि बिल्कुल ठीक नहीं तो बिल्कुल झूठ भी नहीं।"

सब हँसने लगे और चाचा भी हँस पड़ा। पूछा—"परन्तु इस प्रश्न से तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?"

गुलनार—अभिप्राय आप अभी जान जायेंगे एक दो बातें और पूछती हूँ। पहले तो यह बताइये कि आपने रूपा को गाने की शिक्षा इन्हीं नियमों के अनुसार दी है जो आपने अभी बताये हैं ?"

चाचा—"हाँ, प्रयत्न तो इसी का करता हूँ।"

गुलनार—"यह जानते हुए कि राजा स्वयं बड़ा कलावन्त है, क्या आपको विश्वास है कि रूपा का गाना दरबार में पसन्द किया जायेगा जबकि उसकी आयु भी अभी इतनी नहीं कि वह कला की निपुणता को पहुँचे ?"

चाचा—"हाँ ? मुझे पूरा विश्वास है कि यदि सुनने वाले समझ रखते हैं तो रूपा का गाना अवश्य पसन्द करेंगे। रहा प्रश्न आयु का, तो जान लो कि किसी कला की निपुणता आयु पर नहीं बल्कि बुद्धि की तीव्रता पर निर्भर है। किन्तु इन प्रश्नों से तुम्हारा तात्पर्य क्या है ?"

गुलनार—(मुस्कुरा कर) यही कि सन्तोष हो जाये, और वह हो गया। विश्वास कीजिये चाचा ? रूपा में कुछ ऐसी मोहनी है कि मन से मैं उसकी सफलता की इच्छुक हूँ। दो ही दिन में मुझे उससे इतना अनुराग क्यों हो गया, यह स्वयं भी नहीं जानती।"

चाचा हँस पड़ा। बढ़ कर गुलनार को गले से लगा लिया। और सब लोग भी हँसने लगे। रूपा समझ गई कि गुलनार ने यह बात केवल उसका साहस बढ़ाने के लिये की थी। उसकी आँखों में आँखें डालकर बोली—"वारी जाऊँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुम्हारे विचारों पर।"

गुलनार—"दीवानों को यूँ ही शान्ति मिलती है।"

दोनों हँसने लगीं, किन्तु उनकी हँसी का अर्थ और कोई न समझा।

आज प्रातः से ही राजमहल में कोलाहल हो रहा था। मैदान में बड़े तम्बू और कनातें लगाई जा रही थीं। शामियाने तन रहे थे, जिनकी सुनहरी झालरें सूर्य की किरणों से झिलमिला रही थीं।

खाने का समय आ गया। फ़िरोज़ साथियों के साथ आया और जब अतिथियों को खाना खिला कर चलने लगा तो पूछने पर ज्ञात हुआ कि कल सवेरे नये राजा का राजतिलक होगा और यह सब प्रबन्ध इसी के लिये हो रहा है। रूपा के प्राण मानो निकल गये और मन धड़कने लगा। किन्तु, उसने अपनी मानसिक दशा किसी पर प्रगट न होने दी। गुलनार और दूसरी साथिनों से मन को बहलाये रखा।

रातभर दुर्ग के भीतर तथा बाहर असाधारण चहल-पहल रही। घोड़ों की टापें, ख्वाजा-सरा और नौकरानियों का मशालें हाथ में लिये दौड़ते फिरना, यह सब बातें इस बात की द्योतक थीं कि कोई बहुत बड़ा प्रबन्ध हो रहा है।

प्रातःकाल सब लोग शीघ्र ही नाश्ता करके निपट लिये। इतने में फ़िरोज़ दूसरे ख्वाजा-सराओं के साथ, दरबार में पहन कर जाने वाले वस्त्र लेकर भीतर आया, जो चाँदी के थालों में रखे हुए थे। पुरुषों के ज़री के कपड़े, और स्त्रियों की अतलस की सलवारें देख कर, आँखें चुँधिया-सी गईं। प्रत्येक के वस्त्र, उसकी मसहरी के पास रखी चौकी पर रख कर उसने कहना आरम्भ किया—

"मैं अब सायं से पहले न आ सकूँगा। किन्तु मेरे साथी आप की सेवा के लिये उपस्थित रहेंगे। आज एक पहर रात गये के बाद संगीत और नृत्य का कार्यक्रम राजमहल में आरम्भ होगा, जिसके लिए आपको सचेत कर रहा हूँ। दरबार में ले जाने को मैं आपके साथ होऊँगा। दरबार के नियमों के सम्बन्ध में आपको इतना बताना आवश्यक है कि ज्यों ही आप भवन में प्रवेश करें, बैठने से पूर्व, राज-सिंहासन के सामने झुक जायें। और जब दरबारियों से भवन भर जाये, और 'चारण' राजा के आगमन की सूचना दे, तो उसकी पहली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आवाज़ सुनते ही सबको सम्मान के लिये खड़ा हो जाना होगा और उसकी दूसरी पुकार पर ज्यों ही राज-सिंहासन के सामने का पर्दा हिले तो ससम्मान झुक जाना होगा। जब राजा सिंहासन पर बैठ जायेंगे, तो सब अपने स्थान पर बैठ जायें। इसके बाद दरबारी कलाकार बधाई के गीत गायेंगे,। आज की सभा केवल आप लोगों की होगी। दरबारी-गायिकायें यद्यपि वहाँ उपस्थित होंगी, परन्तु वह आज के नृत्य-संगीत में कोई भाग न लेंगी। दारोगा समय पर आप को सूचित कर देगा कि अब किसकी बारी है। अच्छा, अब मुझे आज्ञा दीजिये।"

रूपा की आँखों के सामने दरबार का चित्र घूम रहा था और मन धक-धक कर रहा था। फ़िरोज़ चलने लगा तो प्रार्थना पूर्वक बोली—"ए भैया! यह तो बता दो कि मेरी बारी कब आयेगी?"

उसकी चिन्ता पर सब गायिकायें हँस पड़ीं। फ़िरोज़ भी मुस्कुराने लगा और बोला—तुम बहुत व्याकुल हो रही हो। इसमें घबराने की क्या बात है? रही यह बात कि तुम्हारी बारी कब आयेगी, वह दारोगा से पूछ कर साँझ को बता दूँगा।" यह कह कर फ़िरोज़ चला गया।

कुछ समय के बाद अकस्मात राज-भवन के चारों ओर तोपों के गर्जने की आवाज़ें आईं। नक्कारख़ाने की शहनाई बजना आरम्भ हो गई और सामने लगे शमियाने के नीचे बाजे बजने लगे। सब लोग कमरों से निकल कर बाहर आ खड़े हुये और राजभवन की ओर देखने लगे। यद्यपि कुछ दिखाई न दे रहा था, फिर भी सबने अनुमान लगा लिया था कि राजतिलक हो चुका है और राजा ने मुकुट धारण कर लिया है। तोपें गर्ज-गर्ज कर चुप हो गईं, पर शहनाई बजाने वालों ने धीमे स्वरों में अपना संगीत चालू रखा।

अनुमान ठीक था। राजतिलक हो चुका था। अमीरों, वज़ीरों और विशेष-अधिकारियों ने उपहार प्रदान किये। कवियों ने यश-गान किये, धार्मिक-स्थानों, विद्यालयों और अनाथालयों और विधवा आश्रमों को रुपये बाँटे गये। फिर सेना की सलामी हुई। घुड़-दौड़, तीर-चलाना और तलवारों के करतब दिखाये गये। गैंडा और सिंह को भिड़ाया गया। संक्षिप्त में यह कि कहीं दिन ढले इस कोलाहल और गहमा-गहमी से शान्ति मिली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साँझ पड़े फ़िरोज़ सामने से आता दिखाई दिया। पहुँचते ही उसने पूछा—"आप लोगों को कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?"

सबने हँसकर एक साथ उसका धन्यवाद किया। फ़िरोज़ ने मुस्कुराते हुए संकोच से आँखें झुका लीं।

रूपा झट से बोली—"हाँ भैया ! बताओ मेरी बारी कब आयेगी ?"

रूपा की इस बात पर फिर सब हँसने लगे। फ़िरोज़ भी मुस्कुराने लगा और बोला—"तुम्हारी बारी सबके अन्त में है।"

फ़िरोज़ ने वैसे ही उसकी ओर मुस्कराते हुए देखकर कहा—"इसलिये कि तुम सब से अच्छी हो।"

इस पर एक ठहाका पड़ा। रूपा लज्जा गई और झुँझलाकर बोली—"फ़िरोज़ तुम बहुत बुरे हो।"

फिर एक ठहाका हुआ और फ़िरोज़ भी मारे हँसी के लोट हो गया।

चाचा के आदेशानुसार शाम को सबने बहुत थोड़ा खाया।

दुर्ग और राजभवन पर दीपमाला देखने के लिये सब बाग़ में आ खड़े हुए कि सहसा एक हवाई ने आकाश में फूल बरसा दिये और महल में आतिशबाज़ी आरम्भ हो गई।

मुझ से प्यार करोगी क्या ?

नहीं करूंगी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१७

सब बाग़ में खड़े ग्रातिशबाज़ी का दृश्य देख रहे थे कि सामने से फ़िरोज़ लपकता हुग्रा ग्राता दिखाई दिया ग्रौर ग्राते ही शीघ्र कपड़े पहन कर तैयार हो जाने का ग्रादेश दिया। सब कमरों की ग्रोर बढ़ीं। रूपा के शरीर में सनसनी-सी फैल गई। बरामदे की सीढ़ियाँ चलते हुए टाँगें काँप गईं। सबने कमरों में ग्राकर झट नये-वस्त्र पहिन लिये। गुलनार सज-सजा कर रूपा के कमरे में ग्राई। देखा कि सलवार पास रखी है ग्रौर स्वयं पीछे दोनों हाथों की टेक लगाये, पाँव फैलाये फ़र्श पर बैठी दीवार को तक रही है। साश्चर्य घबराकर बोली—"हैं! ग्रभी तक सलवार ही नहीं पहनी?"

रूपा ने उसकी ग्रोर देखा, ग्रनमने मन से धीमे स्वर में कहा—"ग्रभी पहिनती हूँ।"

गुलनार पास बैठ गई। सिर पर हाथ फेरने लगी ग्रौर उसका माथा चूमकर बोली—"रूपा! तुम्हें क्या हो गया है? बच्चा बनी जा रही हो। कैसे समझाऊँ तुम्हें? जी चाहता है सिर फोड़ लूँ...स्वयँ को सँभालो!"

रूपा झट झुरझुरी-सी लेकर उठ बैठी। शीघ्र कपड़े उठा लिये ग्रौर डबडबाई ग्राँखों से गुलनार की ग्रोर देखकर बोली—"क्रोध न कर बहन! मैं सँभल गई।"

गुलनार—"लाग्रो, पहले कंघी कर दूँ।"

रूपा के हाथ से कंघी लेकर शीघ्र उसके बाल सँवारे, चोटी गूँथी ग्रौर स्वयं उसे कपड़े पहनाने लगी। सलवार पहनने ग्रौर दुपट्टा ग्रोढ़ाने के बाद जो गुलनार ने उस पर दृष्टि डाली तो उसे देखती की देखती रह गई। यूँ लगता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

था कि कोई अप्सरा है जो पलक झपकने में आकाश से उतर आई है। बढ़कर लिपट गई। स्वयं रूपा की दृष्टि जो बड़े दर्पण में अपने पर पड़ी तो स्तब्ध रह गई। मुस्कान की एक लहर होंटों पर दौड़ गई।

गुलनार जब उसे कमरे से लेकर बाहर निकली तो सबकी दृष्टि उसी पर जमकर रह गई। इस बीच में फ़िरोज़ भी आ गया। साजिन्दों ने साज सँभाले और सब फ़िरोज़ के साथ राज भवन की ओर चल पड़े।

पगडंडियों से होकर सामने वाली फूलों की लता के बने प्रवेश-द्वार से जब राजमहल के बाग़ में आईं तो एक जादू का-सा समाँ दिखाई दिया। आँखें फटी की फटी रह गईं। पगडंडियों पर फानूसों में मोमबत्तियाँ जल रही थीं। संगमरमर की जाली से होते हुए झरने बह रहे थे, फव्वारे चल रहे थे और लम्बे-चौड़े हौज़ में झिलमलाता हुआ रंग-बिरंगा प्रकाश अति सुन्दर प्रतीत होता था।

सामने राजभवन का कोना-कोना दीपमाला से जगमगा रहा था। इन दृश्यों को देखकर, सब आश्चर्य में डूबे, इधर-उधर घूमते, राज-भवन की ओर बढ़े चले जा रहे थे।

रूपा का सारा शरीर सनसना रहा था। हृदय की यह दशा थी मानो कोई धौंकनी लग गई हो। पग-पग पर लड़खड़ाती, गुलनार के कंधे पर हाथ का सहारा लिये चली जा रही थी। गुलनार चलती-चलती उसे ढारस बँधाये जा रही थी—"क्यों डूबी जा रही हो? कहीं सिंह के पिंजरे में डालने तो नहीं ले जा रहे। सुध रखो। हम सबका मान तुम्हारे हाथ है।" किन्तु रूपा चुप थी, ऐसे जैसे कुछ सुन ही नहीं रही। इसी प्रकार चलते-चलते वह भवन तक पहुँच गये। फ़िरोज़ उन्हें पिछले द्वार की ओर ले गया जो कलाकारों के प्रवेश के लिए निश्चित था।

भीतर प्रवेश करते ही तीन सीढ़ी ऊँचे एक लम्बे-चौड़े चबूतरे पर चढ़ गये, जिसके बिल्कुल सामने पाँच सीढ़ी ऊँचा हीरों से जड़ित राजसिंहासन जगमग-जगमग कर रहा था। नीचे सशस्त्र ख्वाजा-सराओं की एक पंक्ति सुनहरे वस्त्रों में डूबी यूँ मूर्त्तिमान खड़ी थी, मानो पत्थर की घड़ी हुई हों। केवल आँखों के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

झपकने से पता चलता था कि वह मूर्तियाँ नहीं बल्कि जीवित मनुष्य हैं।

फ़िरोज़ के साथ सबके सब राजसिंहासन के सामने झुक गये। चबूतरे पर ईरानी कालीनों का फ़र्श था जिसके दायें-बायें लगभग एक सौ दरबारी गायिकायें सजी-धजी बैठी थीं। दरबारी साजिन्दे भी बैठे थे।

रूपा और गुलनार को फ़िरोज़ ने चबूतरे के मध्य में राजसिंहासन के सामने बैठने का संकेत किया। गुलनार ने रूपा को बीच में रखा, तीन-तीन उसके इधर-उधर हो गईं और स्वयं उसकी जाँघ मिलाकर बैठी। चाचा और साजिन्दे भी उनके साथ मिलकर बैठ गये।

चबूतरे से दो सीढ़ी उतर कर भवन का खुला चौड़ा फ़र्श सिंहासन के ईरानी कालीनों से सजा था। इसके दोनों ओर अमीरों वज़ीरों की सुनहरी कुर्सियाँ थीं। भवन की सजावट का क्या कहना था, जिधर भी दृष्टि जाती जम कर रह जाती। हरे कालीन, हरे पर्दे, छतों और दीवारों में लगे हरे झाड़ फ़ानूस···हरे रंग के प्रकाश की झिलमिलाहट ने एक समाँ बाँध रखा था, काफ़ूर और सुगंधित धूप की वातावरण में भीनी-भीनी महक बस रही थी।

दरबारी गायिकायें और कलाकार आने वालों में से एक-एक को बड़े ध्यान से देख रहे थे और फिर-फिरा कर सबकी दृष्टि का केन्द्र रूपा ही बनती थी कि आयु में सबसे अल्प और सौन्दर्य और सज-धज में सबसे उत्तम थी। गुलनार बार-बार चुटकियाँ लेकर उसे संकेत से कह रही थी कि जाने पूरे दरबार में केवल तुम्ही हो और रूपा दबे होंठों मुस्कराहट से उसकी ओर देख कर रह जाती थी। रूपा का मुख शान्त था।

एकाएक चारणों की 'होशियार,' 'बाअदब' की आवाजें कड़कीं और राज्य के मुख्य अधिकारियों और माननीय अतिथियों की एक भीड़ भीतर आई। सब राजसिंहासन के सामने झुके और उपाधि-अनुसार अपनी-अपनी कुर्सियों पर बैठ गये। भवन में हजारों ही व्यक्ति थे किन्तु मौन से यूं प्रतीत होता था मानो वहाँ कोई न था। सब की दृष्टि राजा के आगमन की प्रतीक्षा में सिंहासन पर जमी थी।

पिछले द्वार से दबे पाँव दारोग़ा चबूतरे पर आया और बीच में बैठी रूपा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के हाथ में एक पर्चा देकर उलटे पाँव वापस हो गया। इसमें सातों गाने वालियों के नाम उस क्रम से लिखे हुए थे जिस क्रम से उनका नृत्य होना था। साथ ही यह भी आदेश था कि एक नाच और एक गाने के बाद उसका कार्य-क्रम समाप्त हो जायेगा।

रूपा ने वह पर्चा सबको दिखा दिया। गुलनार का नाम सब से प्रथम था, सो वह घुँघरू बाँधने लगी। साज़िन्दे भी साज़ों को सँभाल कर बैठ गये। रूपा का नाम सबसे अन्त में था।

दरबार में प्रवेश करने के पूर्व जो डर रूपा के मन पर छाया हुआ था वह छँट चुका था। अब वह शाँत बैठी मन ही मन उस भाग्यवान पुरुष की छवि के चित्र बना रही थी जिसकी प्रतीक्षा में हजारों आँखें एक सुनहरे पर्दे पर जमी थीं। पर्दे के पीछे से वह दर्शन देने वाला था। कल्पना चित्र पर चित्र तैयार करती किन्तु मन की आँख उसे स्वीकार न करती।

इन्हीं विचारों में खोई हुई वह कितने ही चित्र बना रही थी कि चारण की आवाज़ कड़की—"होशियार···राजाधिराज पधारते हैं···" प्राण सन्न से हो गये, पूरा दरबार सावधान खड़ा हो गया और सबकी दृष्टि सुनहरी पर्दे पर जम गई। चारण फिर कड़का—"राजाधिराज राजसिंहासन पर बिराजते हैं..."

सुनहरी पर्दा हिला और सारा दरबार आदर के लिये झुककर फिर खड़ा हो गया। एक सुन्दर युवक, श्वेत रेशम के वस्त्रों में हीरों का मुकुट सिर पर, गले में बहुमूल्य मोतियों की माला, कमर में रत्न जड़ित कटार, होंटों पर मुस्कान, सामने दिखाई दिया।

गुलनार ने अनुभव किया कि रूपा ने एक झटका-सा खाया है और उसके पाँव डगमगाने लगे हैं। तुरन्त कमर में हाथ डाल दिया और सँभाल कर खड़ी हो गई। उसका सारा शरीर काँप रहा था।

राजा ने एक दृष्टि सारे दरबार पर डाली और बैठने का संकेत किया। सारा दरबार बैठ गया और दरबारी कलाकारों ने बधाई का गीत छेड़ दिया।

गुलनार आश्चर्य में थी कि रूपा की दशा यूँ बार-बार क्यों परिवर्तित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होती है। हजार सोचती थी, किन्तु कुछ समझ में न आता था। बात-चीत का कोई अवसर न था कि कुछ पूछ या कह सकती। रूपा, एक टक राजसिंहासन की ओर देखे जा रही थी।

बधाई का गीत समाप्त हुआ। गुलनार उठी और चबूतरे की सीढ़ियाँ उतर कर भवन के मध्य में पहुँचकर ठहर गई। झुककर अभिवादन किया। साजिन्दों ने धुन छेड़ी और वह नाचने लगी। नाच कूदने के बाद गाना आरम्भ किया। देर तक गाती रही। राजा तकिये से टेक लगाये बिना हिले डुले सुन रहा था। उसका ध्यान-मग्न होना जता रहा था कि वह प्रसन्न हो रहा है। दरबार वालों की भी किसी-किसी गत पर डोलती हुई गर्दनें यह बता रही थीं कि संगीत अपना प्रभाव डाल रहा है।

रूपा इस बीच सँभल चुकी थी। उसे विश्वास हो गया था कि सामने राजसिंहासन पर बैठा हुआ व्यक्ति ही उसके स्वप्नों का पात्र है, उसकी कल्पना की मूर्ति है जिसे वह कितने समय से मन में बसाये है। यह सत्य है, इसमें कोई भ्रम नहीं, किन्तु आश्चर्य में थी कि उस तक किस प्रकार पहुँचेगी। कहाँ कण और कहाँ सूर्य। फिर मन ही मन कहने लगी, 'रूपा! क्यों पगली हुई है...इस कामना को छोड़...क्या यही थोड़ा है कि देख तो लिया। हाय! इस समय न हुई चम्पा, मुझे झुठलाने वाली चम्पा, उलाहने देने वाली चम्पा, उसे दिखाती कि देख, यह है मेरा स्वप्न, मेरे स्वप्न की पूर्ति, स्वप्न की पूर्ति? यह क्या कह गई मैं...अभी कहाँ? किन्तु यह है तो वही, मुझे सताने वाला, मेरा सुख-चैन नष्ट करने वाला—अपने चाचा के उपकार कहाँ चुका सकूँगी, जिसने आज उस मन्दिर में पहुँचा दिया, जहाँ सामने अपने देवता को बैठा देख रही हूँ। आज इसके सामने नाचूँगी, जी भर के नाचूँगी। नाचना इसी के लिये सीखा था, आज अपना दुखड़ा इसे सुनाऊँगी कि यह इसी की देन है...'

इन्हीं विचारों में डूबी थी कि गुलनार गाना समाप्त करके अभिवादन को झुकी और उलटे पाँव हटती हुई चबूतरे पर पहुँच गई। उसकी दृष्टि जब रूपा पर पड़ी तो देखा कि रूपा उसकी ओर मुस्करा रही है, मुख पर तेज, आँखों में चमक, गुलनार यह देख कर खिल उठी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूसरी गाने वाली उठी और सभा में पहुँच गई। रूपा पर यह समय बड़ा क़ठिन बीत रहा था। बार-बार कसमसा रही थी, करवट पर करवट बदल रही थी कि कब उसकी बारी आयेगी।

जब अन्तिम गाने वाली उठी तो उसने सन्तोष की साँस ली। मुख पर लालिमा दौड़ गई। आँखों में चमक आ गई। मुस्करा कर गुलनार की ओर देखा। सलवार में लिपटे हुए दोनों पाँव बाहर निकाले और घुंघरुओं के लिये उसकी ओर हाथ बढ़ाया। गुलनार यह देखकर प्रसन्नता से फूली न समाई और स्वयं आगे बढ़कर उसके पाँव में घुंघरू बाँधने लगी। रूपा ने जो उसका हाथ पकड़ा तो उसने झटक कर परे कर दिया। रूपा मुस्कराने लगी। मुस्कराती जाती थी, और घुँघरू बँधवाती जाती। दृष्टि कभी सिंहासन पर थी, कभी गाने वाली पर। अन्त में गाना समाप्त हुआ और गायिका अभिवादन को झुकी। रूपा बिजली की भाँति तड़प कर उठी और गायिका के वापस पहुँचने की प्रतीक्षा करने लगी। उसने उल्टे पाँव रखते हुये, चबूतरे की पहिली सीढ़ी पर पाँव रखा था, कि वह लचकती हुई, सीढ़ियों से उतर कर, भवन के बीचों-बीच सिंहासन के सामने जा खड़ी हुई। गुलनार उसके इस परिवर्तन को आश्चर्य से देख रही थी। सारा दरबार उसके कुन्दन से दमकते-दमकते यौवन, सौन्दर्य और सज-धज को आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा। धीरे-धीरे अभिवादन को झुकी, और फिर वैसे ही धीरे-धीरे उठती हुई, सीधी तीर बन कर खड़ी हो गई। साजिन्दों ने धुन छेड़ी। धुन बज रही थी और यह मूर्तिवत् बिना हिले-डुले खड़ी थी। धुन बजती रही, बजती रही। पर वह सब लोगों की दृष्टि का केन्द्र बनी, खड़ी रही। साजिन्दे इस भाव को समझ गये। धुन को ऐसा रचाया कि गुंजन भवन के हर कण में समाने लगी। जब यह रंग जम गया, तो हाथों और पाँवों में भी हलचल उत्पन्न हुई। शरीर की लचक ने साथ दिया। सारा दरबार स्तब्ध हो उसे तक रहा था। राजा ने करवट बदली और तकिये के सहारे ज़रा उभर कर बैठा।

अब रूपा के पाँव की थिरक और शरीर की लचक क्षण-क्षण बढ़ती ही जा रही थी। धुन साथ दे रही थी। साज़ों की लय और तबले की थाप से एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ओर भवन में राग का मेंह बरस रहा था, और दूसरी ओर फर्श पर एक बिजली थी, जो तड़प-तड़प कर कौंध रही थी, एक तितली थी, कि व्याकुल, थिरकती फिर रही थी, कभी निकट तो कभी दूर। कभी सिंहासन के नीचे और कभी साज़िन्दों के समीप। दरबारी विस्मित उसे देख रहे थे। यूँ प्रतीत होता था, जैसे नस-नस में बिजलियाँ भरी हों। जी भर के नाची और खूब नाची। धीरे-धीरे धुन धीमी होती गई और नृत्य घटता गया। पीछे हटते-हटते चबूतरे की सीढ़ी तक पहुँच गई, और नृत्य समाप्त कर दिया। धुन बन्द हुई और वह अभिवादन को झुक गई।

दरबार में पूर्ण निस्तब्धता थी। किसी की पलक न झपक रही थी और साँसें तीव्र चल रही थीं। उसने मुड़ कर, धीरे से गुनगुना कर साज़िन्दों को धुन बताई, साज़ फिर छिड़ गये और नर्तकी अब गायिका बन कर फिर राज-भवन के मध्य में आ खड़ी हुई। धुन रच चुकी थी जब गाना आरम्भ हुआ।

स्वर का माधुर्य, राग का प्रभाव और गीत का अर्थ, गायिका का हाव-भाव दरबार पर जादू-सा बन कर छा गया। प्रत्येक पद्य के भाव की यूँ व्याख्या की कि हाव-भाव में चित्र-सा उतर गया। झूम-झूम कर गा रही थी और दरबारी भी खोये हुये से साथ झूम रहे थे। राजा बार-बार करवट बदल-बदल के रह जाता था। ऐसा प्रतीत होता था कि व्याकुलता छिपाने का प्रयत्न कर रहा हो।

गीत पूरा करके वह अभिवादन को झुक गई। राजा सिंहासन से उठ खड़ा हुआ। गायिका पर दृष्टि डाली और हाथ से सिंहासन की सीढ़ियों की ओर आने का संकेत किया। सिर पर आँचल ओढ़ कर वह बढ़ी और चार सीढ़ियाँ चढ़ कर फिर झुक गई। अभी पूरी उठी भी न थी कि राजा के हाथों से मोतियों की माला उसके गले में आ गिरी। सिंहासन के सामने पर्दा गिर गया। राजा जा चुका था।

पलट कर छम-छम करती हुई रूपा सीढ़ियों से उतरी और दरबारियों की पंक्तियों में से, जो अभी तक खड़े थे, दृष्टि झुकाये गुज़रती चली गई। मुख से हर्ष के स्थान पर गम्भीरता टपक रही थी। दरबारी विस्मित से कानाफूसी कर रहे थे। चबूतरे के पास गुलनार को देखते ही मुस्कुराई। वह झट सीढ़ियों से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उतर कर आ चिमटी। माथे को चूमा और सहारा देकर चबूतरे पर ले आई। साथ वालों की प्रसन्नता की कोई सीमा न थी। ऊपर आकर फर्श पर बैठ गई। घुँघरू खोलने लगी। गुलनार से बोली—"फ़िरोज़ आ जाये तो शीघ्र चलो। मैं बहुत थक गई हूँ।" दरबारी गायिकायें उसे ईर्ष्या की दृष्टि से देख रही थीं कि फ़िरोज़ मुस्कुराता आ पहुँचा और वह गृह को चल पड़ी।

१८

रूपमती के सौंदर्य और गायन-कला की निपुणता का चर्चा हर छोटे-बड़े में था। यह सम्मान आज से पहले किसी को प्राप्त न हुआ था। आतिथ्यि-गृह में पहुँच कर सबसे पहले फ़िरोज़ ने उसे बधाई दी। रूपा-ने संकोच से दृष्टि झुका कर उसका धन्यवाद किया, और बोली—"फ़िरोज़ भईया! हम लोग केवल आज रात तुम्हारे अतिथि और हैं। किन्तु मैं सच कहती हूँ, कि हम तुम्हारे अतिथि-सत्कार और सेवा को जीवन-भर कभी न भूलेंगे इस दरबार में मेरे भाग्य ने ही मुझे पहुँचा दिया वरना गाना-बजाना मेरा व्यवसाय नहीं है। राज-दरबार में जाते मुझे भय लगता था, किन्तु तुम्हारी कृपा ने मेरा साहस बढ़ाया।"

फ़िरोज़ इसके सुलझे हुए बात करने के ढंग से बड़ा प्रभावित हुआ। यह जान कर कि रूपा कोई नित्य की गाने-बजाने वाली नहीं, बहुत आश्चर्य हुआ। मुस्कुरा कर कहने लगा—

"बहन! मैं किसी धन्यवाद का पात्र नहीं। मेरी जिस अतिथि सेवा का तुम धन्यवाद करती हो, वह मेरी नहीं; बल्कि उसका सम्बन्ध राज-दरबार से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। हम तो केवल सेवक हैं, जो आज्ञा पाते हैं उसका पालन करते हैं। रही यह बात कि तुम स्वयं को केवल आज की रात का अतिथि समझ रही हो मेरे अनुमान के अनुसार यह ठीक नहीं। प्रात: होने दो और देखो कि राजा से क्या आज्ञा तुम्हारे लिए पहुँचती है। मैंने इसी विचार से तुम्हें बधाई दी है।" यह कह कर वह मुस्कुराता हुआ चला गया।

फ़िरोज़ का अन्तिम वाक्य रूपा के मन में पत्थर की लकीर बनकर रह गया। वह स्तब्ध हो कर रह गयी। चाचा और गुलनार के चेहरे पर प्रसन्नता खिल उठी।

रात अधिक बीत गई थी। सब लोग थकान अनुभव कर रहे थे। जम्हाईयाँ आ रही थीं। सब अपनी-अपनी मसहरियों में जा लेटे और कुछ ही देर में खर्राटे भरने लगे।

रूपा की आँखों में नींद न थी। गुलनार की ओर करवट ले कर बोली—"बहन! सो गई क्या?" गुलनार चुपके पड़ी जाग रही थी। बोली—"नहीं तो..."

रूपा ने फिर धीमे स्वर में कहा—"चलो बाहर चलें।" गुलनार बिना उत्तर दिए ही उठ खड़ी हुई और धीरे से पर्दा उठा कर बाहर निकली। दोनों दबे पाँव बाग़ में पहुँच कर फ़व्वारे पर जा बैठीं। दोनों साथ-साथ चुपचाप ऐसे बैठीं कि जैसे दो मूर्तियाँ हों। सामने राजमहल, रंग-बिरंगी रोशनी में जगमगा रहा था। कभी-कभी प्रहरी का स्वर रात्रि के मौन को तोड़ता था।

ऐसे ही बैठे-बैठे बहुत देर हो गई। गुलनार ने अन्त में इस मौन को तोड़ा और पूछा—"रूपा! तुम मुझे किस कारण से उठाकर लाई थीं।"

"हाँ! लाई तो थी" रूपा ने बड़ी देर में उत्तर दिया। गुलनार आगे प्रतीक्षा करने लगी कि वह क्या कहती है। पर रूपा चुप रही।

गुलनार ने फिर कहा—"तो कहो! क्या कहना चाहती हो?"

"क्या बताऊँ? क्या कहना चाहती हूँ?" इतना कह कर रूपा फिर चुप हो गई।

गुलनार अधीर हो उठी, बोली—"रूपा! मैंने तुम्हें समझने का बहुत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रयत्न किया है, किन्तु ; मैं तुम्हारी गहराईयों में न उतर सकी। मैंने तुम्हें चिन्तित भी देखा है, खोया हुआ भी पाया है, भयभीत भी अनुभव किया है, दरबार में जो भावों का उतार-चढ़ाव तुम पर बीता, वह भी देखा, फिर नाचते गाते समय तुम्हारी मस्ती को भी देखा और अब यह दशा भी देख रही हूँ। सच कहो यह सब क्या है ?"

रूपा कुछ देर तो चुप रही, फिर बोली—'-यदि मुझे तुम्हारी आवश्यकता पड़ी तो क्या तुम मेरा साथ दोगी ?"

गुलनार—"मन से, किन्तु तुम मुझे कुछ बताओ तो सही।"

रूपा—यदि फ़िरोज़ के अनुमानानुसार मुझे राजमहल में रुकने की आज्ञा मिली, तो मैं चाहती हूँ कि तुम भी मेरे साथ आलो।

गुलनार—मैं पहले कह चुकी हूँ कि मन से तुम्हारा साथ दूँगी ; पर तुमने मेरे प्रश्नों में से किसी का उत्तर नहीं दिया ?"

रूपा—गुलनार की ओर देखकर मुस्कुराने लगी और बोली—"तुम्हारे ढेर सारे प्रश्नों के उत्तर इतने थोड़े समय में दिये जाने सम्भव नहीं दूँगी, सब कुछ बता दूँगी, किन्तु अब नहीं। चलो सोयें !" यह कह कर रूपा उठ खड़ी हुई।

किन्तु गुलनार वैसे ही बैठी उसका मुँह तकती रही। रूपा ने हाथ पकड़ कर जो उसे उठाना चाहा तो गुलनार ने हाथ झटक कर छुड़ा लिया। झुँझला कर बोली—"यूँ न उठूँगी, जब तक तुम मेरी चिन्ता दूर न करोगी, और अपने मन का रहस्य न बताओगी।"

रूपा हँस पड़ी और लिपट गई। बोली—क्रोध न करो, प्यारी बहन ! मैं सब कुछ बता दूँगी, सब कुछ सुना दूँगी। तुम्हीं से परामर्श लूँगी, यहाँ तुम ही मेरे काम आओगी। अच्छा...लो, अब, तो उठो।

उधर राजा के शयन-गृह में काफ़ूर के दीपक प्रकाशमान थे और राजा छपरखाट पर लेटा, तकिये से पीठ लगाये एक दासी से बात कर रहा था—"तुम कहाँ थीं ?"

दासी—"झरोखे में, राजमाता की सेवा में थी।"

राजा—"अच्छा, वह भी वहाँ विराजमान थीं ? फिर !"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दासी—"राजमाता ने उसे बहुत पसंद किया।"

राजा—"क्या कहती थीं ?"

दासी—"यही, कि हमने इस सौंदर्य और सज-धज की कोई स्त्री नहीं देखी। ऐसा नृत्य नहीं देखा, ऐसा संगीत नहीं सुना।"

राजा ने दबी हुई एक ठंडी साँस भरी और मुस्कुरा कर दासी की ओर देखा—"तुम्हारे कानों को धोखा तो नहीं हुआ, अमानी !"

अमानी (दासी) आँखें झुकाकर—"नहीं श्रीमान्। कदापि नहीं।"

राजा (मुस्कुरा कर)—"तुम्हारा क्या विचार है ?"

अमानी—"किस के विषय में श्रीमान् !"

राजा—"जो बात राजमाता ने कही है ?"

अमानी—"उन्होंने सत्य ही कहा है, श्रीमान् !'

राजा—"तो तुम्हारा क्या विचार है, उसे राजमहल में बुला लिया जाये ?"

अमानी—"क्या हानि है ? श्रीमान् ! बल्कि, दासी के तो यह विचार हैं कि दरबारी गायिकाओं में उसके जोड़ की एक भी नहीं। एक बात जो विशेषता: उसमें है, वह यह कि उसका रंग-ढंग व्यवसायी गायिकाओं से बिल्कुल भिन्न है।"

राजा—"यह अनुमान तुमने कैसे लगाया ?"

अमानी—"राजसिंहासन की सीढ़ियों से जब वह पलटी है, तो दासी उसे ध्यानपूर्वक देख रही थी। बड़ी गम्भीरता के साथ, दृष्टि पर आँचल डाले, वह उपस्थित दरबारियों की पंक्तियों में गुज़रती चली गई। उसके मुख पर तनिक भी गर्व की झलक न थी, और न होठों पर मुस्कान। वरना श्रीमान ! इतने सम्मान के बाद उसे आपे से बाहर हो जाना चाहिए था।"

राजा कुछ रुक कर बोला—"यदि तुमने इसे ठीक जाँचा है तो तुम्हारी परख प्रशंसनीय है। अतिथि घर में कौन सेवक नियुक्त है ?"

अमानी—फ़िरोज, ख्वाजा-सरा।"

राजा—"अच्छा...सवेरे ही उसे कह दो, कि राजाज्ञा पहुँचा दे।"

अमानी—"जो आज्ञा श्रीमान ! एक विनती और।"

राजा—'क्या ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अमानी—"सम्भव है कि उसके साथ कोई स्त्री अथवा पुरुष और भी हो।"

राजा—"यह और भी अच्छा होगा। जो भी हों वह साथ रहें ! और देखो, यह कार्य अब तुम्हें सौंपा है। इसे पूर्ण करने का भार तुम पर है। अच्छा...पर्दे छोड़ दो !"

अमानी ने मसहरी के पर्दे गिरा दिये और अभिवादन करके चली गई। और राजा अपने सपनों की दुनियाँ में खो गया।

१९

यूँ तो आज अतिथि-घर वाले सभी देर से उठे और फ़िरोज़ उन्हें दो बार देख कर लौट गया। किन्तु रूपा की आँख उस समय खुली, जब सूर्य की रूपहली किरणों ने, अपना आँचल फैलाकर, झरोखे से उसकी बलायें लेनी आरम्भ कर दीं। वह घबरा कर उठ बैठी। गुलनार पास आ बैठी और धीरे से पूछा—

"तुम रात कब सोयीं ?"

रूपा ने, जो अभी तक थकी हुई जान पड़ती थी, अँगड़ाई ले कर उत्तर दिया—"मेरी आँख उस समय लगी जब मुल्ला ने बाँग दी, मंदिर की घण्टियाँ खनखनाईं।"

गुलनार—"यूँ कहो सवेर ही हो गई थी।"

रूपा—"जी हाँ ! और क्या ?"

गुलनार—"पर, क्यों ?"

रूपा—(मुस्कुरा कर देखते हुए) "फिर वही क्यों ? बता दूंगी, अधीर न बनो !"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दोनों, चुपके से हँसने लगीं। गुलनार ने कहा—अच्छा···उठो···! और नहा लो!"

"और तुम!" रूपा ने कहा।

गुलनार—"बस, मैं भी तैयार होती हूँ।"

रूपा मसहरी छोड़ स्नान-गृह में चली गई।

अमानी ने सवेरे ही फ़िरोज़ को राजाज्ञा से सूचित किया, तो वह मुस्कुराने लगा और बोला! "मैंने तो बहना! रात ही रूपा को बधाई दे दी थी।"

अमानी—(मुस्कुरा कर) "क्या परख है तुम्हारी, फ़िरोज़! अच्छा, उसका नाम रूपमती है? क्या प्यारा नाम है!"

फ़िरोज़—(हँसकर) "बहना! हर ढँग से, प्यारी है। सौन्दर्य से, कला से व्यवहार से, बातचीत से, क्या बताऊँ उसमें कितनी मोहनी है। राजा का चुनाव बड़ा उचित है। और हाँ, वह कोई व्यवसायी गायिका नहीं है।"

अमानी ने आश्चर्य से पूछा—"अच्छा!"

फ़िरोज़—"हाँ"

अमानी—"अच्छा तो अब उसे ले आओ! मैं अपने घर में तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी।"

फ़िरोज़—"रात को वह लोग बड़ी देर से सोये हैं सो अभी तक नहीं जागे। दो बार जाकर लौट आया हूँ। अभी फिर जाता हूँ। आशा है वे उठ चुके होंगे।"

अमानी—"शीघ्रता करना! सम्भव है कि राजमहल से मेरा बुलावा आ जाये।"

फ़िरोज़ सीधा अतिथि गृह में आया। देखा कि सब नहा-धो चुके हैं। रूपा श्वेत-वस्त्र पहिने, चौकी पर बैठी है। शरीर पर कोई गहना नहीं किन्तु सादगी पर हज़ारों श्रृङ्गार न्योछावर। फ़िरोज़ को बड़ी प्यारी लगी। दृष्टि जम कर रह गई। बाहर ही से पलट आया और नाश्ता उठवा कर लाया।

जब नाश्ता हो चुका तो फ़िरोज़ ने पहले तो रूपा की ओर मुस्कुरा कर देखा और फिर चाचा से बोला—"चाचा! आप को बधाई हो कि अभी-अभी राज-महल की मुख्य दासी अमानी ने, अन्तःपुर में रूपमती के बुलावे की आज्ञा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से मुझे सूचित किया है । अमानी उसकी प्रतीक्षा कर रही है ।"

चाचा की बाँछें खिल गईं । साथ वाली गायिकाओं ने रूपा को ईर्ष्या की दृष्टि से देखा और सबने चाचा को बधाई दी । रूपा खड़ी हो गई और राजाज्ञा के सम्मान में झुक गई । चाचा ने हँसते हुये रूपा को संबोधित किया—"हाँ, बेटा ! फ़िरोज़-भईया खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं ।"

गुलनार ने आकर रूपा का माथा चूमा और बोली—"तुम्हें बहुत,बहुत बधाई हो, मेरी रूपा !"

फ़िरोज़ की दृष्टि रूपा पर जमी हुई थी । वह चुपचाप गम्भीर खड़ी थी । एक दृष्टि गुलनार पर डाली और आँचल सिर पर डाल कर, फ़िरोज़ के पीछे-पीछे राजमहल की ओर चल पड़ी ।

फूलों की लता के प्रवेशद्वार से होकर राजमहल के बाग़ में आये, तो अमानी को अपने घर के सामने वाले उद्यान में खड़ा पाया । पलट कर रूपा से कहने लगा—"वह खड़ी है अमानी ।"

रूपा ने आँख उठा कर देखा तो अनुभव किया कि उसकी दृष्टि उधर ही जमी है, बोली—"जान पड़ता है, हमारी ही प्रतीक्षा में खड़ी हैं ।"

फ़िरोज़—"अवश्य"

उद्यान की पगडंडियों से घूमते-फिरते चले जा रहे थे । यूँ तो रूपा रात को भी इस मार्ग से गुज़री थी, किन्तु इस समय उसका दृश्य और भी सुन्दर लग रहा था । अमानी की दृष्टि रूपा पर ही जमी थी । अभी उनके बीच में कुछ फ़ासला था ही कि रूपा ने आँखें झुका लीं ।

तीस-पैंतीस वर्ष की आयु, तीखे नयन नक़्श यह थीं—अमानी बी । समीप पहुँच कर रूपा ने आँख उठा कर देखा और अभिवादन किया । फ़िरोज़ ने मुस्कुरा कर परिचय करवाया—"आप हैं अमानी जी ! राजमहल की दासियों की मुखिया और आप हैं, रूपमती ।"

रूपमती ने संकोच से आँखें झुका लीं और अमानी उसे देखकर मुस्कुराने लगी । फ़िरोज़ वहीं रुक गया । अमानी ने अपने साथ रूपा को लेकर घर में प्रवेश किया । बड़ा बढ़िया और हर प्रकार से सजा-धजा मकान था । अमानी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ने रूपा को एक मखमली गद्दे वाली चौकी पर बैठने का संकेत किया। रूपा, लज्जा से गर्दन झुका कर बैठ गई। अमानी बड़ी रुचि से उसे देख रही थी। सादा श्वेत वस्त्रों में, बिना किसी शृंगार के, वह एक राजकुमारी प्रतीत हो रही थी।

अमानी—"बीबी ! आप निःसंकोच होकर आराम से बैठें।"

रूपा—(दृष्टि झुकाये मुस्कुरा कर) "जी, बड़े आराम से बैठी हूँ।"

अमानी के संकेत पर एक दासी ने आगे बढ़कर पानदान रूपा के सामने किया। रूपा ने एक गिलौरी उठाई और मुँह में डाल ली।

दासियाँ चली गईं और दोनों अकेली रह गईं।

अमानी—(मुस्कुरा कर) "मैं आपको बधाई देती हूँ कि महाराज ने आपको उपस्थिति का उच्च-मान प्रदान किया है। आशा करती हूँ आपका मान दिन-प्रतिदिन बढ़ता रहेगा।"

रूपा—(उठकर अभिवादन करते हुए, विनम्रता से) "मैं तुच्छ दासी इतने बड़े सम्मान के लिए आपका धन्यवाद करने को शब्द कहाँ से लाऊँ ? महाराज मेरे लिए भगवान के रूप से कम नहीं, सो उनकी कृपा-दृष्टि के नीचे निराशा का स्थान ही नहीं।"

अमानी मन ही मन उसके बात करने के ढंग की प्रशंसा करने लगी।

अमानी—"सुनती हूँ बीबी ! आप कोई व्यवसायी गायिका नहीं।"

रूपा—(नीची दृष्टि किये, गम्भीरता से) "जी !"

अमानी—"तो फिर राजदरबार में आने का विचार कैसे हुआ।"

रूपा—(अमानी की ओर मुस्करा कर देखते हुए) "केवल विचार ही किसी निश्चय का प्रेरक नहीं होता, बल्कि प्रायः मानव, कई काम बिना विचार और निश्चय के भी करने पर विवश हो जाता है।"

अमानी उसकी इस प्रत्युत्पन्नमत्ता पर बड़ी विस्मित हुई। मन में कहने लगी कि लड़की है तो कल की बच्ची, किन्तु कितनी प्रौढ़ बुद्धि लिए हुये। अनायास हँस पड़ी, बोली—"आप सच कहती हैं बीबी ! ऐसी भी होता है।"

रूपा चुप रही।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अमानी ने फिर पूछा—"आपको राज-अतिथि-गृह में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?"

रूपा—(मुस्कुरा कर देखते हुए) "यदि स्वर्ग में आकर भी कोई कष्ट अनुभव करे तो उसका ठिकाना सिवाय नर्क के, कहीं भी न होना चाहिये। हम गरीब देहाती लोग तो इस ऐश्वर्य की कल्पना भी नहीं कर सकते।"

अमानी—"आप अपने आप को देहातन क्यों कहती हो ?"

रूपा—"जी, मेरे साथ वालियाँ तो सब शहरों की रहने वाली हैं किन्तु मैं वास्तव में देहातन हूँ।"

अमानी—"आश्चर्य है ! कहाँ की रहने वाली हैं आप ?"

रूपा—"राजा ही की प्रजा हूँ। यहाँ से डेढ़ मंजिल पर एक छोटा-सा गाँव है, चाँदनगर।"

अमानी—"वहाँ आप क्या करती हैं ?"

रूपा—"मैं तो कुछ नहीं करती। मेरे चाचा जिन्होंने मुझे पाला-पोसा है उनकी थोड़ी सी ज़मीन है। मेरे माता-पिता भी किसान थे, कुछ ज़मीन वह छोड़ गये। बस इसी से गुज़र होता है।"

अमानी—"आपके माता-पिता कब स्वर्गवास हुए ?"

रूपा—"जी, मैं तो बच्चा थी···उनकी सूरतें भी मुझे कुछ भली प्रकार याद नहीं है। मेरे चाचा-चाची, जिन्हें मैं अब चाचा-चाची कहती हूँ, वास्तव में मेरा इनसे कोई रक्त-सम्बन्ध नहीं। इन्होंने मुझे अनाथ जानकर गोद ले लिया और अपनी सन्तान की भाँति मेरा लालन-पालन किया था। चाचा के अपनी कोई सन्तान न थी। चाचा को संगीत से बड़ा प्यार था और उन्होंने मुझे भी इसकी शिक्षा दी। अब मैं, इन्हें ही अपना माता-पिता मानती हूँ। इन्हीं की इच्छा पर मैं यहाँ आई और दरबार तक मेरी पहुंच हुई। मैं जो कुछ भी हूँ इन्हीं के उपकारों से हूँ।"

अमानी—"यह जो आपके साथ वालियाँ हैं, इनसे आपकी भेंट कहाँ हुई ?"

रूपा—"यहीं, राज-अतिथि-घर में।"

अमानी—"बीबी ! आपकी बातें सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं आशा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करती हूँ कि आपको यहाँ कोई कष्ट नहीं होगा।"

रूपा ने ज़बान से तो कुछ न कहा केवल धन्यवाद में गर्दन हिला दी।

अमानी—"यहाँ आपके साथ कौन है ?"

रूपा—"जी, मेरे चाचा हैं।"

अमानी—"आप अपने चाचा के साथ अभी राजमहल में आ जायें। अब से आप यहाँ की अतिथि नहीं बल्कि यहीं का एक अंग हैं। आप के लिए राजभवन के बिल्कुल साथ एक मकान निश्चित किया गया है ?"

रूपा ने धन्यवाद में फिर गर्दन झुका दी और बोली—"कुछ विनती करना चाहती हूँ। मेरी चाची गाँव में हैं। मैं उन्हें भी यहाँ अपने संग रखने की प्रार्थना करती हूँ।"

अमानी—"हाँ अवश्य रखिये। उन्हें लिवा लाने का प्रबन्ध कर दिया जायेगा।"

रूपा—"दूसरी प्रार्थना मेरी यह है कि मेरी साथ वालियों में एक गायिका है गुलनार, दो ही दिन में मुझे उससे ऐसा अनुराग हो गया है कि बिछड़ने को मन नहीं चाहता, उसे भी अनुमति प्रदान की जाये।"

अमानी—"वही तो नहीं, जिसने सबसे पहले गाया था ?"

रूपा मुस्कुराने लगी—"जी वही। आप हमारे गाने के समय कहाँ थीं ?"

अमानी हँसने लगी—"मैं झरोखे से देख रही थी जहाँ राजमाता विराजमान थीं।"

रूपा—(मुस्कुराकर) "बड़ी भाग्यशाली हूँ कि राजमाता ने भी मेरा गाना सुना।"

अमानी—(मुस्कुराते हुए) "बल्कि बहुत पसंद किया।"

रूपा ने फिर धन्यवाद में गर्दन झुकाई और बोली—"तो क्या फिर मेरी यह प्रार्थना स्वीकार होगी ?"

अमानी—"निसन्देह स्वीकार है। गुलनार गाने वाली भी बुरी नहीं और वैसे भी सुन्दर है (स्वयं मुस्कुराने लगी) और सबसे बढ़कर यह कि आप उसे पसंद करती हैं।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपा के मुख पर प्रसन्नता से लालिमा दौड़ गई। बोली—"मैं धन्यवाद करती हूँ। अब मुझे आज्ञा दीजिए कि चाचा और गुलनार को जाकर यह सूचना सुना दूं।"

अमानी—"अब आपके जाने की क्या आवश्यकता है? फ़िरोज़ जाकर स्वयं उन्हें यहाँ ले आयेगा।"

रूपा—"राज-आज्ञा से मुंह मोड़ने की मेरी मजाल नहीं। मैं वहाँ केवल एक बार इस आशय से जाना चाहती हूँ कि उन सब से मिल लूंगी जिनके साथ तीन दिन इकट्ठी रही, और उनका और उनके साज़िन्दों का धन्यवाद करना भी अपना कर्त्तव्य समझती हूँ कि उन्होंने मेरे गाने में संगत की।"

अमानी को उसकी यह बात बड़ी अच्छी लगी। हँसकर बोली—"मैं आपके इस विचार की प्रशंसा करती हूँ, अवश्य जाइये।"

रूपा—"धन्यवाद! बस इनके साथ दोपहर का खाना खाकर चाचा और गुलनार के साथ फ़िरोज़ को लेकर यहाँ उपस्थित हो जाऊँगी। कृपया फ़िरोज़ को बुलवा दीजिए कि मुझे वहाँ पहुँचा दे।"

अमानी—"फ़िरोज़ तो बाहर प्रतीक्षा में खड़ा है⋯किन्तु आप दोपहर का खाना अतिथि-घर में नहीं खायेंगी। अपने मकान में खायेंगी। आपको बस केवल इतना अवकाश है कि जाकर उन लोगों से मिल लें। अतिथि-घर वाले लोगों को आज दोपहर के खाने के पश्चात पुरुस्कार, उपहार आदि देकर लौटा दिया जायेगा।"

यह कहकर अमानी ने एक दासी द्वारा फ़िरोज़ को बुलवाया और दोनों अतिथि-घर की ओर रवाना हुए।

अमानी बड़ी अनुभवी स्त्री थी। उसने पहिचान लिया था कि राजा रूपमती से प्यार करने लगा है। रूपमती से मिलने और उससे बातें करने के पश्चात् स्वयं उसके मन में रूपमती के लिये एक स्थान बन गया था। उसने सोच लिया था कि रूपमती केवल गायिका बने रहने के योग्य नहीं बल्कि इसे वह स्थान मिलना चाहिये जो इसके गुणों के योग्य है और स्वयं राजा जिसका इच्छुक है।

अतिथि घर वाले रूपा की वापसी की प्रतीक्षा बड़े उत्साह से कर रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जब वह पहुँचे तो सब प्रश्न सूचक दृष्टि से उन्हें देखने लगे। रूपा के मुख पर प्रसन्नता तो थी, किन्तु वह गम्भीर थी। वह आकर चुपचाप चौकी पर बैठ गई और सब उसकी ओर इस प्रतीक्षा में देखने लगे कि क्या कहती है। रूपा ने दो-एक बार चोर दृष्टि से गुलनार को मुस्करा कर देखा किन्तु मुँह से कुछ न बोली। आखिर फ़िरोज़ ने मौन को तोड़ा और मुस्कराते हुए बोला—"चाचा! आपके और गुलनार के लिये आज्ञा हुई कि आप रूपमती बहन के साथ राज-भवन में रहेंगे।"

चाचा की प्रसन्नता की सीमा न थी। गुलनार की आँखें यद्यपि प्रसन्नता से चमक उठीं, किन्तु अपने साथियों के मन टूटने के विचार से उसने अपनी इस भावना को प्रगट होने से रोका और गम्भीर रही।

फ़िरोज़ बोला—"अब आप उठें और मेरे साथ चलें क्योंकि राज-आज्ञा के पालन में क्षण भर की देर नहीं होनी चाहिये।"

चाचा और गुलनार तो खड़े ही थे रूपा भी उठ खड़ी हुई और साथ वाली गायिकाओं और साज़िन्दों को सम्बोधन करके बोली—"मैं आप सब बहनों-भाईयों का हार्दिक धन्यवाद करती हूँ कि आपने इस दो दिन के परिचय में ही इतना अच्छा व्यवहार किया है कि मैं इसे कभी न भूलूंगी। यदि जीवन है तो फिर मिलेंगे।"

सब उठ उठकर रूपा और गुलनार से गले मिलीं। चाचा ने अपनी कली हाथ में उठाई ही थी कि फ़िरोज़ हँस पड़ा और बोला—"चाचा! आप कष्ट न कीजिये, आपका सारा सामान पहुँच जायेगा।"

सब हँस पड़े और फ़िरोज, रूपा, चाचा और गुलनार को लेकर राजमहल की ओर रवाना हुआ। अतिथि-घर वाले खड़े उन्हें ईर्ष्या से देख रहे थे।

रूपा और गुलनार चलते-चलते हँसकर बातें करती जाती थीं।

गुलनार—"रूपा! कल रात जब हम तुम इन्हीं पगडंडियों पर चल रहे थे तो तुम कितनी घबराई हुई थीं। कैसे ठोकरें खाती हुई चल रही थीं, यह पता न था कि हम तुम यहीं की हो रहेंगी।"

रूपा—"ठीक कहती हो?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुलनार—"फिर जब राजा सिंहासन पर बिराजे तो तुम्हारी दशा क्या हो गई थी। मुझे तो डर हो रहा था कि कहीं तुम्हारे हृदय की गति न रुक जाये।"

रूपा हँस पड़ी और गुलनार की आँखों में आँखें डालकर बोली—"और मुझे उसी समय विश्वास हो गया था कि बस मैं और तुम, दोनों यहीं की हो कर रहेंगी।"

गुलनार आश्चर्य उसकी ओर देखने लगी और पूछा, "वह क्यों ?"

रूपा हँस पड़ी—"फिर वही। कह तो चुकी हूँ अवकाश में बैठ कर बताऊँगी।"

गुलनार झल्ला गई। बोली—'बड़ी नटखट हो...अच्छा मत बोलो मुझसे। जी चाहता है, मुँह नोच डालूँ तुम्हारा।"

रूपा हँसी के मारे लोट गई और ऐसी तीव्र हँसी कि फ़िरोज़ जो आगे-आगे चल रहा था पलट कर देखने लगा और पूछा—"क्या है ?"

रूपा तो हँसी के मारे बोल ही न सकी। गुलनार ने ऐसे उत्तर दिया जैसे बड़ी तंग आ गई हो—"कुछ नहीं भैया ! बस चले चलो।"

फ़िरोज़ समझ गया कि रूपा ने गुलनार को कुछ छेड़ा है। वह भी हँसने लगा।

अमानी रूपा के लिये निश्चित मकान के सामने खड़ी उनकी बाट जोह रही थी। जब यह समीप पहुँचे तो उसने आगे बढ़कर स्वागत किया। अभिवादन हुए, एक दूसरे से परिचय हुआ, अमानी गुलनार से गले मिली और चाचा ने मुस्कुराते हुए अमानी के सिर पर हाथ फेरा। फ़िरोज़ वहीं रुक गया।

अमानी उन्हें मकान के भीतर ले गयी। मकान अन्तःपुर के बिल्कुल साथ लगा हुआ था। मकान क्या था, एक छोटा-सा महल था। आवश्यकता की वस्तुएँ थीं और ख्वाजा-सरा, दासियाँ सब हाथ बाँधे बाहर खड़े थे। चाचा ने तो आते ही पहले कमरे में डेरे डाल दिये किन्तु अमानी ने रूपा और गुलनार को सब कमरों में घुमाया। मकान की सजावट देखकर दोनों विस्मित हो गई।

अमानी—(रूपा की ओर मुस्कुरा कर) "अब आप यहाँ विश्राम करें, यह महल आपका है और यह ख्वाजा-सरा और दासियाँ आपकी सेवा के लिये हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुझे आज्ञा दीजिये कि आपके आने की सूचना राजमहल में पहुँचा दूँ।"

अमानी चली गई। रूपा और गुलनार दोनों एक चौकी पर तकियों से सहारा लगा कर बैठ गईं। दोनों आश्चर्य में डूबी आस-पास की वस्तुओं को निहार रही थीं। रूपा ने मौन को तोड़ा—"प्रकृति का चमत्कार देखो कि पलक झपकने में क्या से क्या कर दिखाती है। कहाँ मेरा चाँदनगर का कच्चा और फूस की छतों वाला घर और कहाँ यह महल। कुएँ से पानी के घड़े भर-भर के उठा कर लाने वाली रूपा की सेवा के लिये आज दास-दासियाँ खड़ी हैं। कितने पथ-भ्रष्ट हैं वह लोग, जो दैवी-शक्ति को स्वीकार नहीं करते।"

यह कहकर उसकी आँखें भर आईं। गुलनार का भी गला भर आया और बोली—"सच कहती हो रूपा! मान देना या अपमान के गढ़े में गिरा देना उसी के अधिकार में है।"

इधर तो रूपा और गुलनार में यह बातें हो रहीं थीं उधर अमानी अकेले में राजा से कह रही थी—

"महाराज! रूपमती उपस्थित हो चुकी हैं।"

राजा—"कौन रूपमती?"

अमानी—"वही जिनके बुलाने की आज्ञा मिली थी।"

राजा के होंठों पर हल्की सी मुस्कान उत्पन्न हुई, जिसे अमानी ने तुरन्त भाँप लिया।

अमानी—"दासी ने इनके सम्बन्ध में जो कुछ जाना है, उससे दासी बड़ी प्रभावित हुई है, इसीलिये अन्तःपुर के साथ वाला भवन इनके रहने के लिये निश्चित किया है।"

राजा के होंठों पर मुस्कराहट आ गई—"हम तुम्हारे कार्य से बड़े प्रसन्न हैं अमानी!"

अमानी—"महाराज की आज्ञा हो तो उन्हें उपस्थित किया जाये।"

राजा—"अकेली आई है?"

अमानी—"नहीं महाराज! एक इनके चाचा, और दूसरी स्त्री गुलनार साथ हैं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राजा—"गुलनार कौन है ?"

अमानी—"यह वह गायिका है, महाराज ! जो दरबार में सबसे पहले नृत्य के लिये खड़ी हुई थी।"

राजा—(सोचकर) "हाँ ! याद आ गया। क्या यह कोई सम्बन्धी है ?"

अमानी—"नहीं महाराज ! राज-अतिथि-गृह में ही एक दूसरे से जान पहचान हुई है। और दो-तीन दिन के आपसी मेल-जोल में स्नेह बढ़ गया है। रूपमती की इच्छा थी कि वह उसके साथ रहे। इतना कहना और आवश्यक समझती हूँ, कि रूपमती कोई व्यवसायी गायिका नहीं बल्कि आप ही की छत्र-छाया के एक गाँव चाँदनगर की रहने वाली है। पूर्वजों का धंधा, खेती करना है। संगीत तो केवल चाव के लिये सीखा है। जहाँ तक दासी का अनुमान है, रूपमती विद्या और ज्ञान के गुणों से भी सम्पन्न है।"

राजा के मुख पर प्रसन्नता के चिह्न उभरे, कुछ सोच कर बोला—"अच्छा रूपमती का अकेले आना उचित नहीं। दोनों उपस्थित हों !"

अमानी झुकी, और उल्टे-पाँव बाहर चली गई। रूपा और गुलनार, चौकी पर बैठी बातें कर रही थीं कि अमानी दिखाई दी। दोनों चौकी छोड़ उठ खड़ी हुईं।

अमानी—(मुस्कुरा कर) "चलिये ! अभी ही आप की उपस्थिति की आज्ञा मिली है।"

रूपा और गुलनार, धन्यवाद के लिए झुक गईं। अमानी, रूपा की ओर देखते, मुस्कुरा कर बोली—"बीबी ! सौंदर्य किसी गहने का अधीन नहीं, किन्तु महाराज के समक्ष जाने के लिये, उनका दिया पुरस्कार तो गले में होना आवश्यक है।"

रूपा ने लज्जा से दृष्टि झुका ली, और गुलनार ने रूमाल में लिपटी, मोतियों की माला निकाल कर उसके गले में डाल दी।

तीनों अन्त:पुर की ओर चल दीं। अमानी आगे-आगे चल रही थी, और दोनों पीछे-पीछे मुस्कुराती चल रही थीं।

अमानी ने रूपा के घर से निकलते ही, सामने के भवन की ओर संकेत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करते हुये, अर्थ-पूर्ण मुस्कुराहट से देखकर कहा—"यह है राजप्रसाद, जहाँ आप जा रही हैं। आप से अधिक सामीप्य किसी को नहीं मिला, रूपा ने लजा कर धृष्टि झुका ली, और मुस्कुराने लगी—यह प्रसाद संगमरमर के एक विशाल चबूतरे पर बना था, जिसकी लम्बी-ऊँची मेहराबों में, रेशम के जालीदार पर्दे लटक रहे थे। अमानी दोनों को बाहर ठहरा कर, स्वयं पर्दा हटा कर भीतर गई और तुरन्त पलट कर हाथ से आने का संकेत किया।

दोनों बढ़ीं, रूपा एक पग आगे और गुलनार बायीं ओर, एक पग पीछे। पर्दे के निकट पहुँच कर, रूपा ने सिर का आँचल एक बार फिर से ठीक किया। अमानी ने पर्दा हटाया और दोनों भीतर आ गईं। अमानी बाहर ही रह गई। नीचे कालीन बिछें हुये थे और सामने राजा, श्वेत रेशम के वस्त्रों से सुसज्जित गाव तकिये से पीठ लगाये, टाँग पर टाँग रखे बैठा था। रत्नजड़ित कटार पास धरी थी।

दोनों चुपचाप, धीरे-धीरे अभिवादन को झुकीं और फिर दृष्टि झुकाये सीधी खड़ी हो गईं। रूपा को राजा की दृष्टि सिर से पाँव तक देख रही थी। श्वेत और सादा वस्त्रों में वह ऐसे लग रही थी मानों चीनी की पुतली खड़ी हो। कुछ क्षण बाद राजा धीमे स्वर में बोला—

"आगे बढ़ आईये !

रूपा के प्राणों में कंपन उठा, वह दृष्टि झुकाये, धीरे-धीरे पाँव रखती आगे बढ़ी और सिंहासन से कुछ दूरी पर खड़ी हो गई। राजा ने फिर विनम्र होकर कहा—"बैठ जाइये !"

दोनों वैसे ही आँखें झुकाये घुटने टेक कर बैठ गईं। रूपा कनखियों से देख रही थी कि राजा की दृष्टि उसी पर जमी हुई है। वह सिमटी जा रही थी, पसीने-पसीने हुई जा रही थी और यह अनुभव कर रही थी कि शरीर पिघला जा रहा है। बड़ी देर तक मौन छाया रहा।

आखिर राजा बोला—"तुम्हारा ही नाम रूपमती है !

रूपा—(गर्दन को थोड़ा झुका कर) "जी महाराज।"

राजा—"हम सुनते हैं तुम कोई व्यवसायी गाने वाली नहीं, फिर दरबार में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आने का विचार क्योंकर उत्पन्न हुआ ?"

रूपमती ने सँभल कर तुरन्त उत्तर दिया—"महाराज ! यदि एक तुच्छ तिनका हवा के किसी झोंके से उड़कर राजमहल में आ गिरे तो इसमें अनहोनी क्या है ?"

रूपमती ने कनखियों से देखा कि राजा के होठों पर मुस्कुराहट खेल रही है ।

राजा—"तुमने संगीत की शिक्षा कहां से पाई ?"

रूपमती—"अपने चाचा से सरकार ।"

राजा—"हम तुम्हारी कला से बड़े प्रसन्न हैं रूपमती और राजमाता ने भी तुम्हारी प्रशंसा की है ।"

रूपमती उठकर सादर झुकी और कहने लगी—"दासी के लिये इससे बढ़कर सम्मान और क्या हो सकता है ।"

राजा—"हम तुम्हें गायिका नहीं समझते रूपमती । तुम्हें राजमाता की सेवा को भी श्रेय प्राप्त होगा और हम से भी मिल सकोगी ।'

रूपमती—(गर्दन झुका कर) "दासी का सिर गौरव से ऊँचा हो गया है, महाराज !"

राजा—"सम्भव है, नये स्थान में तुम कुछ दिन घबराओ किन्तु हम आशा करते हैं कि यहाँ के वातावरण में तुम शीघ्र ही घुल-मिल जाओगी ।"

रूपमती—"स्वामी ! भाग्यहीन है वह, जो प्रभु की छत्रछाया में पहुँचकर भी घबराये ।"

रूपमती दृष्टि झुकाये बैठी थी । राजा की बातों का उत्तर दे रही थी और कनखियों से जाँच रही थी कि राजा हर उत्तर पर मुस्कुराता है और उसकी आँखों की आभा बढ़ जाती है ।

राजा गुलनार से सम्बोधित हुआ—"तुम्हारा नाम गुलनार है ?"

गुलनार—(गर्दन झुका कर) "जी ।"

राजा की आवाज पर अमानी लपक कर भीतर पहुँची । संकेत पा कर एक संदूकचा उठा लाई और उसमें से गहने निकाल कर पहले रूपा को और फिर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुलनार को पहनाये। दोनों आँखें झुकाये सम्मान के लिए उठीं और फिर बैठ गई। अमानी रूपमती के आँखों को चुंधिया देने वाले सौंदर्य को आश्चर्य-चकित खड़ी तक रही थी। राजा की दृष्टि भी इस प्रकाश की पुतली की परिक्रमा करने लगी। थोड़ी देर बाद राजा के संकेत पर अमानी ने चौकी पर से तान-पुरा उठा कर गुलनार के हाथों में दे दिया और स्वयं अलग हटकर स्तम्भ से लग कर खड़ी हो गई।

राजा—"तुम्हारे गले में भी कोयल है गुलनार! किन्तु शीघ्रता में तान को अधूरा न छोड़ जाया करो।" राजा के होंठों पर हल्की-सी मुस्कुराहट आ गई।

गुलनार—(गर्दन झुका कर) "सत्य वचन, महाराज!"

राजा—(रूपमती से) "यदि कोई संकोच न हो रूपमती तो हम कुछ सुनना चाहते हैं।"

रूपमती—(झुक कर) "आज्ञा-पालन तो दासी का सौभाग्य है।"

राजा—(मुस्करा कर) "आराम से खुल कर बैठो, तुम इस समय दरबार में नहीं हो।"

रूपमती लजा कर झुक गई। होठों पर मुस्कुराहट आ गई राजा की कृपा-दृष्टि से साहस का संचार अनुभव कर रही थी।

गुलनार ने तानपुरा छेड़ दिया और संगीत की फुहार सी पड़ने लगी रूपमती पर मस्ती और उन्माद-सा छा गया। सिर पर आँचल ठीक करते हुए तानपुरे से स्वर मिलाया और गाना आरम्भ किया—

"आज इस बज़्म में वह जलवा-मा होता है।
देखिये, देखिये इक आन में क्या होता है।

राजा फड़क गया और अनायास मुस्कुरा दिया। व्याकुलता की दशा में घुटना बदल कर तकिये पर कुहनी रखते हुए बोल उठा—"सुन्दर, अति सुन्दर, रूपमती।"

रूपमती ने दबे होठों मुस्कराते हुए यह पंक्तियाँ फिर गाईं, स्वयं भी डूबी हुई गा रही थी और राजा की दृष्टि भी उस पर यूं जमी हुई थी कि पलटने का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नाम न लेती थी। वह संकेत राजा की ओर था।

आगे गाया—

फिर नज़र झेंपती हैं, आँख झुकी जाती है,
देखिये, देखिये फिर तीर खता होता है।

तो राजा की आँखें मस्ती में स्वयं बंद हो गईं। बार-बार रूपमती पर दृष्टि डालता और आँखें बंद कर लेता था। रूपमती ने 'देखिये, देखिये फिर तीर ख़ता होता है', को इस ढंग से गाया कि राजा के मन में झंझावत-सा उत्पन्न हो गया। मन की दशा छिपाये न बनती थी। संगत और संगीत का जादू प्रभाव डाल रहा था। रूपमती भी खुलकर गा रही थी! आज ही तो उसे प्रियतम से मिलने का अवसर मिला था। कामनायें नवजीवन का संचार अनुभव कर रही थीं।

फिर कहा—

हाले-दिल उनसे न कहना था हमें, चूक गये,
अब कोई बात बनाएं भी तो क्या होता है।

राजा झूम गया और सिर के नीचे हाथ रख कर कुहनी के सहारे गाव-तकिये पर झुक गया। गुलनार सिर धुनने लगी। अमानी स्तम्भ के गिर्द बाँहों को यूँ लिपटाये खड़ी थी जैसे अपने आप को गिरने से बचाने का प्रयत्न कर रही हो और स्वयं रूपमती की यह दशा थी कि हर पंक्ति को दोहराते हुए आवाज काँप-काँप जाती थी।

शौके-इज़हार अगर है तो मेरे दिल को न मोड़,
इसी आईना में तो तू जलवा नुमा होता है।

अन्तिम की पंक्तियाँ—गाईं तो रूपा की आँखों से फ़व्वारा सा उबल पड़ा। मन अधीर हो गया, आवाज़ रुक गई। तानपुरा छोड़ कर गुलनार बैठ गई और एक सन्नाटा-सा छा गया। थोड़ी देर में रूपमती सँभली।। उठ कर अभिवादन किया और सिर झुका घुटने टेक कर बैठ गई।

राजा भी सँभला और बोला—"धन्यवाद रूपवती! तुम्हारा संगीत मन में उतर गया।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपमती मुस्कुरा कर फिर झुक गई।

राजा—"अच्छा रूपमती ! आराम करो। हम राजमाता की सेवा में निवेदन करेंगे कि कल रात को हमारी सभा में आकर कृतार्थ करें।"

रूपमती और गुलनार उठकर अभिवादन को झुकीं और उलटे पाँव हटती हुई बाहर निकल आईं।

२०

राजप्रासाद से निकलते ही विचारों का एक तूफ़ान रूपा के मन में उमड़ पड़ा। मन में कहती आ रही थी 'देखा रूपा ! भाग्य का चमत्कार, जब बनने पर आती है तो यूं बनती है। कल रात ही की बात है सोच रही थी कि कब तक लक्ष्य तक पहुंचूंगी, कितना अन्तर है बीच में, किन्तु एक ही रात में यह मंजिल पूरी हो गई। जिसे देखने की इच्छा थी, उसे देख भी लिया और जो निकटता चाहती थी वह भी, प्राप्त हो गई। आज मुझ से बढ़कर सौभाग्यवती कौन होगी, अब यदि मृत्यु भी आ जाये तो मुस्कुराहटों से उसका स्वागत करूं।"

गुनगुनाने लगी—

साजन मोरे दरसन कियो निकसत गयो प्रान,
बिरह का दुःख न जानियो न मिलन के सुख का मान।

गुलनार चौंक पड़ी। हँसकर उसकी ओर देखते हुए बोली—"प्यारी! क्या काव्य रचना हो रही है?"

रूपा हँस पड़ी—"हाँ यूँ ही एक दोहा याद आ गया।"

गुलनार—"वह तो मैंने सुना, किन्तु इसका अर्थ क्या है?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपा—"अर्थ ? यह सहज और साधारण है।"

गुलनार—"शब्दार्थ नहीं…मुझे तो वह समझाओ जो मन के भीतर है ?"

रूपा खिलखिला कर हँस पड़ी और लिपट कर बोली—"हाँ, हाँ ! वचन देती हूँ, बताऊँगी, आज ही रात को बताऊँगी।"

गुलनार—(हँस कर) "अभी क्यों नहीं बता देतीं ?"

रूपा—"(हँस कर) बड़ी लम्बी कहानी है, रात को ही सुनाऊँगी…दिन में कहानी सुनने से यात्री रास्ता भूल जाता है।"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़ीं, भवन आ गया।

चाचा दोनों को गहनों में लदी हुई देखकर चकित रह गया और फूला न समाया। विश्वास हो गया कि अब राजभवन से निकलने की कोई सम्भावना नहीं। तुरन्त चाची की याद आई और बोला—"रूपा ! तुम्हारी चाची तो हमारी बाट जोह रही होगी, उनके बिना मुझे चैन नहीं।"

रूपा और गुलनार दोनों दबे होंठों मुस्कराने लगीं। रूपा ने उत्तर दिया—'हाँ चाचा ! मेरा मन भी वहीं अटका हुआ है। अमानी आ जायें तो उन से कहूँ कि चाची के बुलाने का प्रबन्ध करें। उन्होंने इस बात का वचन दिया है।"

यह बातें अभी हो ही रही थीं कि अमानी मुस्कुराती हुई भीतर आई। रूपा और गुलनार आदर के लिए खड़ी हो गई। अमानी ने दोनों का माथा चूमा और बधाई देकर बैठते हुए बोली—"देखो बीबी ! अब यह सम्मान में झुकना और खड़े होना छोड़ दीजिये।"

रूपा—(हँसकर) "वह क्यों बहन।"

अमानी—"इसलिये कि इससे परायापन टपकता है और मैं नहीं चाहती कि मैं अब अधिक समय तक परायी समझी जाऊँ।"

रूपा—(हँसकर) "किन्तु हमें आप अपनी बड़ी बहन समझने से तो नहीं रोक सकतीं।"

अमानी—(हँसकर) "इसका उत्तर तो मेरे पास कुछ नहीं, फिर भी यह कहूँगी कि इससे मुझे कष्ट पहुंचता है।"

रूपा अनायास हँस पड़ी—"क्या बात कही है। इसका उत्तर मेरे पास भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुछ नहीं।"

तीनों की तीनों हँसने लगीं।

रूपा—"हो सकता है कि मेरा ठहराव यहाँ कुछ लम्बा हो जाए इसलिए चाहती हूँ कि चाची को कुशलता की सूचना भिजवा दूँ, जिससे वह चिन्ता न करें।"

अमानी उसकी ओर अर्थपूर्ण मुस्कुराहट से देखकर बोली—"ठहराव के लम्बा होने का तो प्रश्न ही समाप्त हो चुका है बीबी ! अब तो आप यहीं रहेंगी। आपकी चाची को लेने के लिए कल ही कुछ व्यक्ति भिजवा दिये जायेंगे। आदेश दे दिया गया है और आपकी सेवा के लिए ज़र्रीन को नियुक्त किया है। उसे आप चाची के लिए पत्र दे दीजिये।"

रूपा—"यह ज़र्रीन कौन है ?"

अमानी—"ज़र्रीन राज-दुर्ग का मुख्य अधिकारी है। सब ख्वाजा-सरा, दास-दासियाँ उसके अधीन हैं। अच्छा, अब मुझे आज्ञा दें।"

रूपा यह सूचना देने के लिए चाचा के कमरे में चली गई। गुलनार बाहर तख्तपोश पर बैठी पान बना रही थी कि एक दासी ने आकर ज़र्रीन के आने की सूचना दी। गुलनार ने दृष्टि उठाकर देखा। एक सजीला युवक सिर से पाँव तक सुनहरी कपड़े पहने, कमर में कटार लगाये सामने खड़ा झुक कर अभिवादन कर रहा था। गुलनार ने उसे गम्भीर दृष्टि से निहारा और कुर्सी की ओर संकेत करके बोली—"बैठो।"

युवक प्रणाम करके बैठ गया।

गुलनार—"तुम्हें ज़र्रीन कहते हैं ?"

युवक के मुख पर हल्की-सी लालिमा दौड़ गई, बोला—"जी सरकार।"

गुलनार ने चंचलता से मुस्कुरा कर पूछा—"क्या यह नाम तुम्हारे सुनहरी पहनावे के आधार पर रखा गया है केवल थोड़े समय के लिए ?"

ज़र्रीन उसकी छेड़ को भाँप गया, मुस्कुराने लगा और उत्तर दिया—"नहीं सरकार ! सेवक सदा ज़र्री ही है। आठों पहर ज़र्री है।"

गुलनार को उसके उत्तर पर हँसी आ गई। बोली—"अति सुन्दर।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फिर पानदान उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"पान खाओ।"

ज़र्रीन उठकर ससम्मान खड़ा हो गया और गिलौरी हाथ में लेकर बैठ गया।

गुलनार—"तुम पान नहीं खाते ?"

ज़र्रीन—"जी ! खाता हूँ सरकार।"

गुलनार—"फिर गिलौरी को हाथ में लिए क्यों बैठे हो ?"

ज़र्रीन—"अशिष्टता के विचार से सरकार !"

गुलनार—"नहीं···खाओ।"

ज़र्रीन ने मुस्कुराकर गिलौरी मुँह में रख ली।

गुलनार—"तुम मुझे बार-बार सरकार क्यों कहते हो ?"

ज़र्रीन—(मुस्कुरा कर दृष्टि झुकाए) "आप सेवक की सरकार ही तो हैं सरकार।"

गुलनार ने सुन लिया, उसकी चंचलता पर मुस्कुरा कर उठी और भीरत चली गई। थोड़ी देर में रूपा से चाची के नाम का पर्चा लिखा ले आई और ज़र्रीन के हाथ में थमाकर मुस्कुराते हुये बोली—"यह लो सरकार का पत्र चाँदनगर के लिए।"

ज़र्रीन ने उठकर पत्र ले लिया और आज्ञा चाही।

उसके जाने के बाद रूपा बाहर आई। गुलनार की ओर देखकर मुस्कुराई और बैठ कर बोली—"सरकार सेवक पर क्यों बिगड़ रही थीं ?"

गुलनार रूपा के परिहास को भाँप गई और अनायास हँस पड़ी, बोली—"हूँ, अब समझी। तुम्हारे कान इधर ही लगे थे।"

रूपा हँसकर लिपट गई—"अच्छा बताओ क्या-क्या बातें हुईं इस सेवक से ? बड़ा चंचल जान पड़ता है।"

गुलनार—(हँसते हुए) "वास्तव में बड़ा चंचल है यह सेवक।"

रूपा—(हँसकर) "फिर बताओ तो सही, बातें क्या कुछ हुईं इस सेवक से ?"

गुलनार—"कहानी लम्बी है, रात को सुनाऊँगी। दिन के समय यात्री रास्ता भूल जाते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दोनों खिलखिला कर हँस पड़ीं।

अब तक रूपा को समय ही न मिला था जो ख्वाजा-सराओं और दासियों से परिचित होती। सबको सामने बुलाकर उनमें से एक-एक का नाम तथा काम पूछा और फिर उन्हें खाने-पीने, नहाने-धोने और सोने-बैठने के सम्बन्ध में आवश्यक आज्ञा देकर भिजवा दिया। इधर-उधर की बातों, साधारण देख-भाल और अपने, गुलनार तथा चाचा के लिए कमरों के जुटाने में दिन बीत गया।

रात को खाने आदि से निबटकर अपने-अपने कमरों में जा लेटे, किन्तु गुलनार जो रात होने की प्रतीक्षा बड़ी अधीरता से कर रही थी उठकर रूपा की मसहरी में आ बैठी और कहने लगी—"लो रूपा, रात हो गई और अब कहानी सुनने में यात्री के रास्ता भूलने का कोई खटका नहीं। सुनाओ, मैं उत्सुक हूँ।"

रूपा हँस पड़ी और मसहरी में स्वयं भी उठकर बैठ गई।

रूपा—"अच्छा लो सुनो बड़ी बहन! इससे पहले मैंने एक दिन अपनी कहानी अपनी एक बहुत प्यारी सखी चम्पा को सुनाई थी। उसे मैं बड़ी बहन ही कहती थी। अब होनी ने तुम्हें मेरी दूसरी बड़ी बहन बना कर मुझसे मिला दिया है। तुम्हें भी सुनाती हूँ। किन्तु उस दिन में और आज की रात में धरती और आकाश का अन्तर हो गया है। उस दिन मैंने यह कहानी रो-रोकर सुनाई थी किन्तु आज तुम्हें हँस-हँस कर सुनाती हूँ।"

यह कह कर रूपा ने अपने जन्म की, विचित्र सपने की, चौधरी के बेटे और सेठ के उससे ब्याह के आग्रह, अपने इन्कार और फिर दरबार में आने तक के इस समय तक की एक-एक बात गुलनार को सुना दी और अन्त में बोली—"अब शायद तुम उस दोहे का अर्थ समझ गई हो जो राजप्रासाद से निकलते समय अनायास ही मेरे मुंह से निकल गया था।"

गुलनार स्तब्ध उसे तके जा रही।

रूपा फिर बोली—"हाँ बहन! इतनी बात मुझे अब भी खटक रही है कि मेरा प्रियतम, मेरे स्वप्न का लक्ष्य यदि राजा न होता तो ठीक था।

गुलनार हँस पड़ी परन्तु कुछ न बोली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सवेरे जब नाश्ता चुना जा रहा था अचानक अमानी पाँच-चार नौकरानियों के सिरों पर कुछ मखमली गठरियाँ उटवाये आ पहुंची । नौकरानियों को वरामदे में रोक कर भीतर आई । रूपा और गुलनार के आग्रह पर नाश्ते में सम्मिलित हो गई ।

नाश्ता हो चुकने पर उसने नौकरानियों को भीतर बुलाया और उन्हें गठरियाँ खोलने का आदेश देकर रूपा और गुलनार से बोली—"यह वस्त्र महाराज की ओर से आप दोनों के लिये उपहार में हैं ।"

रूपा और गुलनार राजा के उपहार के सम्मान में उठकर खड़ी हो गई । अमानी ने उन्हें एक-एक गठरी खोलकर सब कपड़े दिखाये । कुछ और इधर-उधर की बातें हुई और अमानी ने विदा ली । उसके चले जाने पर रूपा ने दासियों को बुला कर कपड़े रखने के लिये दिये और स्वयं दोनों टहलने के लिये बाग़ में निकल आई ।

गुलनार—(चलते-चलते) "रूपा ! मानव अपने भविष्य से कितना अचेत है ? क्या पता था जीवन में यह परिवर्तन भी होगा ? सच कहती हूँ मुझे तो यही ज्ञात पड़ता है कि कोई सपना देख रही हूँ ।"

रूपा—(गम्भीरता से) "जो ज्ञात पड़ता है, वही सत्य है ।"

गुलनार—(आश्चर्य से उसे देखकर) "क्या ? सपना देख रही हूँ वास्तविकता नहीं ?"

रूपा—(उसी गम्भीर स्वर में) "हाँ ।"

गुलनार—(झुंझला कर) "तुम्हारे इस टेढ़े-तिर्छे प्रश्न से मेरा मन बहुत उलझता है और इस से मैं चिढ़ती हूँ ।"

रूपा हँसकर बोली—"तुम भी विवश हो बड़ी बहन ! सच्ची बात सदा कड़वी लगती है ?"

गुलनार झुँझला गई—"वह कौन-सी सच्ची बातें हैं तुम्हारी, जो मुझे कड़वी लगती हैं ?"

रूपा गुलनार की झुंझलाहट का आनन्द लेकर हँसने लगी—"एक कही ।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुलनार—(वैसे तो झुंझलाहट में) "क्या कही ? मिट्टी ? मुझे भली-चंगी जागती को कह रही हो कि सो रही हूँ।"

रूपा हँसी रोकते हुए बनावटी गम्भीरता से बोली—"हाँ, सचमुच सो रही हो। यदि अभी सिद्ध कर दूँ तो क्या दोगी ?"

गुलनार और भी झल्ला गई—"बस मुँह नोच डालूँगी तुम्हारा···यही दूँगी बड़ी आई सिद्ध करने वाली।"

रूपा हँसते-हँसते दोहरी हो गई और गिरते-गिरते गुलनार से लिपट गई। गुलनार को भी हँसी आ गई। अभी दोनों हँस ही रही थीं कि सामने से ज़रीन आता दिखाई दिया।

रूपा—"लो वह चला आ रहा है सरकार का सेवक···मैं तो खिसकती हूँ।"

रूपा हँसती हुई मकान की ओर चल पड़ी। गुलनार उधर ताकने लगी। देखा कि ज़रीन सीधा उन्हीं की ओर आ रहा है। पास पहुँच कर ज़रीन झुक गया। गुलनार ने मुस्कुरा कर छेड़ते हुए पूछा—"कहो क्यों आये सरकार ?"

ज़रीन के होंठों पर भी मुस्कराहट आ गई, चंचलता से दृष्टि झुका कर बोला—"सरकार ! सेवक यह कहने के लिये उपस्थित हुआ है की आपका पत्र तड़के ही भिजवा दिया था।"

गुलनार—(गम्भीरता से) "हमने तो कोई पत्र नहीं दिया।"

ज़रीन—"सरकार ही ने तो दिया था, सरकार !"

गुलनार—"देखो मैंने तुम्हें पहले भी मनाही की है कि मुझे सरकार मत कहो।"

ज़रीन—"तो फिर सेवक और क्या कहे सरकार ?"

गुलनार—(कठोर स्वर से) "मैं कुछ नहीं कहलवाना चाहती।"

ज़रीन—" फिर तो यह बड़ी मुश्किल हुई सरकार।"

गुलनार के होंठों पर रोकते-रोकते मुस्कराहट आ गई—"तुम्हें कोई रोग भी है ?"

ज़रीन—"जी सरकार !"

गुलनार—"क्या रोग है ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज़रींन—"यह तो पता नहीं सरकार।"

गुलनार—"तुम्हें अपने रोग का भी पता नहीं ?"

ज़रींन—"कोई वैद्य-हकीम ही जान सकता है सरकार।"

गुलनार "कोई उपचार करवाओ ?"

ज़रींन—"जब भाग्य खुलेगा, कोई उपचार करने वाला भी मिल जायेगा सरकार।"

गुलनार हँसी रोक न सकी, किन्तु ज़रींन के होंठों पर मुस्कुराहट तक न थी। गुलनार उसकी चंचलता को खूब समझ रही थी, बोली—ज़रींन तुम बहुत नटखट हो।"

ज़रींन—"सच कहती हैं सरकार।"

गुलनार—"तुम्हारे बच्चे भी तुम्हीं जैसे चंचल हैं ?"

ज़रींन—"सेवक तो स्वयं बच्चा है सरकार।"

गुलनार—"क्यों तुम्हारी पत्नी नहीं ?"

ज़रींन—"कहाँ सरकार ! सेवक ने तो आज तक सपने में भी नहीं देखी।"

गुलनार ने बहुत प्रयत्न किया कि हँसी को रोके, पर हँसी थी कि रुकती ही न थी।

गुलनार—(हँसते हुए) "अच्छा...तुम मेरे सामने से चले जाओ !" ज़रींन ने इस आज्ञा का पालन प्रसन्नतापूर्वक किया और चला गया।

भीतर रूपा, दोनों की बातचीत सुन कर मारे हँसी के लोट-पोट हो रही थी। जब गुलनार भीतर आई, तो दोनों एक-दूसरे को देख कर बहुत हँसीं।

रूपा—(हँसते हुए) "बहुत नटखट है।"

गुलनार—"क्या पूछती हो ऐसी चंचलता तो मैंने आज तक नहीं देखी।"

रूपा—(हँसकर) "पहल भी तो तुम्हीं ने की थी।"

गुलनार—(हँसकर) "हाँ, मैंने उसके सुनहरी वस्त्रों पर फबती कस दी थी। किन्तु अब तो यह झाड़ होकर लिपट गया है।"

रूपा—(हँसकर) "राज दुर्ग के वासी हैं। बात का तेवर और ढंग खूब पहचानते हैं। इससे बातों में जीतना कोई हँसी खेल नहीं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुलनार—(हँसकर) "किन्तु अब तो यह खेल निबाहना ही पड़ेगा और देखो, चंचल इतना है कि न तो मेरी गम्भीरता से प्रभावित होता है और न डाँटने का बुरा मानता है।"

अभी यह बातें हो ही रही थीं कि चाचा के पुकारने पर रूपा लपक कर उठी और उसके कमरे में पहुंची।

रूपा—"क्या बात है चाचा ?"

चाचा—"भई, वह चाँदनगर किसी को भिजवाया ?"

रूपा—"जी हां ! हरकारा तो जा भी चुका।"

चाचा—"तुम्हें क्यों कर ज्ञात हुआ ?"

रूपा—"अभी-अभी ज़र्रीन आया था। बड़ी बहन को बता कर गया है।"

चाचा—"यह ज़र्रीन कौन है ?"

रूपा—"दुर्ग का मुख्य अधिकारी।"

चाचा—"तो फिर क्या बता गया है, कब तक आयेगी तुम्हारी चाची ?"

रूपा—"बस, अधिक से अधिक परसों तक।"

चाचा—(हँस कर) "हरकारा पहुँचने पर प्रसन्न तो बड़ी होगी।"

रूपा—"क्यों नहीं चाचा।"

चाचा—(हँस कर) "आने दो, कैसा चिढ़ाता हूँ। मुझे मूर्ख, बुद्धिहीन, जाने क्या-क्या कहा उसने।"

रूपा और चाचा दोनों हँसने लगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२१

साँझ होते ही, रूपा और गुलनार की रात की सभा की तैयारी के लिए, दासियों ने वस्त्रों को सुगन्धित किया, और गहनों को सजाकर रख दिया। खाने से निपटते ही, दोनों शृङ्गार करके अमानी की प्रतीक्षा करने लगी।

रूपा—"मेरा अनुमान है कि राजमाता भी संगीत में निपुण है। जभी तो राजा ने उन्हें आमंत्रित किया है।"

गुलनार—"तुम्हारा अनुमान ठीक ही है। उस दिन जो तुम्हारा गाना दरबार में सुनकर उन्होंने प्रशंसा की, यह केवल संगीत-विद्या की सूझ-बूझ रखने वाले ही कर सकते हैं।"

रूपा—"मेरा विचार है कि आज तुम्हारा गाना भी अवश्य सुना जायेगा।"

अभी यह बातें हो ही रही थीं कि अमानी आ पहुँची और रूपा की ओर मुस्कुरा कर देखते हुए बोली—"प्रतीक्षा भी कितनी सुहावनी होती है!"

रूपा कुछ लजा सी गई, और तीनों राजप्रासाद की ओर चल दीं। रूपा के मन में जो झिझक और संकोच कल था, वह आज न था। पग इस उत्साह से उठ रहे थे कि यह थोड़ा अन्तर एक ही बार सिमट के आ जाये तो अच्छा हो।

राजप्रासाद के निकट पहुँचते ही उनका मस्तिष्क नाना-प्रकार की सुगंधों से सुवासित हो उठा। रेशमी जालीदार पर्दों से प्रकाश छन कर आ रहा था। अमानी दोनों को साथ लिये भीतर आई और तीनों सादर राजसिंहासन के सामने झुक गई। रूपा और गुलनार को बैठने का संकेत करके अमानी सामने का पर्दा हटाकर, दूसरी ओर चली गई।

दोनों चुप बैठीं, भवन की चित्रकारी और सजधज का निरीक्षण कर रही थीं थोड़ी देर में, जिधर अमानी गई थी उसी ओर से, बीसियों दासियाँ मोमबत्तियाँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हाथों में लिये आती दिखाई दीं। इनके आगे-आगे अमानी सिर झुकाये चल रही थी। दोनों समझ गईं कि राजमाता तथा महाराज पधार रहे हैं।

ज्यूँ ही अमानी ने बढ़ कर पर्दा हटाया दासियाँ भीतर चली आईं। रूपा और गुलनार उठ खड़ी हुईं। राजमाता और महाराज सामने आये। दोनों सादर अभिवादन को झुकीं और फिर आँखें झुका कर खड़ी हो गईं। राजमाता और महाराज ने मुस्कुराकर उन्हें देखा। फिर राजमाता सिंहासन पर और महाराज उनके साथ वाली कुर्सी पर बिराजे। रूपा और गुलनार खड़ी थीं और वैसे ही खड़ी रहीं। राजमाता की दृष्टि रूपमती पर जमी थी। महाराज ने पहले रूपा का और फिर गुलनार का परिचय दिया। दोनों बारी-बारी अभिवादन को झुकीं। राजमाता के होठों पर मुस्कान और आँखों से स्नेह टपक रहा था।

राजमाता ने अमानी की ओर दृष्टि उठाई और वह तुरन्त आगे बढ़ी। एक छोटे से सुनहरी सन्दूकचे से, जिसे वह हाथों में लिये खड़ी थी, दो जड़ाऊ झूमर निकाल कर एक रूपमती और दूसरा गुलनार के माथे पर लगा दिया। दोनों इस अभिनन्दन के लिए फिर झुक गईं। राजमाता और महाराज दोनों मुस्कुराने लगे।

राजमाता—"बैठ जाईये!"

दोनों सादर झुक कर बैठ गईं। सिंहासन के पीछे दासियाँ मोमबत्तियों के फानूस लिये खड़ी थीं। गुलनार ने कनखियों से देखा कि ज़रींन भी इन्हीं के मध्य खड़ा मुस्कुरा रहा है, और उसकी दृष्टि गुलनार ही पर जमी हुई है।

राजमाता—(मुस्कुराते हुए) रूपमती! हम परसों दरबार में तुम्हारे गाने से प्रसन्न हुए।"

रूपमती—"दासी का सौभाग्य है, सेविका का मान बढ़ा सरकार।"

राजमाता—"अब हम पहले गुलनार को सुनना चाहते हैं।"

गुलनार बैठे-बैठे सीने पर हाथ रख कर झुकी और अमानी ने तुरन्त तानपुरा उठा कर रूपमती के हाथ में दे दिया। रूपमती ने तार छेड़े, लय चल निकली और गुलनार ने स्वर मिलाया और फारसी का एक पद्य आरम्भ किया,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राजमाता और महाराज के होठों पर मुस्कान खिल उठी।

गुलनार पलटे और तानें ले लेकर हर पंक्ति को दोहराती रही और राजमाता और महाराज झूमते रहे। रूपमती तानपुरा बजाती हुई लय में खो गई। गाना समाप्त हो गया, रूपमती की चलती हुई उँगलियाँ रुक गईं। महाराज के मुँह से अनायास 'वाह' निकली। राजमाता ने मुस्कुराते हुए कहा—"गुलनार! खूब गाया है तुमने?"

गुलनार धन्यवाद करते हुए झुक गई। जब उठी तो आँखें ज़रींन से मिलीं। वह टकटकी लगाये स्तम्भ का सहारा लिए खड़ा था। गुलनार ने देखा और आँखें चुरा लीं।

राजमाता—"अब तुम रूपमती।"

रूपमती सादर झुक गई और तानपुरा गुलनार को देकर सिर का आँचल ठीक करने लगी। गुलनार ने तानपुरे के तार छेड़ दिये। कुछ देर आँखें बन्द किये सुनती रही, फिर फारसी की गजल आरम्भ की, जिसका अर्थ यह था—

(१) "संसार के मुकुटधारी, तेरी नरगिस जैसी मस्त आँखों के दीवाने हैं, और संसार के बुद्धिमान, तेरे लाल अधरों की मदिरा से उन्मादित हैं।

(२) तेरे फूल से कपोलों पर केवल मैं ही काव्य रचना नहीं करती, बल्कि मुझ जैसी सहस्रों बुलबुलें तेरे सौन्दर्य के कारण चहक रही हैं।

(३) प्रेमी और प्रेमिका तो एक-दूसरे के रहस्य रखते हैं, किन्तु क्या किया जाये, तुम्हारा रहस्य तो झुकी-झुकी दृष्टि ने और मेरा प्रेम रहस्य मेरे अश्रुओं ने खोल दिया। इसमें दोष न मेरा है, न तुम्हारा।

रूपा ने यह ग़ज़ल बड़ी लगन से झूम-झूम कर गाई। शब्दों में प्राण पड़ गये थे। राजमाता और महाराज दोनों चित्र लिखित से बैठे थे। कभी तरंग में लय पर झूमने लगते और कभी एक-टक रूपमती पर आँखें जम जातीं। ग़ज़ल समाप्त हुई और रूपमती सम्मान में झुक गई।

बड़ी देर तक सभा में एक सन्नाटा सा छाया रहा। राजमाता गाव तकिये से कुहनी की टेक लगाये स्तब्ध थीं और महाराज आँखें झुकाये मौन बैठे थे। आखिर महाराज ने मौन भंग किया—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राजा—"रूपमती ! हमने तुम्हें उर्दू में और फ़ारसी में भी सुना। तुम दोनों में निपुण हो। क्या उच्चकोटि की सुलझी हुई साहित्यक रुचि है ? भाषा की कविता के विषय में तुम्हारा क्या विचार है ?"

रूपमती—"महाराज ! भाषा की कविता को यदि जादूगरी कहा जाये तो उचित इसमें वही कोमलता और माधुर्य है जो कि फ़ारसी में है। किन्तु सहल, सादा और सुलझी हुई यूँ कि बस यही कह सकते हैं कि जादू है जो सिर चढ़ कर बोलता है। हृदय की भावनाओं को इस आकर्षक ढंग से उपस्थित करती है जिसके सत्य से इन्कार सम्भव नहीं, सुनिये—

और चोट बच जात है कछुक पाय के ओट,
पलक ओट प्रीतम भये लागत दूनो चोट।

कितना सूक्ष्म, कितना अछूता और कितना सत्यमय विचार है। और घाव तो ऐसे हैं कि यदि ढक जायें तो भर जाते हैं, किन्तु प्रीतम सामने हो तो चोट है ही और ओझल हो जाये तो चोट दुगनी।

फिर बिछोह की मारी राधा के घनश्याम उसे छोड़ गये, अपनी विवशता को झुँझला कर यूँ बोल उठती है—

हाथ छुड़ायके जात हो निबल जान के मोह,
हृदय में से जाओगे तो मर्द बदूँगी तोय।

कितनी सच्ची बात है महाराज ! और नारी-जाति की भावनाओं का कितना सुन्दर प्रतीक ?"

राजा बोला—"धन्य है रूपमती ! हम बहुत प्रसन्न हुए। तुमने वास्तव में हमारी सभा को स्वर्ग बना दिया है।"

रूपमती मुस्कुरा कर झुक गई।

राजमाता और राजा उठ खड़े हुए और सभा समाप्त हो गई। रूपमती और गुलनार अभिवादन करके विदा हुईं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२२

चाँदनगर में राजा के हरकारे का पहुँचना एक ऐसे अचम्भे की बात थी, जिसकी किसी को कल्पना तक न हो सकती थी। घर-घर चाचा चाची के सौभाग्य का चर्चा था। रात-भर में ही यह सूचना हवा की भाँति आस-पास के गाँवों में फैल गई। और जब सवेरे चाची रथ में सवार होने लगी तो सैंकड़ों स्त्री-पुरुष उसे विदा करने के लिये एकत्र हो गये। सब ने हँस-हँस कर बधाई दी। रूपा की सखियों ने प्यार भरे उपहार साथ किये और चाची को हँसी ठहाकों की गूँज में विदा किया।

चाची राजदुर्ग में पहुँच गई। रूपा को गले से लगाया, गुलनार को प्यार किया और चाचा से भेंट तो चकवा-चकवी का मिलन था। वही हँसी-ठठोल, वही गहमा-गहमी। मानो रात-दिन त्यौहार हो। उमड़े हुए पवन में फिर बसंत आ गई।

सौन्दर्य वह दीपक है, जिसका प्रकाश आँखों को आभा और मन की अँधेरे कोरों को उजाला देता है और यदि वह कला और विद्या के गहनों से भी सुसज्जित हो तो उसका आकर्षण, उसकी मोहिनी, असीम हो जाती है। शारीरिक और आत्मिक सौन्दर्य का मिश्रण, मानव को आकाश पर उठा कर ले जाता है।

राजदुर्ग में रूपमती का आगमन तो एक सुन्दर गायिका और नर्तकी के रूप में ही हुआ था, किन्तु धीरे-धीरे अपने ज्ञान, कला की निपुणता और प्रसन्न-हृदय के कारण उसने सबको मोहित कर लिया। गुण और सौन्दर्य जब इकट्ठे हो जाते हैं तो उनका आकर्षण एक चमत्कार-सा बन जाता है। रूपा भी अन्तःपुर में सबकी आँख का तारा बन गई। राजमाता को उससे एक विशेष स्नेह-सा उत्पन्न हो गया और वह अधिक से अधिक उन्हीं की सेवा में उपस्थित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रहने लगी। यहाँ तक कि बीच में से अमानी का साधन भी उठ गया। कुछ ही दिनों में वह ऐसी रच गई, मानो बरसों से राज-महल की ही रहने वाली हो। और राजा तो रूपमती के लिये बावला हुआ फिर रहा था, चाहे राज-सभा चाहे राजप्रासाद का एकाकीपन बस रूपमती ही रूपमती थी। उसके बिना क्षण-भर भी चैन न था।

राजा की उसे जीवन-साथी बनाने की इच्छा दिन-प्रतिदिन प्रबल हो रही थी, जिससे उनके मिलन में तनिक सी भी बाधा न रहे। इस विषय में, राजमाता ने भी अनुमति दे दी थी किन्तु अब स्वयं बात कैसे करे? एक ओर राजसी-वैभव और दूसरी ओर संकोच और लाज।

इस कार्य के लिये बहुत सोचने के बाद राजा की दृष्टि अमानी पर ही पड़ी और एक दिन चुपके से अकेले में बुला कर उसे कह दिया—"अमानी! रूपमती का विचार ज्ञात करके हमें बताओ...हम उसे महारानी देखने के इच्छुक हैं।"

अमानी को स्वयं रूपमती से ऐसा लगाव उत्पन्न हो गया था, कि उसकी हार्दिक इच्छा भी यही थी। आँखें झुका कर मुस्कुराते हुए कहा—"महाराज! दासी को यह साहस न होता था कि स्वयं यह बात आप से कहे किन्तु सत्य यह है कि बीबी रूपमती वास्तव में इस योग्य हैं कि महारानी ही बनें। भगवान् का धन्यवाद है कि दासी की यह इच्छा पूरी हुई।"

राजा—(मुस्कुरा कर) "हम तुम्हारी योग्यता की प्रशंसा करते हैं अमानी! इस विषय में हमें बहुत कुछ सोचना पड़ा। देखो! अब विलम्ब न हो।"

अमानी—'यह कहने की आवश्यकता नहीं माहाराज! दासी के कर्त्तव्य-पालन में कोई चूक न होगी।"

यह कहकर अमानी अभिवादन में झुकी और पर्दा हटा कर बाहर आ सीधी रूपमती के पास पहुँची। मन अति प्रसन्न, मुख खिला हुआ और होंठों पर मुस्कान थी।

रूपमती और गुलनार आँगन में फव्वारे के पास चौकी पर बैठी कुछ काढ़ रही थीं। दोनों ने मुस्कुराते हुए अमानी का अभिवादन किया। थोड़ी देर इधर-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उधर की बातें हुईं। फिर रूपमती ने ज़र्रीन का वर्णन छेड़ा, हँसते हुए बोली—"बड़ी बहिन ! यह ज़र्रीन बड़ा मनोरंजक व्यक्ति है।"

अमानी—(हँसकर) "हाँ, बड़े खिले मन का युवक है। साथ ही बड़ा समझदार और सुशील है। इसी कारण इतनी अल्प-आयु में इतनी बड़ी उपाधि को पहुँच गया कि महाराज ने विश्वसनीय समझते हुए दुर्ग का रक्षक नियुक्त कर दिया।"

रूपमती ने कनखियों से देखा कि गुलनार इस बात से कुछ झेंप सी रही है और दबे होठों मुस्कुराते हुए कढ़ाई में व्यस्त है। उसे कुछ और छेड़ने के आशय से बोली—"हाँ बहिन ! बड़ा ही सुशील है। हमारी बहन को सरकार कहकर सम्बोधित करता है और अपने लिये 'सेवक' शब्द का प्रयोग करता है।"

गुलनार इस संकेत को तो न समझ सकी, किन्तु वैसे हँसने लगी और बोली—"जी मैं जानती हूँ, बहुत ही चंचल है।" रूपमती और अमानी भी हँसने लगीं।

गुलनार—(अमानी की ओर देखकर) "बहिन ! ज़र्रीन से बढ़ चढ़कर तो यह नटखट हैं, और इसी ने मेरा नाक में दम कर रखा है।"

अमानी—(हँसकर) "भई ! आप दोनों तो पहेलियों में बातें कर रही हैं। कुछ बताओ तो सही यह किस्सा क्या है ?"

गुलनार—(हँसकर) "नहीं बड़ी बहन ! आप कोई भ्रम मन में न लायें। बस बात केवल इतनी है कि वह मुझे 'सरकार' कहकर पुकारता है, मैं उसे मना करती हूँ, पर वह मानता ही नहीं।"

अमानी—(गम्भीरता से) "यह तो बड़ी अशिष्ट बात है, मैं उसे डाटूँगी।"

रूपमती—(हँसकर) "नहीं बड़ी बहन ! इसकी आवश्यकता नहीं, यह तो हँसी-ठठोली है।"

अमानी—"यही तो, वरन् मैं उसे भली प्रकार जानती हूँ वह बड़ा सुलझा हुआ और सभ्य युवक है।"

रूपमती—(हँसकर) "निस्संदेह ! और यही विचार मेरी बहन का भी है।" गुलनार फिर अनायास हँस पड़ी और रूपमती से बोली—"तुम न टलोगी ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इन बड़ी बहन के सम्मान से चुप हूँ।" तीनों हँसने लगीं।

अब तक अमानी बैठी सोच रही थी कि जिस उद्देश्य के लिये आई है उसका आरम्भ किस प्रकार करे। चाहती तो थी, रूपमती से अकेले में बातें हों, किन्तु यह सम्भव न था कि रूपमती को गुलनार के पास से उठाकर ले जाये। दूसरे चाहे कैसे भी हो, गुलनार से तो यह बात छिपी नहीं रह सकती थी। यह सोचकर उसने उचित यही समझा कि गुलनार के सामने ही बात कर ले।

अमानी—(रूपमती को मुस्करा कर देखते हुए) "बीबी! मैं तो इस समय आपको एक विशेष बधाई देने के लिये उपस्थित हुई हूँ।"

रूपमती—(गम्भीरतापूर्वक उसकी ओर देखकर) "क्या बात है बहन?"

अमानी—"मैं सच कहती हूँ, मुझे इससे हार्दिक प्रसन्नता हुई है और मुझे विश्वास है कि राज्य में हर व्यक्ति इससे प्रसन्न होगा।"

रूपमती और गुलनार आश्चर्य से उसे देखने लगीं।

रूपमती—"किन्तु कुछ बताओ तो सही?"

अमानी—(मुस्कुरा कर) "बात यह है कि मालवा के राज्य की बधाई हो।"

रूपमती का रंग श्वेत पड़ गया, हृदय धड़कने लगा। स्तब्ध, अमानी को देखने लगी और फिर बोली—"वह क्या कह रही हैं आप बहन?"

अमानी—(वैसे ही मुस्कराते हुए) "यही कह रही हूँ कि मालवा के राज्य की बधाई हो।"

रूपमती—(गम्भीरता से) "स्पष्ट कहिये कि इससे आपका अभिप्राय क्या है?"

अमानी—(मुस्कुराते हुए) "अर्थ यह है कि आप हमारी महारानी बनने वाली हैं और आपकी दासी होने के कारण सबसे प्रथम आपको बधाई देती हूँ।"

रूपा के होंठ सूख गये, मस्तिष्क चकरा गया और चुप सिर झुकाकर बैठ गई। अमानी और गुलनार चिन्ता और आश्चर्य से उसे देख रही थीं। थोड़े समय बाद उसने दृष्टि उठाकर अमानी को देखा और पूछा—

"क्या यह महाराज की इच्छा है?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अमानी—"जी हाँ।"

रूपमती—"आपको क्योंकर ज्ञान हुआ ?"

अमानी के लिए इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन हो गया। वह यह कहना न चाहती थी कि उसे स्वयं राजा ने इस आशय से भेजा है। सोचकर मुस्कुराते हुए बोली—"यह पूछने की क्या आवश्यकता है ?"

रूपमती—(गम्भीरता से अमानी की ओर देखते हुए) "मेरे लिए इसका पूछना और जानना बड़ा आवश्यक है।"

अमानी फिर दुविधा में पड़ गई। सोचकर उत्तर दिया—"बीबी ! हम राज-सेवक हैं। राजा का प्रत्येक रहस्य समझती हैं। यह तो हमारा निसदिन का काम है। मैंने तो पहले ही दिन, जब आपको राजमहल से बुलावा आया था, यह अनुमान लगा लिया था और अब तो राजा का अभिप्राय स्पष्ट हो गया है।"

रूपमती—"यही तो मैं पूछती हूँ कि आपको राजा का अभिप्राय कैसे ज्ञात हुआ ?"

अमानी—(मुस्कुरा कर) "पहले ही कह चुकी हूँ कि हम राजसेवक हैं और राजाओं के रहस्य से भली प्रकार परिचित हैं।"

रूपमती को यह अच्छा न लगा, बोली—"बहन आप मुझसे अधिक समझदार हैं, जग-देखी हैं, किन्तु क्षमा कीजिए, मैं यह कहे बिना नहीं रह सकती कि राजाओं के रहस्य जानना और फिर उन्हें यूँ ही कहते फिरना हम दासियों को शोभा नहीं देता। आपने मुझसे यह कहने में बड़ी भूल की है। मैं विनती करती हूँ कि भविष्य में आप मुझसे इस विषय में कोई बात न करें।

अमानी का मानो लहू सूख गया। लज्जा से धरती में गड़ी जाती थी। उसे कदापि आशा न थी कि रूपमती यह शुभ सूचना उसके मुंह से सुनकर ऐसा उत्तर देगी। होठों पर जीभ फेरते हुए बोली—"बीबी ! आप मेरा अभिप्राय नहीं समझीं। मेरा अर्थ···"

रूपमती उसकी बात काटकर बोली—'देखिये ! मैं आपसे फिर प्रार्थना करती हूँ कि आप इस सम्बन्ध में मुझ से कोई बात न करें और न किसी और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से इसका वर्णन करें। हम दोनों के लिए यही उचित है।"

अमानी लज्जित होकर चुप हो गई और सिर झुका कर बैठ गई। तीनों चुप बैठी थीं और सन्नाटा छाया हुआ था। अमानी को और कुछ कहने का साहस न हुआ और आज्ञा लेकर चली गई।

उसके जाने के बाद रूपमती और गुलनार दोनों देर तक चुप बैठी रहीं। आखिर गुलनार ने इस मौन को तोड़ा और बोली—"रूपा! तुम अमानी की बातों से क्या समझीं?"

रूपमती—(कुछ देर के मौन के बाद) "तुम क्या समझीं?"

गुलनार—"मेरा विचार तो यह है कि अमानी का अनुमान ठीक है।"

रूपमती—"स्वयं मेरा भी यही विचार है।"

गुलनार—"किन्तु तुम इस समय उससे बिगड़ी क्यों?"

रूपमती—"पहले तो दासियों को यह चाहिए ही न कि यह राजाओं के रहस्य को जानने का प्रयत्न करें। यदि अकस्मात वह उनका कोई रहस्य जान भी लें तो वह उन्हीं तक सीमित रहना चाहिए।"

गुलनार—"किन्तु उसने तो यह बात केवल तुम्हीं से की थी, इसलिए कि इसका सम्बन्ध तुम्हीं से है और तुम बुद्धिमती हो। इसमें बिगड़ने की क्या बात थी।"

रूपमती—"पहले तो इसका सन्तोष क्योंकर हो सकता है कि यह बात उसने और कहीं नहीं कही, दूसरे यह कि उसके मुँह से यह बातें मुझे अच्छी नहीं लगीं।

गुलनार—"क्यों?"

रूपमती—"इसलिए कि यदि वास्तव में राजा की यही इच्छा है तो इसकी सूचना मुझे स्वयं राजा अथवा राजमाता द्वारा मिलनी चाहिये। क्योंकि मुझे दोनों की निकटता प्राप्त है और दोनों की कृपा दृष्टि भी मुझ पर है। यदि उनके इस निश्चय की सूचना मुझे किसी दासी द्वारा मिले तो मुझे उसका कृतज्ञ होना चाहिये।"

गुलनार—निरुत्तर होकर चुप हो गई और मन ही मन उसकी तीक्ष्ण बुद्धि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की प्रशंसा करने लगी।

गुलनार—"यदि महाराज स्वयं यह इच्छा तुम्हारे सामने प्रगट करें तो फिर तुम्हारा क्या निश्चय है?"

रूपमती—(मुस्कुरा कर) "बहन! आश्चर्य है कि मेरी गाथा सुनकर भी तुम यह प्रश्न कर रही हो। मेरा निश्चय तो अब कुछ नहीं। मैं तो अब हार माने बैठी हूँ। अपने प्रियतम से आँख चुराना और दूर भागना मेरे लिए किसी प्रकार सम्भव नहीं और फिर जब वह राजा भी हो। हाँ, मैं उसके राजा होने से भयभीत अवश्य हूँ, तुम्हें याद होगा कि मैंने अपनी गाथा सुनाते समय भी तुम से यह बात कही थी।"

गुलनार—"हाँ मुझे भली भाँति याद है। मैं तुम से पूछती हूँ कि तुम अपने प्रियतम के राजा होने से क्यों घबराती हो? क्या 'रानी' बनने से बढ़ कर भी तुम्हारे लिए कोई सम्मान हो सकता है?"

रूपमती—(मुस्कुरा कर) "बहन! तुम मेरी बातों को क्यों भूल जाती हो? मैंने उस रात तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तो पहले ही दे दिया था कि मेरी दृष्टि में धन-दौलत का कोई महत्व नहीं। मैं तो केवल उसकी पुजारिन हूँ, जो सामने अन्तःपुर में सुन्दर सपनों में खोया हुआ है। रही बात रानी बनने की निस्सन्देह इसमें बहुत बड़ा सम्मान है, आकषर्ण शक्ति है, मोहनी है, किन्तु जो भय इसमें है, उसकी तुलना में यह मान-मर्यादा तुच्छ है। कोई स्त्री, रानी बन कर भी राजाओं के परिवर्तनशील स्वभाव से निर्भय या सन्तुष्ट नहीं रह सकती। इसके अतिरिक्त मेरे मन में एक और भी चोर छिपा है जिसे मैं अभी प्रकट नहीं करना चाहती। भगवान करे कि इसे प्रगट करने की कभी आवश्यकता ही न पड़े।"

गुलनार—"रूपा! मुझे विश्वास है कि तुम्हारे लिए अब भय का कोई कारण नहीं। तुम अपने मन में भ्रम को कोई स्थान न दो। रही तुम्हारे मन के चोर वाली बात, यदि तुम अब भी मुझ पर वह प्रगट कर दो तो हो सकता है कि मैं तुम्हें कोई भला सुझाव दे सकूं।"

रूपमती—(मुस्कुरा कर) बहन! मैंने तुम से कभी कोई रहस्य नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

छिपाया, किन्तु इस समय इसे बताने में एक शंका सी उत्पन्न होती है। यह तुम्हारे लिए उलटा चिन्ता का कारण होगी। बस तुम से यही विनती करती हूँ कि प्रार्थना करो भगवान इस अशुभ चोर का कभी साक्षातकार न कराये।"

गुलनार ने देखा कि यह बात करते हुए रूपा के शरीर में सहसा कपकपी-सी हुई और उसकी आँखें डबडबा गईं। उसने बढ़ कर उसे छाती से लगा लिया और बोली—"रूपा ! तुम्हारा हृदय बड़ा कोमल है। बस, मैं कुछ नहीं, पूछती मन को दृढ़ करो और स्वयं को सम्भालो।"

रूपमती संभल चुकी थी। मुस्कुरा कर कहने लगी—"तुम्हें मेरे मन की निर्बलता का अनुमान लगाने में भूल हुई। मेरा मन बहुत दृढ़ है। इतना कि, कदाचिंन ही किसी स्त्री का होता है। भगवान से प्रार्थना करती हूँ कि कभी मुझे मन की दृढ़ता को परीक्षा में न डाले।"

उधर अमानी राजप्रसाद में अपनी और रूपमती की बातचीत सुना चुकने के बाद राजा से निवेदन कर रही थी—"महाराज ! दासी को बड़ा अचम्भा है कि ग्रामीण वातावरण में पलने वाली कोई लड़की इतनी सूझ-बूझ वाली और राजसी रहस्यों से इतनी परिचित क्यों कर हो सकती है जब तक प्रकृति ने उसे विशेष मनो-मस्तिष्क प्रदान न किये हों। अब दासी इस विषय में कुछ कहने सुनने में विवश है।"

राजा—(अमानी की ओर देख कर मुस्कराते हुए) "अमानी ! हम तुम्हारी सेवाओं से बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हैं। तुम्हें जाँच और परख में एक विशेष निपुणता प्राप्त है जो हमारी दृष्टि में प्रशंसनीय है। तुमने अपना कर्त्तव्य-पालन कर दिया। तुम राजसी कृपादृष्टि की पात्र हो। हम तुम्हें कभी नहीं भूलेंगे।"

अमानी ने झुक कर धन्यवाद किया और अभिवादन के पश्चात, पर्दा हटा कर बाहर आ गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूर्य अस्त हो रहा था। परछाईयाँ लम्बी हो गई थीं, और सूर्य की अन्तिम किरणें राजमहल के ऊँचे बुर्जों को विदाई के चुम्बन दे रही थीं। राजा, रेशम के श्वेत वस्त्र पहने, कमर में रत्न-जड़ित कटार लगाये, राज-उपवन की पगडंडियों पर टहलता फिर रहा था। सामने से रूपमती आती दिखाई दी। राजा पगडंडी से उतर कर गुलाब की क्यारी के पास जा खड़ा हुआ और रूपमती की प्रतीक्षा करने लगा। रूपमती पास पहुँच कर अभिवादन को झुक गई और दृष्टि झुका कर खड़ी हो गई। राजा थोड़ी देर दृष्टि जमाये खड़ा उसे देखता रहा।

राजा—(मुस्करा कर) "रूपमती! तुम अमानी पर क्यों बिगड़ी?" रूपमती भीतर-ही-भीतर काँप गई और समझ गई, यद्यपि अमानी ने यह बात उससे छिपाई थी, किन्तु वास्तव में वह महाराज का संदेश लेकर ही आई थी।

रूपमती—"महाराज! प्राण-दान पाऊँ तो कुछ कहूँ।"

राजा—(मुस्करा कर) "तुम्हें यह कहने की आवश्यकता नहीं, रूपमती! कहो, तुम पूरी स्वतन्त्रता से कहो!"

रूपमती—"महाराज! राजप्रसाद के भेदों का दासियों तक पहुँचना, राजसी वैभव का अनादर है। यही समझ कर दासी ने अमानी से वह बात की जो महाराज तक पहुँची। उन्होंने बात अपने अनुमान के आधार पर की थी, जिसमें महाराज द्वारा व्यक्त की गई इच्छा का लेश-मात्र भी संकेत न था। वरना इस दासी को यह साहस कब हो सकता था, कि महाराज की विशेष दासी से ऐसी बात करती, जो उसके योग्य न हो। दासी, विनम्र क्षमा-याचना करती है और अमानी से भी क्षमा माँगने को तैयार है।"

राजा—(मुस्करा कर) "तुम्हें इतना चिन्तित तथा लज्जित होने की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आवश्यकता नहीं रूपमती ! हम तुम्हारे विचार का आदर और अपनी भूल को स्वीकार करते हुये विश्वास दिलाते हैं कि अमानी तुम्हारी बात से अप्रसन्न नहीं वरन् उसने तुम्हारी प्रशंसा ही की है।"

रूपमती—"महाराज की कृपा का किस मुंह से धन्यवाद करूँ ?"

राजा—(मुस्कुरा कर देखते हुये) "अच्छा, तो हम उस संदेश का उत्तर स्वयं चाहते हैं, जो हमने भूल से दूत द्वारा भेज दिया था।"

रूपमती गर्दन झुकाये संकोच की मूर्ति बनी मौन खड़ी रही। थोड़ी देर बाद राजा ने फिर पूछा—"हम उत्तर चाहते हैं रूपमती !"

रूपमती—"महाराज ! दासी को स्वतन्त्र उत्तर देने की अनुमति दी जाये।"

राजा के चेहरे का रंग बदल गया। बोला—"अवश्य तुम्हें स्वतन्त्रता है।"

रूपमती—"महाराज ! राजा, सावन की उस घटा के समान होता है जो अपनी कृपा द्वारा हर छोटे-बड़े की झोली आभामय-मोतियों से भर देता है, किन्तु साथ ही उसमें वह बिजलियाँ निहित होती हैं, जो क्षण-भर में हरे-भरे उपवनों को राख और ऊँचे विशाल पर्वतों को टुकड़े-टुकड़े कर डालती हैं। महाराज ! न तो दासी की झोली इतनी बड़ी है कि इसमें राजसी कृपाओं के मोती समा सकें और न साहस ही इतना है कि उनके कोप को सहन कर सके। सो महाराज ! विनम्र प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझे अपनी दासी ही रहने दें, इससे अधिक की न तो मुझे इच्छा है और न मैं इसके योग्य हूं।"

रूपमती दृष्टि झुकाये बोलती चली जा रही थी और कनखियों से देख रही थी कि राजा की दृष्टि उसी पर जमी हुई थी। वह उसके हर शब्द पर मुस्कुरा रहा था।

रूपमती के चुप हो जाने के बाद वह थोड़ी देर टकटकी लगाये उसे देखता रहा। फिर हाथ में गुलाब का एक फूल लेकर उसकी ओर बढ़ा। चाहती थी कि पीछे हटे, किन्तु ऐसे हो गई, मानो धरती ने पाँव पकड़ लिये हों। राजा पग-पग, रुक-रुक कर उसी पर दृष्टि जमाये बढ़ता चला आ रहा था। जितना वह निकट आ रहा था, उतना ही रूपमती को यह अनुभव हो रहा था, कि एक चुम्बकीय-शक्ति उसके शरीर को आगे खींच रही है। बड़े प्रयत्न से, पाँव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जमाये, दृढ़ खड़ी रही। राजा, बिल्कुल समीप पहुँच कर रुक गया, फिर उसके कंधे पर हाथ रख कर, मुख पर दृष्टि जमाये मुस्कुराता रहा। रूपमती पर बिलकुल स्वप्न की-सी दशा छा गई। आँखें बन्द किये, गर्दन झुकाए, चुप खड़ी थी। उसे यूँ अनुभव हो रहा था कि उसके प्राण घुल रहे हैं और थोड़े ही समय में उसका अंग-प्रत्यंग घुल जायेगा।

राजा—(मुस्कुराते हुए) "इससे अधिक परीक्षा में न डालो बाज़बहादुर को, रूपमती!"

रूपमती ने दृष्टि उठाकर राजा के मुख की ओर देखा। लजा कर दृष्टि झुका ली। इस समय उसकी आँखों में बला की चमक थी। होंठों पर अनायास हल्की-सी मुस्कुराहट आ गई और बोली—"एक दासी राज-आज्ञा का कैसे उल्लंघन कर सकती है।"

राजा के होठों पर प्रसन्नता की लहर आ गई। मुख, कुन्दन के समान दमकने लगा। दूसरा हाथ बढ़ा कर फूल देते हुए बोला—"हम महारानी को बधाई देते हैं।"

रूपमती ने मुस्कराते हुये, फूल लेकर, आँखों से लगाया। अभिनन्दन में झुकने ही लगी थी कि राजा ने दूसरा हाथ भी उसके कंधे पर रख दिया और मुस्कुराते हुये बोला—"महारानी को अब इस शिष्टाचार की आवश्यकता नहीं।"

रूपमती को अनायास हँसी आ गई। राजा भी हँसने लगा। यह पहला अवसर था कि दोनों एक दूसरे के सामने 'शिष्टाचार' और राजनियम को भूल कर हँस रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२५

जब से रूपमती राजा के पास से वापस आई थी गुलनार को उससे अकेले में बात करने का अवसर न मिला था। रात के खाने से निबट कर जब दासियाँ चली गईं और चाचा-चाची भी अपने कमरों में चले गये तो गुलनार ने पूछा—"कहो, क्या लाईं, राजा के यहाँ से ?"

रूपमती हँस पड़ी और उत्तर दिया—"लाती क्या, बाज़ी हार आई हूँ।"

गुलनार जो उसके चेहरे से उसकी प्रसन्नता भाँप चुकी थी, हँसकर कहने लगी—"क्यों बनाती हो, तेवर तो जीत के दिखाई दे रहे हैं।"

रूपमती—(हँसकर) "तुम्हारी इच्छा जो चाहे समझ लो, वरना मैं तो हार और जीत में कोई अन्तर नहीं समझती।"

गुलनार—(हँसकर) "तुम्हारा दर्शन सदैव अनोखा होता है, वरना हार-हार ही है और जीत-जीत ही है।"

रूपमती (हँसकर) "बहन ! प्रीतम से हारने में भी जीत ही का आनन्द है, इसलिये हार और जीत में कोई अन्तर नहीं।"

गुलनार—"अच्छा, पहेलियों में बातें करना छोड़ो, साफ़ बताओ..."

रूपमती—(हँसकर) "साफ़ ही तो बता रही हूँ कि स्वीकार कर आई हूँ, अब इसे चाहे हार समझ लो चाहे जीत।"

गुलनार—(झुँझला कर) "मुझे ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं। पूरी बात सुनाओगी तो समझूँगी।"

रूपमती हँस पड़ी और बोली—"बस, मुझे तुम्हारे चिढ़ाने में ही तो आनन्द आता है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुलनार—(हँसते हुए) "अच्छा, अब तो मैं चिढ़ चुकी और तुम्हारी इच्छा पूरी हो गई। मुझे पूरी बात सुनाओ।"

रूपमती—"आज यह बात खुल गई कि कल अमानी जो आई थी वह वास्तव में राजा का सन्देश ही लेकर आई थी किन्तु उसने यह बात प्रगट नहीं होने दी।"

गुलनार—"अच्छा, तो फिर ?"

रूपमती—(हँसकर) "आज राजा ने स्वयं ही अपने विचार प्रगट कर दिये।"

गुलनार—(प्रसन्न होकर) "फिर ?"

रूपमती—(हँसकर) "फिर यह कि मैं हार गई और राजा ने यह फूल अपनी रानी को उपहार में दिया।"

गुलनार प्रसन्नता के मारे पागल-सी उससे लिपट गई।

२६

अभी कुछ ही सप्ताह बीते थे और राजतिलक के उत्सव की गूंज दबने भी न पाई थी, कि राजभवन में राजा के ब्याह का डंका बज गया। राजमाता की आज्ञानुसार रूपमती, उनके महल में चली आई। शुभ-दिन और घड़ी देखकर ब्याह की तिथि निश्चित हुई और इस समारोह की तैयारियाँ बड़े धूम-धाम से हुईं।

चाचा-चाची और गुलनार जो मकान में पीछे रह गये थे, उन पर दास-दासी और ख्वाजा-सराओं ने बधाई के इतने फूल बरसाये, कि समेटे न सिमटे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपमती के कहने पर, राजमाता ने उनके विवाह से पूर्व ही, ज़र्रीन से गुलनार का विवाह करवा दिया। गुलनार को अब महल और दुर्ग में वही निकटता प्राप्त हो गई जो अमानी को थी; बल्कि दुर्ग के सबसे बड़े अधिकारी की पत्नी होने के नाते उसका महत्व और भी बढ़ गया। राजा ने चाँदनगर की जागीर चाचा के नाम कर दी और चाचा-चाची जागीर का आज्ञा-पत्र लेकर प्रसन्नतापूर्वक लौट आये।

यद्यपि विवाह की तिथि तक के लिए राजमाता ने, राजा और रूपमती का मिलना-जुलना बन्द कर रखा था, किन्तु भावी-रानी के लिए अमानी द्वारा निरन्तर प्रेम-पत्र आते रहते थे। रूपमती की ओर से यही काम गुलनार पर था। दोनों मिलन की घड़ी के लिए व्याकुल थे और इन से कहीं बढ़ कर इस तिथि की प्रतीक्षा, राज-सम्बन्धी लोग कर रहे थे।

रूपमती और गुलनार की आपसी चुहलें, हँसी-ठिठोली होती ही रहती थी। जब भी एकान्त मिलता, रूपमती गुलनार को 'सरकार' के नाम से सम्बोधित करके स्वयं को सेविका कहती। इन छेड़ों से सताकर उसे भी हँसाती और स्वयं भी लोट-पोट हो जाती। दिन-रात यही चहकना था और यही ठहाके।

रूपमती के लिए कई दासियाँ स्नानगृह के लिए और शृङ्गार आदि के लिए नियुक्त थीं। इस पर भी राजमाता स्वयं, दो-तीन बार दिन में देखने को आती थीं।

अन्त में वह दिवस भी आ ही गया, जिसके लिए राजा और राजमाता उत्सुक थे। सवेरे ही से शामियाने तन गये, कनातें लग गईं, मख़मल के फ़र्श बिछ गये। ख्वाजा-सराओं, दासियों ने राजप्रासाद को सजाया। नक़्क़ार-खाने के शहनाई बजाने वालों ने नये राग छेड़े। उच्च अधिकारियों और अमीर-उमराव की पत्नियों की पालकियाँ, सुन्दर दासियों के झुरमुटों में उतरनी आरम्भ हो गईं। राजदरबार की गायिकाओं और नर्तकियों ने संगीत और नृत्य से समाँ बाँध दिया। दिन-भर यही गहमागहमी रही और साँझ होते ही राज-दुर्ग का कोना-कोना प्रकाशमान बना दिया गया गोया कि यह चाँद और सूरज के मिलने की रात थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राजप्रासाद में उत्सव-भवन की सज-धज देखकर यूँ अनुमान होता था मानो संसार भर का ऐश्वर्य का सामान यहीं एकत्र कर दिया हो। रेशम और ज़री के पर्दों के साथ सैंकड़ों कोमलांगनायें शीशे के फ़ानूसों में काफ़ूर की जोतें लिए खड़ी थीं और दूर राजसिंहासन के सामने गाने-नाचने वालियाँ तड़क-भड़क वस्त्र पहने, मूर्तिमान, राजा और रानी के आने की प्रतीक्षा में बैठी थीं।

इधर राजमाता के महल में एक ओर दूल्हा श्वेत रेशमी वस्त्र धारण किये सिर पर रत्न जड़ित चमकता हुआ राजमुकुट लगाये गहनों से सज रहा था और दूसरी ओर दासियाँ दुल्हन को शृङ्गार से अप्सरा बनाने में व्यस्त थीं।

मानव-शरीर शृङ्गार द्वारा अलौकिक सौन्दर्य के साँचों में ढल चुके तो दूल्हा-दुल्हिन महिलाओं के झुरमुट में एक दूसरे के सामने हुए। दूल्हा-राजा की दृष्टि ज्योंही रूपमती पर पड़ी, वह इस रूप की देवी को देखकर स्तब्ध रह गया। झिलमिल-झिलमिल करते श्वेत रेशमी वस्त्रों में सुसज्जित, सिर से पाँव तक रत्नों और मोतियों में जड़ी लाज से आँखें झुकाये खड़ी थी। राजमाता ने मुस्कुराते हुए दोनों के माथों को चूमा और जुलूस उत्सव भवन की ओर रवाना हुआ। आगे-आगे दाहिने-बायें सैंकड़ों कँवल हाथों में लिए सुन्दर दासियाँ, बीच में राजमाता, इनके एक ओर दूल्हा और दुल्हिन और पीछे चँवर हाथों में लिए अमानी और गुलनार और सबके पीछे रानियों का झुरमुट मुस्कुराहटों की कलियाँ और हँसी के फ़व्वारे बरसाता चला।

भवन में प्रवेश करते ही सब खड़ी हुई दासियाँ और खड़ी हुई गायिकायें, उठकर अभिवादन को झुक गईं। राजमाता, दूल्हा और दुल्हिन सिंहासन पर बैठ गये। अन्तःपुर की दूसरी महिलायें दोनों ओर पंक्तियाँ जमा कर खड़ी हो गईं। राजमाता ने थाल भर-भर कर मोती और रत्न बरसाये। फिर रानियों ने और दूसरे अमीर-उमरावों की पत्नियों ने, दुल्हन-महारानी की सेवा में उपहार भेंट किये और दासियों ने घुटनों के बल बैठकर, सम्मान प्रगट किया।

उसके बाद अन्तःपुर की महिलायें दोनों ओर पंक्तियों में बैठ गईं, और दरबारी गायिकाओं ने संगीत और नृत्य से राजप्रासाद को इन्द्र का अखाड़ा बना दिया। सब ओर हर्षोल्लास का मेह बरसने लगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपमती, दूल्हा-राजा के साथ बैठी, आँखें झुकाये सबकी आँखों का केन्द्र बनी हुई थी। यद्यपि उसका परिचय यहाँ एक गायिका और नर्त्तकी के रूप में हुआ था, तथापि अपने रूप-रंग, सौन्दर्य, यौवन, ज्ञान-बुद्धि और शिष्टाचार से उसने सबको प्रभावित कर रखा था। जहाँ कहीं गायिका ने किसी अलाप से कोई समाँ बाँधा कि दोनों एक दूसरे को देख मुस्कुरा दिये।

गौरव और सफलता के इस चरम शिखर पर पहुँच कर, इस माया-रूपी समय में रूपमती का मस्तिष्क अपने बीते हुए समय के पन्ने उलटने लगा। चाँदनगर का चाचा का मकान, फूँस की छतें, दरिद्रता, चौधरी के बेटे की कुवृत्ति, सेठ का ब्याह-संदेशा, चाचा-चाची की आशायें, चम्पा का परामर्श, अपना दरबार में आने से इन्कार, चाचा का आग्रह, चाची का दुख—यह सब चित्र आँखों के सामने नाचने लगे। मन ही मन कहने लगी, 'रूपा ! कोई नहीं जान सकता कि भाग्य का पलटा कब, कहाँ लगेगा ? 'यत्न' निःसन्देह बड़ी चीज़ होगी, किन्तु, मैं क्या जानूं 'यत्न'। इसके वर्षों से तैयार किये महल क्षण-भर में गिर जाते हैं। वही सफल है जिसके पीछे भाग्य हो।'

इन्हीं विचारों में डूबी हुई थी कि पीठ पर राजमाता के हाथ रखने से चौंक पड़ी। वह कह रही थीं, "आधी रात हो गई है, अब सभा समाप्त कर देनी चाहिये।" एकबार दृष्टि उठाकर उनकी ओर देखा और लज्जा कर आँखें झुका लीं। राजमाता के होठों पर हल्की-सी मुस्कुराहट आ गई और वह तुरन्त गायिकाओं को बन्द करने का संकेत करके उठ खड़ी हुईं। इनके साथ ही दूल्हा-दुल्हिन और दूसरी महिलायें भी खड़ी हो गईं। राजमाता ने दोनों का माथा चूमा और सभा समाप्त हो गई।

राजप्रासाद में महाराज, रानी-रूपमती और उनके साथ अमानी और गुलनार रह गईं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२७

रानी रूपमती राज्य के शासन-प्रबन्ध में अपनी बुद्धि और सूझ-बूझ से राजा के समान ही महत्व रखती थी। इतनी बड़ी रानी होने पर भी वह अपने बीते जीवन को न भूली थी। राजा की स्वीकृति से उसने चाँदनगर में, पाठशाली, धर्मशाला तथा तालाब-बावली इत्यादि बनवाये। वहाँ के रहने वालों को भूमि के अधिकार दिये। चौधरी और सेठ को दरबार में बुलवा कर उनका मान बढ़ाया। प्राणों से अधिक प्यारी चम्पा को बुलाने के लिये, दास-दासियों और ख्वाजा-सराओं के साथ, सरकारी रथ को भिजवाया। गुलनार की सारङ्गपुर वाला गायिकाओं को भी न भूली, उन्हें भी अलग-अलग पुरस्कार भिजवाये। फ़िरोज ख्वाजा-सरा को राजप्रासाद का मुखिया बना दिया।

२८

सूर्य-अस्त हो रहा था। राजा और रानी राज-उद्यान में टहलते हुये गुलाब की क्यारियों में उतर गये और एक बड़े गुलाब के पौधे के पास जाकर रुक गये। रानी ने एक खिला हुआ फूल तोड़ कर राजा की ओर बढ़ाते हुये कहा—"कितना प्यारा फूल है।"

राजा ने मुस्कुराते हुये फूल ले लिया। रानी की ओर देखकर बोला—"वह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फूल भी इतना ही प्यारा था।"

रानी—(सोचते हुए) "मैं नहीं समझी, महाराज !"

राजा—(मुस्कुरा कर) "क्या इस स्थान पर पहले भी कभी आई हो ? और ऐसे ही सुहाने समय में..."

रानी सोचकर याद करने लगी। राजा को हँसी आ गई, बोला—"हम भूलना न सीखे, तुम भुलाना न भूलीं।"

रानी दाँतों में उँगली दबाये याद कर रही थी। राजा ने दोनों हाथ उसके कंधों पर रख दिये और दृष्टि जमाये मुस्कुराता रहा। फिर पूछा—"अब भी याद नहीं आया ?"

रानी ने वैसे ही दाँतों में उँगली दबाये राजा की ओर देखा और इन्कार में केवल सिर हिला दिया। राजा को उस भोलेपन पर और भी प्यार आ गया। आँखें डाल कर मुस्कुराते हुये कहने लगा—

पत्ता-पत्ता डाली-डाली हाल हमारा जाने है,
न जाने तो गुल ही न जाने बाग़ तो सारा जाने है।"

रूपमती को याद आ गया। खिलखिला कर हँस पड़ी। चंचल होकर बोली—"हाँ, हाँ ! याद आ गया। वास्तव में वह फूल इससे भी प्यारा था।"

दोनों हँसने लगे और रूपमती ने हँसते-हँसते अपना सिर राजा के वक्ष पर रख दिया। सामने से फ़िरोज़ लपकता हुआ आता दिखाई दिया। रूपमती अलग हट गई और दोनों उधर तकने लगे। पास पहुँच फर फ़िरोज़ अभिवादन को झुका।

रानी—"क्या कहना चाहते हो फिरोज़ ?"

फिरोज़—"महारानी ! रथ पहुँच गया है और आज्ञानुसार दुर्ग के फाटक पर रुका हुआ है।"

रानी—(प्रसन्न होकर) "हाँ ! आ गया ? आ गईं हैं बीबी ?"

फिरोज़—"जी ! महारानी।"

रानी—"इतने दिन क्यों कर लगे ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फ़िरोज़—"महारानी ! चाँदनगर में बीबी न थीं, फिर रथ को दूसरे स्थान पर जाना पड़ा।"

रानी—"अच्छा। गुलनार, अमानी और सब दासियों को सूचित कर दो, कि वह स्वागत के लिये हमारे संग हों।"

फिरोज़—(झुककर) "जो आज्ञा, महारानी !"

फ़िरोज़ पलक झपकते ही, सैंकड़ों दासियों, अमानी और गुलनार को लिये उपस्थित हो गया।

रानी—(प्रसन्न मुख से) "महाराज ! आज्ञा दें, कि मैं अपनी बड़ी बहन के स्वागत को स्वयं जाऊँ ?"

राजा—"महारानी ! अवश्य जायें।"

रूपमती, राज-सी ठाट से दासियों के झुरमुट में घिरी, राज-दुर्ग के फाटक की ओर चल पड़ी। अमानी और गुलनार आगे-आगे और बाकी दासियाँ पीछे-पीछे दुर्ग के द्वार पर पहुँचीं तो दुर्ग रक्षक-दल ने सम्मान किया। चम्पा रथ में बैठी रूपमती का वैभव देख रही थी। होठों पर मुस्कान थी और प्रसन्नता के आँसू गालों पर ढलक रहे थे।

चम्पा ने रथ से नीचे पाँव रखा ही था कि सब दासियाँ अभिवादन को झुक गईं और रक्षा-दल ने सलामी दी और चम्पा दौड़ कर रूपमती से लिपट गई। प्रेम के आलिंगन में बँधी, दोनों आत्मविभोर-सी हो रही थीं।

रूपमती, चम्पा को साथ लिये, अपने उसी वैभव के साथ राजप्रासाद की ओर चल पड़ी कुछ देर वे दोनों मौन चलती रहीं। दोनों ही कुछ कहना चाह रहीं थीं, पर होंठ थे कि बँध-से गये। मुँह था कि खुलता नहीं। फिर झिझकते हुये चम्पा बोली—"रूपा ! क्या तुम्हें, मुझे देख कर इतना प्रसन्न होना चाहिये ?"

रूपमती ठहाका मार कर हँस पड़ी; "अब भी मेरी बहन ने भिच कर ही बात की। लो मैं देती हूँ, उन सब प्रश्नों के उत्तर, जो तुम्हारे मन में उठ रहे ... ल गया, जो मेरी कल्पना का साकार-रूप, मेरे जन्म-जन्म का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साथी—कल तुम्हें भी दिखाऊँगी।" यह कह कर रूपमती अनायास हँस पड़ी। चम्पा ने चलते-चलते उसे फिर गले से लगा लिया।

चम्पा—"रूपा ! मेरी प्यारी रानी। अब मैं प्रसन्न हूँ, अति प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हें बधाई देती हूँ। मैं अपने उस किये की क्षमा चाहती हूँ, जो तुम्हारे स्वप्न को 'यथार्थ' से दूर समझती थी। मैं भूल पर थी।"

रूपमती—(हँसते हुये) "नहीं चम्पा बहन ! ऐसी बात नहीं। तुमने मुझे कभी भटकने नहीं दिया। मैं तो भाग्य की दासी हूँ, उसी की पुजारिन हूँ। वही मेरा जन्म-दाता है और वही मुझे मारने वाला।"

इधर-उधर की बातें करती हुई, दोनों, अमानी-गुलनार और दासियों के साथ राजप्रासाद में पहुँच गईं।

२९

रूपमती के हर्षोल्लास और सुख-वैभव के दिन महीनों में और महीने वर्षों में परिवर्तित हो रहे थे। राजा उस पर मोहित था और वह राजा की पुजारिन थी। राज-शासन के सब कार्य उसके परामर्श से पूर्ण होते थे। राजा के संग उसने पूरे राज्य का दौरा किया। चप्पा-चप्पा देखा। नये गढ़ बनवाये, पुरानों की मरम्मत करवाई और सीमाओं पर नई मोर्चा-बन्दियाँ करवाईं। धर्म और जनता के कार्यों में उसकी विशेष रुचि थी। युवा महाराज और महारानी ने प्रजा का मन मोह रखा था। सब सुखी थे।

इन दिनों सम्राट अकबर अपने राज्य को बढ़ाने की चिन्ता में लगा था। विजय के उन्माद ने उसका उत्साह दूना कर रखा था। बंगाल और रणथम्बौर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर अधिकार पाने के बाद, उसकी दृष्टि मालवा पर पड़ी ? मालवा पर आक्रमण की तैयारियाँ होने लगीं। इस कार्य के लिए उसने अपने प्रसिद्ध, पाँच हज़ारी अमीर बहादुर ख़ाँ को चुना, जो युद्ध-कला में निपुण था।

रात एक पहर बीत चुकी थी। रानी रूपमती अपने शयन-कक्ष में तकिये से टेक लगाये कुछ सोच रही थी। पास ही एक फ़ानूस प्रकाशमान था। सामने चौकी पर पत्रों का ढेर बिखरा था। एक पत्र को वह ध्यान से पढ़ रही थी। सहसा कुछ विचार आया कि रानी ने फ़िरोज़ को पुकारा। फ़िरोज़ तुरन्त उपस्थित हुआ।

फ़िरोज़—"आज्ञा महारानी।"

रानी—"महाराज जब भी दरबार से उठें तो हमें तुरन्त सूचना दो।"

फ़िरोज़ अभिवादन करके चला गया और रानी दूसरे पत्र देखने लगी।

थोड़ी देर पश्चात फ़िरोज़ ने दरबार समाप्त होने की सूचना दी। रानी पत्र समेट कर उठी और महाराज के आने की प्रतीक्षा करने लगी। राजा ने प्रवेश किया और मुस्कुरा कर बोला—"क्षमा करना, रूपमती ! बहुत देर हो गई। कल की सूचना के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने में बहुत समय लग गया।"

रूपमती—"तो क्या निर्णय हुआ ?"

राजा—"अभी तो यह निश्चय हुआ है कि एक टुकड़ी सेना की, सीमा पर देख-भाल के लिए तुरन्त भिजवा दी जाये, जो शत्रु की हल-चल पर कड़ी दृष्टि रखे।"

रूपमती—(पत्र दिखाते हुए) "यह सूचना-पत्र अभी-अभी रणथम्बौर से आया है। बहादुर ख़ाँ के आधिपत्य में सेना तैयार हो रही है। अनुमान है कि एक सप्ताह में ही आक्रमण हो जायेगा। इस स्थिति में किसी एक सरदार को सेना की टुकड़ी के साथ सीमा पर भेज देना, मैं पर्याप्त नहीं समझती।"

राजा ने पत्र को बड़े ध्यान से पढ़ा और बड़ी देर तक सोचता रहा।

राजा—"अकबर ने सेनापति भी बड़ा बाँका चुना है। यह वही बहादुर ख़ाँ है, जो अलीकुली ख़ाँ सीस्तानी का भाई है। दोनों भाई बला के मनचले हैं। पानीपत में हेमूं का निर्णय इन्हीं की तलवार ने किया था और अकबर के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राज्य की नींव रखी थी। इस सूचना को हम बड़ा महत्व देते हैं। वास्तव में एक टुकड़ी सेना की पर्याप्त न होगी। हमें पूरी शक्ति से शत्रु की प्रतीक्षा करनी चाहिए।"

रूपमती—"मेरा विचार है कि महाराज स्वयं सेना लेकर जायें। मैं दो एक दिन में सेना की भोजन-सामग्री, घायलों की मरहम पट्टी का प्रबन्ध और बाकी हर प्रकार की आवश्यकता-पूर्ति का प्रबन्ध करके आप से आ मिलूंगी।

राजा—"रूपमती ! तुम क्यों कष्ट उठाती हो। तुम यहीं रहो। यह कठिनाई झेलना मेरा काम है, तुम्हारा नहीं।"

रूपमती—(मुस्कुरा कर) "महाराज के साथ कठिनाई झेलने में एक विशेष आनन्द है।"

राजा—(मुस्कुरा कर) "तुम फूल हो रूपमती ! और फूल उद्यान में ही शोभा देता है।"

रूपमती—"महाराज ! फूल की शोभा तो राजमुकुट पर ही है। वह फूल जो केवल उद्यान में ही रहे, वह भी क्या फूल। मेरे विचार में उसके खिले रहने का कोई महत्व नहीं।"

राजा—(निरुत्तर होकर) "रूपमती ! मुझे तुम से एक क्षण का वियोग भी असह्य है। किन्तु इससे भी अधिक असह्य है कि तुम मेरे संग, जंगलों-पर्वत में धूल छानो।"

रूपमती—महाराज ! आप मुझे रोकने का अधिक प्रयत्न न करें। आपके चरणों से दूर रहकर, इन महलों में जंगलों से अधिक कष्ट होगा। यह मेरा निजी स्वार्थ है कि मैं महाराज के चरणों के समीप रहने की प्रार्थना कर रही हूँ।"

राजा मौन हो गया और फ़िरोज़ को बुलाकर उसी समय मन्त्रियों और सरदारों को बुलाने का आदेश दिया। कुछ ही देर में सब दरबार में उपस्थित हो गये। राजा ने रणथम्बौर वाली सूचना सुनाई। आधी रात गये तक विचार-विमर्श हुआ। निश्चय किया गया कि उसी रात नगर से बाहर सेना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एकत्र की जाये । सीमा प्राँत के राज्यपालों के नाम आदेश लिखे गये और रात ही रात तीव्रगामी ऊँटनियों द्वारा भिजवा दिये गये ।

रानी के आदेशानुसार रात-भर दास-दासियों और ख्वाजा-सराओं को राजा की आवश्यकताओं की पूर्ति के सिवा और कोई कार्य न था । स्वयं राजा और रानी युद्ध के सामान का सूचीपत्र बनाने में व्यस्त रहे । वह रात पलक झपकने सी आँखों में कट गई । सेना के अधिकारियों ने रात के अँधेरे में सेना को नगर से बाहर पहुँचा दिया । अभी नगरवासी सो ही रहे थे कि राजा सेना के साथ कूच कर गया । किसी को कानों-कान खबर न हुई । यह कार्य इतनी सावधानी से इस कारण किया गया कि सम्भव है नगर में शत्रु के भी गुप्तचर हों ।

बाज़बहादुर इतनी शीघ्रता से निश्चत स्थान पर पहुँचा कि शत्रु की सेना अपने स्थान से हिलने भी न पाई । सीमा-प्राँत के सरदार एक-एक करके अपनी सेना और सामग्री के साथ आन मिले । पूरी सीमा पर सेना को यूँ फैला दिया गया कि आने-जाने वाले यात्रियों को पता भी न चल सका । स्वयं राजा एक घने जंगल में डेरे डाल कर बैठ गया और चारों ओर गुप्तचरों का जाल फैला दिया ।

रानी रूपमती ने दो ही दिन में सेना की आवश्यकता का सामान प्राप्त करके रात के अँधेरे में पीछे-पीछे भिजवा दिया ।

यह सब कार्य इतना चुपचाप हुआ कि दुर्ग के बहुत से व्यक्तियों को भी राजा के जाने की सूचना न हुई । यहाँ तक कि गुलनार को भी इसका ज्ञान तब हुआ, जब वह दूसरी सवेरे रानी रूपमती की सेवा में उपस्थित हुई । राजा के यूँ तुरन्त चले जाने पर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और बोली—"वास्तव में राज्य करना बड़ा जोखम का कार्य है ।"

रूपमती हँस पड़ी और कहने लगी—"तुम्हें याद होगा गुलनार ! मैंने एक बार कहा था ना कि वह सिर जिस पर राजमुकुट है सबसे अधिक बोझ उठाये होता है । प्रकृति यह भार उन्हीं को सौंपती है जो इसके योग्य हैं ।"

गुलनार—"महारानी ने मुझे क्यों न बुलवा लिया ? भेजा सरकार अकेली रहीं न जाने कब आँख लगी होगी ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपमती—"मैं सोई ही कब हूँ ? महाराज भी रात भर तैयारियों में लगे रहे और मैं भी उनकी सहायता करती रही ।"

गुलनार—"तो फिर मुझे क्यों न बुलवा लिया, मैं भी कुछ सेवा करती ।"

रूपमती—(हँसते हुए) "मैंने 'सरकार' को इस कारण से न बुलवाया कि 'सेवक' अप्रसन्न होता ।"

दोनों हँसने लगीं । गुलनार ने पूछा—"और अमानी को भी सूचना न हुई ?"

रूपमती—"वह राजा की सेवा में उनके संग है । मैं भी परसों तक उनके पास पहुँच जाऊँगी ।"

गुलनार—"और मैं ?"

रूपमती—(हँसकर) "तुम दुर्ग-रक्षक की पत्नि हो । दुर्ग की मालिकन हो, यहीं रहोगी ।"

अभी यह बातें हो ही रहीं थी कि फ़िरोज़ भीतर आया और बोला—

"महारानी ! चिकित्सालयों का उच्च अधिकारी उपस्थित है ।"

रानी—"बुलाओ !"

वह भीतर आया और अभिवादन करके खड़ा हो गया ।

रानी—"देखो ! पचास चिकित्सक, दो सौ शल्य चिकित्सक, दवाईयाँ और मरहम-पट्टी का सामान तुरंत तैयार करो ! यह सब कुछ आज ही आधी रात को रवाना हो जायेगा और सावधान ! किसी को भी इसका ज्ञान न होने पाये ।"

अधिकारी—"सरकार ! यह सामान और यह लोग किधर भिजवाये जायेंगे ?"

रानी—(त्यौरी पर बल डाल कर) "यह पूछना तुम्हारा काम नहीं जो तुम को बताया गया है वह करो ।"

अधिकारी, अभिवादन को झुका और उल्टे पाँव हटता हुआ बाहर निकल गया ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिन भर गाड़ियों में भोजन सामग्री लदती रही और रात के अंधकार में चलने की आज्ञा की प्रतीक्षा की जाने लगी। रानी दिन भर इसी काम में व्यस्त रही और जब हर काम पूर्ण रूप से हो चुका, तो आधी रात गये काफले को सेना के एक रक्षक-दल के साथ जाने की आज्ञा देकर, पूरे एक दिन और एक रात के बाद, रानी ने बिस्तर से पीठ लगाई।

रानी के बहुत समझाने-बुझाने पर भी, गुलनार अपने घर न गई और रानी के शयन गृह में ही रही। सवेरे होते ही रानी फिर उठ बैठी और अपने जाने की तैयारियों में लग गई। दुर्ग की रक्षा के लिए आदेश दिये, सब मोर्चों, बुर्जों और तोपों का स्वयं निरीक्षण किया, नगर में हर आने-जाने वालों पर कड़ी दृष्टि रखने और हलचल गुप्त रखने की आज्ञा दी। सांझ ही से सैकड़ों जंगी हाथी तैयार हो गये और सरदार सेना के एक दल को लेकर दुर्ग में उपस्थित हो गया। सबने हथियार लगाये और रात का खाना राजसी लंगर से खाया।

इधर गुलनार, रानी रूपमती को हथियारों से सजा रही थी और ज़र्रीन कटार कमर में लगाये नंगी तलवार हाथ में लिये बाहर टहलता फिर रहा था।

गुलनार—"सरकार तो परसों जाने को कह रही थीं ?"

रानी—"हाँ, पहले तो यही विचार था किन्तु पूरा कार्य चूंकि निर्धारित समय से पहले ही हो गया है सो मैंने कल के स्थान पर आज ही जाने का निश्चय कर लिया है।"

रूपमती तैयार होकर गुलनार को साथ लिये बाहर निकली। ज़र्रीन ने सैनिक ढंग से अभिवादन किया।

रानी—(मुस्कुराते हुए देख कर) "तुम पर केवल दुर्ग की रक्षा ही नहीं बल्कि (गुलनार की ओर संकेत करके) इनकी रक्षा का भी भार है और इनकी सेवा एक सच्चे सेवक के समान होनी चाहिये।"

ज़र्रीन दबे होंठों मुस्कराता हुआ अभिवादन को झुक गया। रानी हँसती हुई दुर्ग के फाटक की ओर चल पड़ी और ज़र्रीन पीछे-पीछे हो लिया। रूपमती चुपके-चुपके गुलनार से कह रही थी—"महाराज दो तीन दिन से अकेले हैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यद्यपि अमानी उनकी सेवा के लिये संग है, किन्तु उनके अकेलेपन का विचार मुझे सदा सताता है।"

गुलनार—(मुस्कुराते हुए) "सच कहती हैं महारानी ! हज़ार अमानी, हज़ार गुलनार मिलकर भी महाराज को वह सुख नहीं पहुँचा सकतीं, जो महारानी की एक दृष्टि, एक स्पर्श, एक मुस्कान पहुँचा सकती है।"

रूपमती गुलनार की ओर देखकर हँस पड़ी, और गुलनार भी हँसने लगी।

दोनों दुर्ग के फाटक पर पहुँच कर रुकीं। साथ की सेना और दुर्ग के रक्षक दल ने सलामी दी। हाथी बिठाये गये, रानी गुलनार से गले मिलकर सवार हुई, और हाथियों का काफ़ला रात के अन्धेरे में चल पड़ा। आठ पहर तक मारा-मार निरन्तर चलते हुए, अगली रात अपने लक्ष्य पर जा पहुँचा। रानी के आने की सूचना पाकर राजा स्वागत के लिए बाहर निकला तो रानी को अस्त्र-शस्त्र से सजा देखकर मन मसोस कर रह गया। चाहता था कि उसे आलिङ्गन पाश में बाँध ले, किन्तु अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति ने उसे रुकने पर विवश कर दिया। मुस्कुराता हुआ बढ़ा, हाथों से सहारा देकर उसे सीढ़ी से उतारा और हाथों-हाथ अपने शिविर में ले गया। राजा की प्रसन्नता की कोई सीमा न थी। हँस रहा था और अपने हाथों से रानी के हथियार खोल रहा था।

राजा—(रूपमती को आलिङ्गन में लेते हुये) "रानी ने बाज़बहादुर पर बड़ी कृपा की।"

रूपमती—(हँसते हुए, चंचलता से) "निस्सन्देह, हमने बाज़बहादुर पर बहुत कृपा की।"

दोनों अनायास हँसने लगे। फिर भावी युद्ध के विषय में बातें होती रहीं और बड़ी रात गये तक सोये।

उधर अकबर के सेनापति बहादुर खाँ ने हलचल की। पड़ाव पर पड़ाव मारता आँधी के वेग की भाँति बढ़ने लगा। बाज़बहादुर के गुप्तचरों की सूचनायें धड़ाधड़ आ रही थीं। सेना की संख्या, उनके सामान इत्यादि से उसे पूरी जानकारी हो गई। बहादुर खाँ ने मालवा की सीमा से दस कोस पर अन्तिम पड़ाव किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बाज़बहादुर ने बहादुर खां के रुकने को अपने लिए शुभ विचारते हुये, इस से लाभ उठाने का निर्णय किया। उसने देखा कि उसकी पूरी सेना एक ही स्थान पर एकत्र है फिर यह कि पड़ाव पड़ाव पर मारते चले आ रहे हैं। इतनी यात्रा से थके हुए अवश्य रात को असावधानी से विश्राम करेंगे। इसके अतिरिक्त उसे यह भी सन्तोष था कि शत्रु उसकी उपस्थिति से अनभिज्ञ है। वरना वह यूँ अंधाधुन्ध बढ़ता न चला आता।

साँझ को ज्यूँ ही यह सूचना पहुँची, तुरन्त, सरदारों को परामर्श के लिये इकट्ठा किया और मिलकर यह निश्चय किया कि रात्रि-आक्रमण का इससे अच्छा अवसर मिलना कठिन है।

अधिक सेना के साथ रात्रि का हमला युद्ध के दृष्टिकोण से ठीक नहीं होता इसलिये योजना बनी कि दो-दो हजार के दो टुकड़े विपरीत दिशाओं से शत्रु पर टूट पड़ें। वह भी ऐसे कि पहले एक-एक हज़ार की टुकड़ी दोनों ओर से आक्रमण करे और शेष एक-एक हज़ार पीछे सहायता को रहे! जब देखें कि युद्ध कुछ गर्म होने लगा है, तो एक साथ हमला करके टूट पड़ें। इसके लिए चार अनुभवी सरदार चुने गये, और स्वयं राजा, दूसरे सरदारों के साथ पाँच हज़ार सैनिकों का दल लेकर अन्तिम आक्रमण को तैयार बैठा।

रूपमती ने साथ चलने का आग्रह किया परन्तु बाज़बहादुर न माना। चुपचाप योजनानुसार सेना आगे बढ़ी, दो कोस जाकर सीधा ऊपर को चढ़ना आरम्भ हुआ और अपने-अपने दाँये बाँये को पलटी। इधर से बाजबहादुर भी धीरे-धीरे सीधा बढ़ कर शत्रु की सेना के सामने पहुँच गया। रात आधी से अधिक बीत चुकी थी, तो पहले दल ने एक ओर से आक्रमण किया। एक खलबली-सी मच गई। हाय-हाय की पुकार और वीरों की जय-जयकार से रात के सन्नाटे में जंगल गूंज उठा। बाज़बहादुर धीरे-धीरे आगे बढ़ता चला जा रहा था कि दूसरे दल के ताज़ा आक्रमण की ध्वनि उठी।

बाजबहादुर अपनी सेना के साथ इतना समीप पहुँच गया था कि आवाज़ें स्पष्ट सुनाई दे रही थीं। यहाँ आकर वह रुक गया और प्रतीक्षा करने लगा कि दूसरे दोनों दल भी दायें-बायें से शत्रु पर आ गिरें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बहादुर खाँ तलवार का धनी था। जितना भी हो सका बिखरी हुई सेना को एकत्र किया और घमासान युद्ध छेड़ दिया। इतने में बाज़बहादुर के दूसरे दोनों दल भी जय-जयकार करते हुए विपरीत दिशाओं से शत्रु पर टूटकर गिरे। इस ताज़ा आक्रमण से शत्रु की सेना का वह भाग भी, जिसने सिमट कर लड़ाई आरम्भ कर दी थी, फिर बिखर गया। एक भाग-दौड़ मच गई। भागती हुई सेना के घोड़ों की टापें, हाथियों की चिंघाड़ें और ऊँटों की बिलबिलाहट से यह प्रगट हो रहा था कि शत्रु-सेना के पाँव उखड़ रहे हैं।

बाज़बहादुर ने आक्रमण का आदेश दिया। सेना ने घोड़ों को एड़ी लगाई और क्षण-भर में जय-जयकार लगाते हुए शत्रु की सेना से टकरा कर उसे भालों पर रख लिया। शत्रु की सेना इस आक्रमण का सामना न कर सकी। बहादुर खाँ ने बहुत बनाना चाहा किन्तु बिगड़ी हुई लड़ाई न बन सकी। हज़ारों घायल हुए, हज़ारों भागने की धकापेल में कुचले गये, हज़ारों तलवारों की धार पर ठंडे हुए और जो बड़ी कठिनता से बच निकले वह जंगलों में भाग गये।

सैंकड़ों हाथी, घोड़े, ऊँट, हथियार और दूसरा लड़ाई का सामान हाथ लगा, कितने ही शत्रु बंदी बनाकर लाये गये। सवेरे होते तक रण-स्थल तो शत्रु से साफ़ हो गया, किन्तु हर ओर लहू की नदियाँ बह रही थीं, घायलों की चीख-पुकार से कलेजा फटा जाता था।

रूपमती के पास क्षण-क्षण की सूचनायें पहुँच रही थीं। घायलों को उठाने के लिए गाड़ियाँ और चिकित्सा का सामान भिजवाया और हथियार लगा कर स्वयं भी घोड़े पर सवार होकर रण-स्थल पर जा पहुँची।

सूर्य पूरा निकल चुका था। दूर ही से, राजा लहू से भरपूर तलवार गले मेंलटकाये एक टेकरी पर खड़ा दिखाई दिया। नीचे मैदान लाशों से पटा हुआ था। स्वयं राजा के वस्त्र लहू में सने हुए थे। रूपमती शिष्टता के राजसी नियमों को छोड़कर घोड़े से कूदी और दौड़कर राजा से लिपट गई। राजा हँसने लगा और उसकी बाँहें भी अनायास रूपमती की कमर के गिर्द कस गईं।

रूपमती—(उत्साहपूर्वक) "मैं महाराज की सेवा में बधाई का उपहार उपस्थित करती हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राजा—(हँसते हुए) "हम यही उपहार महारानी को लौटाते हैं।" यह कहते हुए अपनी लहू में सनी हुई तलवार रूपमती के गले में डाल दी। रूपमती सादर झुक गई और दोनों हँसने लगे।

घायलों को उठाने वाली गाड़ियाँ पहुँच गईं। राजा और रानी टेकरी से उतरे और घायलों को उठवाने के कार्य में व्यस्त हो गये। उन्हें अपने हाथों से सहारा दे कर उठवा रहे थे। साथ ही वीरोक्तियों द्वारा उनका साहस बढ़ा रहे थे। शत्रु ऐसी खलबली में भागा था कि अपने घायलों को भी न उठवा सका। उनको भी उठवाया फिर मृत: सैनिकों का अन्तिम-संस्कार किया और कहीं रात पड़े अपने डेरों को वापस लौटे।

सेना भी थकी हुई थी। निरन्तर परिश्रम से राजा-रानी के भी अंग-अंग दुख रहे थे। अंग-रक्षकों को सावधान करके उन्होंने रात होने ही विश्राम के लिए पाँव फैला दिए और निन्द्रा-मग्न हो गये।

प्रात: उठकर पहले राजा और रानी ने घायलों को देखा, उनकी प्रशंसा की और उन्हें साहस बँधाया। फिर लूट के माल का सूचीपत्र बनवाया। जितना धन प्राप्त हुआ था, वह सिपाहियों, सरदारों तथा अन्य सेवकों को यथा-सन्मान बाँट दिया। घायलों को इसके अतिरिक्त पुरस्कार भी मिला।

इस विजय की सूचना राजदुर्ग में पहुँचा दी गई, किन्तु सेना और स्वयं राजा और रानी उस समय तक वहीं ठहरे रहे जब तक घायलों की दशा यात्रा के योग्य न हो गई और चारों ओर से गुप्तचरों ने यह सूचना न दे दी कि अब किसी आक्रमण का भय नहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३०

इस भव्य-विजय के पश्चात् राजा और रानी का लौटना प्रजा के लिये किसी महोत्सव से कम न था। राजदुर्ग, राजप्रासाद और नगर भर में एक विचित्र चहल-पहल थी। जो एक उदासी कुछ दिनों के लिये छाई थी वह यूँ दूर हुईं मानो घटाटोप अन्धकार के पश्चात् सूर्य निकला हो।

आज रात्रि में संगीत और नृत्य की सभा होने वाली थी, जिसकी प्रबन्धक गुलनार थी। राजप्रासाद साँझ से ही विविध भाँति से प्रकाशित हो रहा था। चुनी हुई गायिकायें और नर्तकियाँ आमन्त्रित थीं।

रानी रूपमती रेशम के श्वेत वस्त्रों में सुसज्जित, जड़ाऊ गहने पहने, सिर पर मुकुट धारण किये सोने की कुर्सी पर बैठी थी। उसके घने और लम्बे बाल जो उसके कंधों पर बिखरे थे, एक दासी खड़ी कंघे से समेट रही थी। राजा साथ वाले शयन-कक्ष में रेशमी-महीन पर्दे के पीछे खड़ा उसके सौंदर्य को निहार रहा था। दासी कंघी करके कमरे से निकली, तो राजा ने प्रवेश किया।

रानी दर्पण के सन्मुख बैठी थी। राजा धीरे से बढ़ते हुए उसके समीप आया और कंधे पर हाथ रखते बोला—

"उसने शानों पे ज़ुल्फ़ बरहम की,
खैर, या रब !—नज़ामे आलम की।"

रानी हँसते हुये सम्मान के लिये खड़ी हो गई। राजा ने उसे आलिङ्गन्न-पाश में बाँध लिया। दोनों पर एक उन्माद-सा छा गया। राजा ने उसे और भींच लिया और उसका रेशम से भी कोमल शरीर उसके वक्ष से यूँ आ लगा मानो वायु के झोंके से किसी शाखा पर खिले दो कोमल फूल एकाएक एकाकार हो गये हों। कुछ ही क्षण पश्चात् दोनों अलग हुये और कुर्सियों पर बैठ गये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राजा—"प्रिये ! तैयार हो गईं ?"

रूपमती—(हँसते हुये) "जी महाराज !"

राजा—"देखो रूपमती ! यह 'शब्द' हर समय अच्छा नहीं लगता ।"

रूपमती—"कौन-सा 'शब्द' महाराज ।"

राजा—"यही 'महाराज' का । कभी इसे भुला भी दिया करो । मैं सुनते-सुनते ऊब गया हूँ ।"

रूपमती—आप मेरे स्वामी हैं । मेरे महाराज हैं, तो इसे भुला कैसे दूं ?"

राजा—"रूपमती ! तुम्हें याद होगा, जब पहली बार मैंने तुम्हें अपना बनाने की इच्छा प्रगट की थी तो राजा बन कर आज्ञा न दी थी, बल्कि बाज़-बहादुर बन के अनुनय किया था । तुम मुझे बस बाज़बहादुर ही समझो । यह 'आप' और 'महाराज' का प्रयोग केवल विशेष अवसर के लिये ही रहने दो ।"

रूपमती ने उसके गले में बाँहें डाल दीं और हंसते हुये बोली—"अच्छा, तो बताओ बाज़बहादुर ! तुम्हें बाज़बहादुर समझने का कौन-सा अवसर है ?"

बाज़बहादुर—(उसे सीने से लगा कर मुस्कुराते हुए) "जब मैं और तुम अकेले हों ।"

रूपमती—(हँसते हुए) "अच्छा प्रिय ! तुम्हारी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करना मेरे लिए नव-जीवन के समान है । मैं पूर्णता तुम्हारी ही हूँ ।"

बाज़बहादुर—(उसे बाँहों में लेते हुए) "विश्वास करो रूपमती ! यूं तो वर्षों से तुम मेरी प्रियसी हो, किन्तु जीवन का वास्तविक आनन्द मुझे आज ही प्राप्त हुआ है और मैंने केवल आज ही, बल्कि अभी-अभी यह अनुभव किया है कि मैं और तुम एक ही हैं । हमारा पृथक् कोई अस्तित्व नहीं । छोटे-बड़े का अन्तर प्राय: मुझे कष्ट पहुँचाता रहा है । क्या तुमने भी कभी इस कष्ट को अनुभव किया हैं ?"

रूपमती—"सच बताऊँ ?"

राजा—(हँसकर) "हाँ, प्रिये ! बिल्कुल सच बताओ ?"

रूपमती—"जो कुछ बताऊँगी, उसका विश्वास कर लोगे ?"

राजा—"अवश्य !"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपमती—"तुम्हें अपने सामने देखकर, अपने समीप पाकर मैं ऐसी खो जाती हूँ कि मुझे किसी कष्ट का भान ही नहीं रहता, बल्कि आनन्द ही आनन्द अनुभव होता है।"

बाज़बहादुर—"रूपमती ! क्या स्त्री भी पुरुष के लिए वही भावना रखती है, जो पुरुष उसके लिए रखता है।

रूपमती—"स्त्री और पुरुष की भावनाओं की तुलना ही नहीं। वास्तव में इन भावनाओं की अधिकारणी तो केवल स्त्री ही है। किन्तु मैं जानती हूँ कि तुम्हें इसका विश्वास न आयेगा। काश ! क्षण-भर के लिए तुम रूपमती बन सकते और मैं बाज़बहादुर बन सकती।"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़े। बाहर पाँव की आहट के साथ पर्दा हिला दोनों अलग हो गये और गुलनार भीतर आई।

गुलनार—(अभिवादन में झुककर) "महाराज ! सभा तैयार है।"

राजा—(मुस्कुरा कर रूपमती की ओर देखते हुये) "यह तुम्हारी महारानी मचल रही हैं कि हम तो गोद में चलेंगे।"

बाज़बहादुर और रूपमती हँसने लगे और गुलनार ने आँखें नीची कर लीं। सभा में पहुँचे। दासियें और गायिकायें अभिवादन को झुकीं और राजा-रानी दोनों सामने गाव तकिए से पीठ लगा कर बैठ गये। संगीत छिड़ गया और नर्तकियों ने नृत्य आरम्भ किया।

सौंदर्य की सज-धज, नाचने वालियों के लहँगों की तड़क-भड़क, तबले की गमक, पाँव की धमक और घुंघरुओं की छनक से एक समाँ बँध गया। राजा और रानी मुस्कुराहटों से प्रशंसा कर रहे थे। आधी रात तक यही रंग बरसता रहा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अकबर को अपने प्रसिद्ध सरदार की अपमान-जनक पराजय का बहुत दुख हुआ, बड़ा तिलमिलाया किन्तु दूसरा आक्रमण सम्भव न था। बैरम खाँ और दूसरे सरदारों में कुछ तनाव के कारण टेढ़ी-सी समस्या उत्पन्न हो गई थी। स्वयं सम्राट् के मन में बैरमखाँ के विरुद्ध कई शंकाएँ जड़ पकड़ती जा रही थीं। यह स्थिति बैरम खाँ के लिये राजा से अधिक चिंताजनक थी और वह ऐसे अवसर की खोज में था जिससे राजा के मन से अपने प्रति शंका को दूर कर सके। इस आशय से उसने अपने व्यय से मालवा पर आक्रमण की, सम्राट् से आज्ञा माँगी। सम्राट ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक इसे स्वीकार कर लिया और कई सरदारों को इसमें सहयोग देने के लिए उसकी आज्ञा में कर दिया।

बैरम खाँ बड़ा अनुभवी सेनापति और चतुर राजनीतिज्ञ था। उसने गुप्त जंगी तैयारियों के साथ-साथ मालवा में गुप्तचरों का जाल फैला दिया और बाजबहादुर के सरदारों को घूस तथा पुरस्कारों के लालच द्वारा तोड़ने का यत्न आरम्भ कर किया।

बाज़बहादुर भी चौकन्ना था। उसे यह सूचनायें मिलते देर न लगी और वह भी पूरे मन से ख़ानखाना का सामना करने की तैयारियाँ करने लगा। सरदारों से परामर्श किये गये, मोरचा बन्दियों को दृढ़ बनाया गया और चारों ओर सीमा पर सेना फैला दी गई।

ख़ानख़ाना के सब प्रयत्न, बाज़बहादुर के सरदारों को तोड़ने के, असफल रहे और अब खुले आक्रमण के अतिरिक्त उसके पास कोई उपाय न था। सेना लेकर बढ़ा किन्तु अनमना सा, क्योंकि अपने नीचे वाले सरदारों पर उसे विश्वास न था। वह यह न चाहते थे कि सम्राट् की दृष्टि में उसका गिरा हुआ मान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फिर बढ़े ।

बाज़बहादुर को यह सूचनायें निरन्तर मिल रही थीं और वह राजधानी में ही में बैठा स्थिति को देख रहा था । दूसरे सरदारों को उचित स्थानों पर नियुक्त करके स्वयं खानखाना के आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगा ।

मालवा के क्षेत्र में आकर खानखाना ने जहाँ भी पाँव बढ़ाने चाहे वहीं उसे मुँह की खानी पड़ी । अकबरी सेना कहीं भी डटकर न टिक सकी, ऐसी छोटी मोटी कई झड़पों के पश्चात् वह जान गया कि नीचे वाले सरदार उसे सहयोग नहीं देना चाहते, सो इस चढ़ाई को व्यर्थ जानकर वापस लौट गया ।

यद्यपि बाज़बहादुर को अबकी अधिक कष्ट न उठाना पड़ा और उसने बड़ी सरलता से शत्रु को अपनी सीमा से बाहर निकाल बाहर किया। किन्तु वह सन्तुष्ट न था । वह जानता था कि अकबर चुप न बैठा रहेगा और कभी न कभी उसे भयंकर युद्ध का सामना करना ही पड़ेगा ।

कुछ महीने बीत जाने पर बाजबहादुर ने अकबर को शान्त करने के लिये उसके दरबार में एक दूत भी भेजा, किन्तु सम्राट् पर इसका कोई प्रभाव न हुआ । बलवान, निर्बल की मित्रता का इच्छुक नहीं होता उसे उसकी दासता चाहिए ।

घटनायें होती रहीं और समय बीतता रहा । इस बीच में बैरम खाँ का काँटा भी निकल गया था । अब अकबर ने अपना पूरा ध्यान मालवा की ओर लगा दिया और स्वयं आक्रमण का प्रबन्ध करने लगा । पिछली दो बार की पराजय से उसने अनुमान लगा लिया था कि बाज़बहादुर न केवल सावधान, बुद्धिमान और मनचला है, बल्कि उसके सरदार और उसकी प्रजा भी राज्य-भक्त है । इस कार्य के लिए उसने दो विश्वासनीय अमीरों ऊधमखाँ और मुल्ला पीर मुहम्मद को चुना ।

ऊधमखाँ, अकबर की धाय माँ—माहम का बेटा और उसका दूध-भाई था । वह बुद्धिहीन, अशिक्षित, संकीर्ण हृदय और वासना-प्रिय व्यक्ति था । ऐतिहासिकों ने उसे 'राँड का साँड' कहा है । मुल्ला पीर मुहम्मद ज्ञानी, विद्वान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और मृदुभाषी व्यक्ति था। कुछ दिनों वह अकबर का अध्यापक भी रहा था, किन्तु बड़ा लालची और कठोर हृदय था। ऐतिहासिकों ने उसे कसाई के नाम से सम्बोधित किया है।

३२

रजनी के घने केश कटि तक पहुँच चुके थे, चन्द्रमा अपने पूरे यौवन पर प्रकाशमान था, और उसकी रूपहली चादर मांडू के दुर्ग पर बिछी हुई थीं।

बाजबहादुर और रूपमती राज्य-उद्यान में टहलते हुए अपने शयन-कक्ष में वापस लौटे। वे चिन्तित और व्यग्र दीख पड़ते थे। दोनों गाव-तकियों का सहारा लेकर लेट गये। बाज़बहादुर ने अपनी बाँह रूपमती की गर्दन में डाल दी, और वह खिची हुई उससे ऐसे आ मिली, जैसे सुई चुम्बक से। बाज़बहादुर ने दूसरा हाथ उसकी कटि में डाल कर उसे अपने वक्ष से लगा लिया। बहुत देर तक दोनों ऐसे ही पड़े रहे। फिर बाज़बहादुर ने मौन भंग किया।

बाजबहादुर—(ठँडी साँस भर कर) "रूपमती! मुझे कभी न भूलना!"

रूपमती तड़पकर उठ बैठी और बाज़बहादुर पर दृष्टि जमा दी। दोनों हाथों से हृदय पकड़ कर तेज़-तेज़ साँस लेने लगी।

रूपमती—"यह क्या कहा तुमने?"

बाजबहादुर—"यह कहता हूँ कि देखना यदि कभी ऐसा समय आ जाये, कि हमें एक दूसरे से अलग होना पड़े तो मुझे भूलना मत।"

रूपमती की आँखों में आँसू तैरने लगे और कपोलों पर ढलक आये। व्याकुल होकर उसके वक्ष से चिमट गई और काँपते स्वर से बोली—"ऐसा न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहो बाज़बहादुर ! मेरा हृदय फट जायेगा। मैं मर जाऊँगी बाज़बहादुर !" और यह कहकर सिसकियाँ भर कर रोने लगी।

बाज़बहादुर—"यह क्या करने लगी रूपमती ! मुझे कायर मत बनाओ ! मैं वीर हूँ और मेरी प्रेयसी को भी वीराङ्गना ही होना चाहिये। मेरा सामना बड़े बलशाली और कड़े शत्रु से है। यदि तुमने साथ न दिया तो मेरा कार्य बड़ा कठिन हो जायेगा।"

रूपमती—(आँखों में आँखें डालकर) "मैं विश्वास दिलाती हूँ कि तुम्हारी पत्नी कभी कायर न होगी। मैं प्रत्येक कठिनाई झेल सकती हूँ। तुम्हारे लिये प्राणों पर खेल सकती हूँ, किन्तु केवल तुम्हारा वियोग नहीं सहन कर सकती, यही मेरी निर्बलता है। मैं इसलिये रोती हूँ कि तुमने यह बात कही क्यूँ ?"

बाज़बहादुर—(उसे प्यार से सहला कर) "मुझे क्षमा कर दो। मेरे मुँह से निकल गई। आह रूपमती ! राजा होना सब से बड़ा दुख है। काश। हम तुम जोगी-जोगन होते।"

रूपमती—"सच कहती हूँ कि तुम्हारे राजा होने पर मैं मन से कभी प्रसन्न न थी। मुझे राज की तनिक भी अभिलाषा नहीं। सब छोड़ कर निकल चलो। मैं निर्धनता में भी तुम्हें अपना राजा ही समझूँगी। अब भी तुम्हारी भिखारन हूँ और भविष्य में भी तुम्हारी भिखारन ही रहूँगी।"

बाज़बहादुर—(हँस कर) "तुमने यह तो कह दिया कि छोड़ कर चल निकलो। किन्तु यह न सोचा कि अपनी प्रिय प्रजा को बाहुबल होते भी चील-कव्वों पर क्यों कर छोड़ दूँ।"

रूपमती—"हाँ, इसीलिये तो रोती हूँ मेरे राजा ! कि जब तुम प्रजा को चील-कव्वों पर नहीं छोड़ सकते तो रूपमती से ऐसा कौन-सा अपराध हुआ है, कि उसे छोड़ने का विचार है ? क्या रूपमती तुम्हारी प्रजा नहीं ? क्या उसकी राज-भक्ति पर तुम्हें शंका है ?"

बाज़बहादुर—(हँस कर) "तुम मेरी बात को समझी नहीं। मेरा आशय यह था कि अकबर की सेना बाढ़ के समान बढ़ी चली आ रही है। देश-भक्त सरदार अपने स्थानों पर पहुँच चुके हैं और मुझे भी इन्हीं के कन्धे से कन्धा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मिला कर रण-भूमि में पहुँचना है। तुम्हें विवशतः यहीं रहना होगा। मुझे तुम्हारा वियोग सहना पड़ेगा, जो मेरे लिये अत्याधिक कठिन है, पर क्या करूँ? इसके अतिरिक्त और कोई उपाय भी तो नहीं।"

रूपमती—"यही तो मैं पूछती हूँ कि तुमने मुझे यहाँ रहने पर विवश क्यूँ समझ लिया?"

बाजबहादुर—"तो क्या तुम्हारा विचार मेरे साथ रण-स्थल में रहने का है?"

रूपमती—"हाँ! न केवल यह कि रण-स्थल में तुम्हारे साथ रहूँगी, बल्कि यह कि तलवार पकड़ कर मैं लड़ूंगी भी।"

बाज़बहादुर—(हँसकर) "तुम्हारा कोमल शरीर और यह सुकुमार हाथ प्रकृति ने इस काम के लिये नहीं बनवाये।"

रूपमती—"मैं अपनी शारीरिक निर्बलता को स्वीकार करती हूँ। किन्तु तुम पर न्यौछावर होना चाहती हूँ। यही मेरे लिये सबसे बड़ा सुख है, सम्मान है। तुमसे अलग होकर जीना, मेरे लिये असम्भव है और यदि तुम बलपूर्वक मुझे यहाँ अकेले छोड़ कर चले गये तो तुम्हारे ही प्राणों की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि तुम मुझे जीवित न पाओगे। यही मेरा अन्तिम निर्णय है...और अब इसके पश्चात् मैं तुमसे कुछ सुनना नहीं चाहती।"

बाज़बहादुर—(निःश्वास खींचकर) "बड़ा विवश करती हो रूपमती। अच्छा, यह बताओ क्या मैं अकबर का आधिपत्य स्वीकार कर लूँ?"

रूपमती—"जो तुम्हारा मन कहता है, वही कुछ करो।"

बाज़बहादुर—"किन्तु तुमने अपने निजी विचार नहीं बताये।"

रूपमती—"मैं इस सम्बन्ध में अपना निजी विचार क्या बताऊँ? यह सुन कर तुम अपने अमीरों से पूछो, अपने सरदारों से पूछो। मैं तो एक राजा की रानी हूँ। एक वीर की पत्नी हूँ। जब तक जिऊँगी, सम्मान से जिऊँगी। अपमान तथा कायरता का कलंक माथे पर न लगने दूँगी।"

बाज़बहादुर ने उसे अपनी बाँहों की लपेट में ले लिया और स्नेहपूर्वक उसे देखने लगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बाज़बहादुर—(मुस्कुरा कर) "रूपमती ! अभी तो तुमने कहा था कि तुम मेरे राजा होने पर मन से कभी प्रसन्न न थीं और मुझे राज-पाट त्यागने का परामर्श दे रही थीं। अब इससे क्यों पलटती हो ?"

रूपमती—"अभी तुमने भी तो कहा था कि दुनिया में राजा होने से बढ़कर कोई दुख नहीं और कहा था, क़ाश हम तुम जोगी-जोगन होते।"

बाज़बहादुर—"मैंने सच कहा था और अब भी यही कहता हूँ।"

रूपमती—"मैंने भी सच कहा था किन्तु अब यह नहीं कहती कि राज-पाट छोड़ दो।"

बाज़बहादुर—(मुस्कुराकर) "क्यों अब इतनी सी देर में क्या अन्तर पड़ गया ?"

रूपमती—"बड़ा अन्तर पड़ गया।"

बाज़बहादुर—"वही तो पूछता हूँ।"

रूपमती—"मैं जानती हूँ तुम्हें अपने कर्तव्य-पालन का पूरा भास है और ऐसे संकट में राजा का कर्त्तव्य क्या होता है, और तुमसे बढ़कर यह कौन जानता है ? मैं इसे छोड़ने का परामर्श कभी नहीं दे सकती। हाँ, इतना अवश्य कहती हूँ कि अपने सरदारों तथा अधिकारियों के सम्बन्ध में अवश्य सन्तोष कर लो कि क्या वह अन्त तक सच्चे मन से तुम्हारा साथ देंगे। यदि उनकी सच्चाई में तनिक भी शंका हो तो अकेले अपने आप को इस संकट में मत डालो। राजा होना कोई इतना बड़ा सुख नहीं। वास्तविक सुख तो मन की शान्ति ही है और कुछ नहीं।"

बाज़बहादुर—"मैंने सरदारों और दूसरे उच्च अधिकारियों से पहले ही पूछ लिया है और मुझे पूरा सन्तोष है। वह अकबर की दासता स्वीकार करने पर कदापि सहमत नहीं।"

रूपमती—"बस, फिर सब ठीक है, तुम्हें अपने और अपने सरदारों के निर्णय पर दृढ़ रहना चाहिए।"

बाज़बहादुर—(हँसकर) "अच्छा, भला यह तो बताओ ! यदि मुझे राज-त्याग का निर्णय करना पड़ता तो तुम्हारा व्यवहार क्या होता।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपमती—"किससे ?

बाज़बहादुर—"मुझसे।"

रूपमती—(आँखों में आँखें डालकर) "प्रेम और निर्वाह तो नारी की सृष्टि में है। यदि कोई नारी इन गुणों से वंचित है तो वह नारी नहीं, नारी नाम का कलंक है। कोई अपवित्र आत्मा है, जिसे जीवित जला देना चाहिये। रही शेरे व्यवहार की बात, सो कैसे हृदय चीर कर दिखा दूँ कि इसमें प्रकृति ने तुम्हारा प्रेम, तुम्हारी चाह और तुम्हारी पूजा उस समय से रख दी थी जब ज्ञान भी न था कि जब तुम मिलोगे तो राजा निकलोगे। और तुम्हें क्योंकर विश्वास दिलवाऊँ कि जब तुम मेरे जीवन में आये और राजा निकले तो मुझे कितना दुख हुआ। तुम्हारी कृपा-दृष्टि ने गायिका और नर्तकी से रानी बना दिया किन्तु मैं रानी बनकर भी स्वयं को तुम्हारी भिखारिन ही समझती रही हूँ। तुम्हारी भिखारन बनकर ही जीवित रहना चाहती हूँ और रहूँगी। तुम्हारी आँखों के सामने मर जाने की कामना है। भगवान वह दिन न दिखाये कि तुम्हारे चरणों से अलग रहकर जीवन की एक साँस भी लूँ···बाज़बहादुर ! मेरे राजा ! मेरे सब कुछ ! मैं तुम्हारे राज की भूखी नहीं, तुम्हारे प्रेम की भूखी हूँ···"

रूपमती की आवाज़ काँप गई और आँखों से अश्रु उबल कर गालों पर ढलक आये। बाज़बहादुर ने उसे वक्ष से चिमटा लिया और होंठ उसके होठों पर रख दिये।

बाज़बहादुर—"बस, बस रूपमती ! मुझे अपने सौभाग्य पर गर्व करना चाहिये।"

रूपमती—"तो फिर कूच का कब विचार है। हमें शीघ्रता करनी चाहिये,"

बाज़बहादुर—"कल सायंकाल। दासियों में किस किस को साथ रखोगी ?"

रूपमती—"मेरा विचार है कि अबके किसी दासी को साथ न रखा जाये।"

बाज़बहादुर—"एक दो को तो साथ ले ही लो। एक अपने लिये, एक मेरे लिए।"

रूपमती—मुझे अपने लिये तो किसी की आवश्यकता नहीं और तुम्हारे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लिये मैं जो हूँ।"

बाज़बहादुर—(हँसकर) "कैसी बातें करने लगी हो रूपमती।"

रूपमती—(हँसकर) "क्यों ? क्या मुझमें तुम्हारी दासियों जैसा भी सेवा-भाव नहीं ?"

दोनों हँसने लगे। बाज़बहादुर उठा और रूपमती की कमर में हाथ डाले शयन-गृह में चला गया।

३३

राजा दिन भर युद्ध की योजनाओं में व्यस्त रहा और रानी रूपमती अपने साथ गुलनार को लिए, साथ ले जाने वाली आवश्यकता की वस्तुएँ सँभालती रहीं।"

रूपमती—(मुस्कुरा कर देखते हुए) "अबके युद्ध कुछ बेढब है। देखना चाहिए तुम से कब मिलना हो। मुझे भूलना नहीं गुलनार।"

गुलनार यह सुनकर मुर्झा सी गई और भर्राये स्वर में बोली—"धिक्कार हो मुझ पर यदि एक क्षण भी मैं अपने राजा और रानी की शुभ-कामनाओं से दूर हटूँ। मेरी तो हार्दिक-कामना थी कि आप मुझे भी संग ले चलतीं।"

रूपमती—"नहीं गुलनार ! मैं तुम्हें संग ले जाना नहीं चाहती और मैं इस युद्ध में किसी को भी साथ ले जाने पर सहमत न थी किन्तु महाराज की आज्ञा पर अमानी और दो एक और दासियों को साथ रखने पर विवश हो गई हूँ। तुम्हारा यहीं रहना आवश्यक है और देखो, घबराना नहीं, मैं देखती हूँ कि तुम चिन्तित हो ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुलनार—"मेरी महारानी ! मेरी चिन्ताओं का कारण केवल तुम्हारा विचार है । मेरा अपना क्या है ? मैं तो तुच्छ दासी हूँ । मुझे जाने की इच्छा है तो तुम्हारी और महाराज की छाया तले है, वरना नहीं । कदापि नहीं ।"

रूपमती ने उसके गले में बाँहें डाल दीं और उसकी आँखों में आँखें डालकर बोली—"तुमने मेरी चिन्ताओं का अनुमान कैसे लगा लिया ।"

गुलनार—"हो सकता है रूपा ! मेरा अनुमान तुम्हारी चिन्ताओं के संबंध में ठीक न हो, किन्तु मैं देख रही हूँ कि तुम व्यग्र अवश्य हो ।"

रूपमती—(हँसकर) "हाँ, मैं व्यग्र अवश्य हूँ और इसी कारण यदि तुम मुझे कुछ चिन्तित भी समझ लो तो कुछ झूठ नहीं, किन्तु मैं चूंकि सुध में हूँ, इसलिये कहती हूं कि चिन्तित नहीं हूँ ।"

गुलनार—"सुनती हूँ कि अकबर ने इस बार बड़ी विशाल सेना भेजी है जो संख्या में महाराज की सेना से बहुत अधिक है ?"

रूपमती—(मुस्कुरा कर) "हाँ, यह सत्य है किन्तु मेरी चिंता का कारण यह नहीं ।"

गुलनार—"फिर और क्या कारण है ?"

रूपमती सोचने लगी और उसके मुख पर कई उतार चढ़ाव उत्पन्न हुए । गुलनार दृष्टि जमाये उसे देखती रही । बड़ी देर मौन रहने के बाद रूपमती बोली—"छोड़ो गुलनार ऐसी बातें । छोड़ो भी इस कहानी को । जो क्षण भी प्रियतम के संग बीत जायें, वही भले ।"

गुलनार—"मेरी रानी ! मेरी रूपा ! ! क्या तुम मुझे विश्वास का पात्र नहीं समझती जो मुझ से छिपाती हो ?"

रूपमती—(हँसकर) "देखो गुलनार, ऐसी बात न कहो कि मुझे तुम पर विश्वास नहीं । मैं तुम से कुछ न छिपाऊँगी । हाँ, वह कुछ कहते हुए मुझे दुःख होता है, जिसके वर्णन से मुझे अथवा तुम्हें कुछ लाभ न हो, बल्कि उल्टा चिंता का कारण हो । मैं तुम से विनती करती हूँ कि अभी इस बात को छोड़ दो । मेरा जी उलझता है ।"

गुलनार चुप हो गई और सामने से आती अमानी को तकने लगी । इन्हीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तैयारियों में दिन बीत गया। साँझ से पहले दुर्ग के मैदान में सहस्त्रों हाथी लड़ाई के हथियारों से सजे एकत्र हो गये। दिन छिपते ही राजा तथा रानी शस्त्रों से सुसज्जित राज-महल से निकले। दास-दासियों और ख्वाजा-सरा पीछे-पीछे चले आ रहे थे। सेना ने सावधान होकर सलामी दी। हाथियों को बिठाकर सीढ़ियाँ लटका दीं और राजा बढ़ कर सीढ़ी पर चढ़ गया। फिर झुककर रानी की ओर हाथ बढ़ाया। रानी ने गुलनार से गले मिलकर सीढ़ी पर पाँव रखा और राजा के हाथ के सहारे ऊपर चढ़ गई।

३४

आरम्भ में बाज़बहादुर की सेना टुकड़ियों में बँट कर कई स्थानों पर नियुक्त थी क्योंकि यह पता न था कि शत्रु किधर झुकेगा। किन्तु जब सूचना मिली कि शत्रु सारङ्गपुर की ओर बढ़ रहा है, तो वह सेना को समेटकर वहीं ले आया। यद्यपि बाज़बहादुर पूरी तैयारी से रण में उतरा था, किन्तु अकबर की सेना, हथियारों तथा संख्या में कहीं बढ़-चढ़ कर थी। ऐसी स्थिति में आक्रमण की पहल करना आत्महत्या के समान था। इसलिए दूसरी ओर से आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगा।

दोनों सेनायें, एक दूसरे के सामने कुछ अन्तर तक रुक गईं। दोनों पक्ष सावधान और चौकन्ने थे और युद्ध के लिए उचित अवसर की खोज में थे। कई दिन और कई रातें यूं ही बीत गईं। सेना आठों पहर सशस्त्र, कटिबद्ध रही।

यद्यपि यह समय देखने से तो शान्ति से बीत रहा था, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति समझता था कि यह अस्थायी शान्ति एक भीषण आंधी को छिपाये हुये है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रात्रि दो भाग बीत चुकी थी कि गुप्तचरों ने सूचना दी, कि शत्रु की सेना के दो भाग विपरीत दिशाओं से बढ़ रहे हैं। रूपमती और बाज़बहादुर अपने शिविर में सो रहे थे, तुरन्त उठे और शीघ्र शस्त्रों से अपने को लैस करने लगे। हाथियों पर सवार होकर रण में जा पहुँचे। अभी पौ फटी ही थी कि शत्रु ने सामने की ओर से गोलाबारी और तीरों की बौछार में आगे बढ़ना आरम्भ किया। इधर से भी उसका उत्तर दिया जाने लगा। बाज़बहादुर और रूपमती भी हाथी पर बैठे तीर पर तीर छोड़ रहे थे। जंगल गूंज रहा था, धरती दहल रही थी। सारा वातावरण धुआँधार हो रहा था। शत्रु बराबर बढ़ता चला आ रहा था। जब कुछ सौ गज़ का अंतर रह गया तो सहसा घोड़ों को एड़ लगा तोप के गोले के समान दनदनाता हुआ आ टकराया। बाज़बहादुर की सेना ने इस टक्कर को बड़ी वीरता से भालों से रोका, और दोनों पक्ष तलवारें लेकर गुत्थमगुथा हो गये।

दिन भर का उजाला क्षण-प्रति-क्षण बढ़ता जा रहा था और युद्ध भी तीव्र होता जा रहा था। बाज़बहादुर अपनी सेना-दल के केन्द्र में हाथी पर सवार लड़ाई का रंग देख रहा था। हर ओर लहू के फ़व्वारे उछल रहे थे। युवा वीरों की ललकार, तलवारों की झन्कार, और घायलों की चीख-पुकार से हृदय हिले जा रहे थे। ऐसे ही लोहे से लोहा टकराते सूर्य सर पर आ गया। यद्यपि युद्ध अभी तक कुछ तुला हुआ था, किन्तु शत्रु की सेना की अधिक संख्या प्रति-क्षण अपना प्रभाव उत्पन्न कर रही थी। रेले पर रेला आ-आकर टकरा रहा था।

सहसा, केन्द्र के पीछे दायें और बायें एक आँधी-सी उठती दिखाई दी। बाज़बहादुर समझ गया कि यह अकबरी सेना के वह भाग हैं, जो रात में अलग करके पीछे रखे गये थे।

ऐसी दशा में कि शत्रु के बढ़ते दबाव को रोकने और पीछे धकेलने के लिये, राज-भक्त कट-कट कर गिर रहे थे, इस नयी टक्कर को रोकना और संभालना बड़ा क़ठिन था। बाज़बहादुर समझ बैठा कि शत्रु की यह टक्कर युद्ध का अंतिम निर्णय कर देगी।

सरदारों को आदेश देकर हाथी को बिठाया और रूपमती भी सशस्त्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सिर पर लोहे की टोपी रखे हाथी से नीचे उतरती दिखाई दी। झपट कर उल्टा और बोला—"क्यूँ रूपमती !"

रूपमती—"मैं साथ रहूँगी" और यह कहकर उसने सन्न से तलवार म्यान से खींच ली।

बाज़बहादुर ने ध्यान पूर्वक उसकी ओर देखा। चुपचाप दृष्टि जमाये खड़ा देख रहा था कि आँखों में आंसू तैर आये।

अकबर की आक्रमणकारी सेना भी इस नई आने वाली सहायता को देख चुकी थी, जो बगटुट घोड़े उड़ाये चली आ रही थी। शत्रु का आक्रमण और भी तीव्र हो गया। तीरों की बौछार बढ़ गई, तोपों के गोले दनादन केन्द्र पर बरसने लगे और सारा केन्द्र धुएँ और धूल की चादर में लिपट गया।

बाज़बहादुर—"प्राणप्रिये ! तुम यहाँ से चली जाओ।"

रूपमती—"तुम पर प्राण न्यौछावर करने का ऐसा अवसर फिर न आयेगा।"

बाज़बहादुर—"रूपमती, मैं विनती करता हूँ कि तुम चली जाओ। देखो शत्रु सिर पर आ पहुँचा, मुझे विदा करो।"

रूपमती रो पड़ी और व्याकुल होकर बाज़बहादुर से लिपट गई और बोली—"कदापि नहीं, कदापि नहीं, मेरे राजा ! मेरा निश्चय अटल है।"

रूपमती ने भी अपने लिए घोड़ा लाने की आज्ञा दी। बाज़बहादुर विवश हो गया। बढ़ कर उसे वक्ष में लगा लिया और उसके होठों को चूमा, फिर स्वयं उसके घोड़े की रासें थाम कर खड़ा हो गया और स्वयं उसे सहारा देकर सवार किया।

पास खड़े हुए अधिकारियों और सरदारों की आँखें यह दृश्य देखकर सजल हो गईं। शत्रु की नई सेना आकर टकराई और साथ के साथ हाथियों की पंक्तियों पर फेंके हुए गोलों से आग का मेह बरसने लगा।

बाज़बहादुर और रूपमती इधर से उधर घोड़े उड़ाते फिर रहे थे और बढ़-बढ़ कर तलवारें मार रहे थे। दिन ढलने तक यही हाल रहा और मृतकों के ढेर लगते गये। बाज़बहादुर और रूपमती अलग-अलग दो दलों से घिर गये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपमती चोट पर चोट खा रही थी और लहू की धारों से पूरे वस्त्र लाल हो रहे थे। घावों से निढाल होकर घोड़े पर ही डगमगाने लगी। जब तक सुध रही तब तक सँभलती रही। अन्त में बेसुध होकर लाशों के ढेर पर घोड़े से गिर पड़ी।

बाज़बहादुर कई बार घेरे से निकल कर बाहर आया। रूपमती को देखने के लिये चारों ओर घोड़े को बचाता निकल जाता, किन्तु वह कहीं दिखाई न दी। यहाँ तक कि केन्द्र टूट गया और सेना बिखर गई।

बाज़बहादुर ने जब देखा कि रंग बिल्कुल बिगड़ चुका है और पूर्ण पराजय हो चुकी है तो रण से घोड़ा पलटाया और निकल गया।

३५

युद्ध समाप्त हो जाने के पश्चात रण-स्थल साफ़ होते-होते रात हो गई थी। घायलों की उठाने वाली टोली मशालें हाथ में लिए उधर भी आ निकली, जहाँ मृतकों के ढेर पर रूपमती बेसुध पड़ी थी। सिर से पाँव तक लहू से लिथड़ी, सिर पर राजमुकुट और लम्बे केश शरीर पर बिखरे हुए, ज्यों ही प्रकाश उस पर पड़ा, घायलों को खोजने वालों को सौन्दर्य की प्रतिमा चमकती हुई दिखाई दी। सब एक साथ उस पर झुक गये। आँखें बन्द थीं, किन्तु साँस चल रही थी।

एक बोला—"मुकुट और रत्न बताते हैं कि राजकुमारी है।"

दूसरा—"अरे मुकुट और रत्नों को क्या देखते हो, ज़रा सौन्दर्य को तो देखो, जैसे अप्सरा आ गिरी हो।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सिर पर लोहे की टोपी रखे हाथी से नीचे उतरती दिखाई दी। झपट कर उल्टा और बोला—"क्यूँ रूपमती !"

रूपमती—"मैं साथ रहूँगी" और यह कहकर उसने सन्न से तलवार म्यान से खींच ली।

बाज़बहादुर ने ध्यान पूर्वक उसकी ओर देखा। चुपचाप दृष्टि जमाये खड़ा देख रहा था कि आँखों में आंसू तैर आये।

अकबर की आक्रमणकारी सेना भी इस नई आने वाली सहायता को देख चुकी थी, जो बगटुट घोड़े उड़ाये चली आ रही थी। शत्रु का आक्रमण और भी तीव्र हो गया। तीरों की बौछार बढ़ गई, तोपों के गोले दनादन केन्द्र पर बरसने लगे और सारा केन्द्र धुएँ और धूल की चादर में लिपट गया।

बाज़बहादुर—"प्राणप्रिये ! तुम यहाँ से चली जाओ।"

रूपमती—"तुम पर प्राण न्यौछावर करने का ऐसा अवसर फिर न आयेगा।"

बाजबहादुर—"रूपमती, मैं विनती करता हूँ कि तुम चली जाओ। देखो शत्रु सिर पर आ पहुँचा, मुझे विदा करो।"

रूपमती रो पड़ी और व्याकुल होकर बाज़बहादुर से लिपट गई और बोली—"कदापि नहीं, कदापि नहीं, मेरे राजा ! मेरा निश्चय अटल है।"

रूपमती ने भी अपने लिए घोड़ा लाने की आज्ञा दी। बाज़बहादुर विवश हो गया। बढ़ कर उसे वक्ष में लगा लिया और उसके होठों को चूमा, फिर स्वयं उसके घोड़े की रासें थाम कर खड़ा हो गया और स्वयं उसे सहारा देकर सवार किया।

पास खड़े हुए अधिकारियों और सरदारों की आँखें यह दृश्य देखकर सजल हो गईं। शत्रु की नई सेना आकर टकराई और साथ के साथ हाथियों की पंक्तियों पर फेंके हुए गोलों से आग का मेह बरसने लगा।

बाज़बहादुर और रूपमती इधर से उधर घोड़े उड़ाते फिर रहे थे और बढ़-बढ़ कर तलवारें मार रहे थे। दिन ढलने तक यही हाल रहा और मृतकों के ढेर लगते गये। बाज़बहादुर और रूपमती अलग-अलग दो दलों से घिर गये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपमती चोट पर चोट खा रही थी और लहू की धारों से पूरे वस्त्र लाल हो रहे थे। घावों से निढाल होकर घोड़े पर ही डगमगाने लगी। जब तक सुध रही तब तक सँभलती रही। अन्त में बेसुध होकर लाशों के ढेर पर घोड़े से गिर पड़ी।

बाज़बहादुर कई बार घेरे से निकल कर बाहर आया। रूपमती को देखने के लिये चारों ओर घोड़े को बचाता निकल जाता, किन्तु वह कहीं दिखाई न दी। यहाँ तक कि केन्द्र टूट गया और सेना बिखर गई।

बाजबहादुर ने जब देखा कि रंग बिल्कुल बिगड़ चुका है और पूर्ण पराजय हो चुकी है तो रण से घोड़ा पलटाया और निकल गया।

३५

युद्ध समाप्त हो जाने के पश्चात रण-स्थल साफ़ होते-होते रात हो गई थी। घायलों की उठाने वाली टोली मशालें हाथ में लिए उधर भी आ निकली, जहाँ मृतकों के ढेर पर रूपमती बेसुध पड़ी थी। सिर से पाँव तक लहू से लिथड़ी, सिर पर राजमुकुट और लम्बे केश शरीर पर बिखरे हुए, ज्यों ही प्रकाश उस पर पड़ा, घायलों को खोजने वालों को सौन्दर्य की प्रतिमा चमकती हुई दिखाई दी। सब एक साथ उस पर झुक गये। आँखें बन्द थीं, किन्तु साँस चल रही थी।

एक बोला—"मुकुट और रत्न बताते हैं कि राजकुमारी है।"

दूसरा—"अरे मुकुट और रत्नों को क्या देखते हो, ज़रा सौन्दर्य को तो देखो, जैसे अप्सरा आ गिरी हो।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह बीमार ही थी और रातों में छिप-छिप कर रोती थी। एक ओर तो उसे बाजबहादुर के बिछड़ने का दुख था, दूसरी ओर ऊधमखाँ का मन उसे अपनी ओर कलुषित दिखाई दे रहा था। वह खूब अनुमान लगा रही थी कि दासियों द्वारा नित्यदिन की कुशलता के संदेश पूछने का क्या अर्थ है और वह हृदय में उसके लिये क्या भाव रखता है? महल की सब दासियाँ अब ऊधमखाँ की दासियाँ थीं। राजभवन की सब स्त्रियों में केवल एक गुलनार थी जिसे वह अपना समझती थी। उसके साथ बैठ-बैठ कर वह रोती थी।

एक रात जब वह अपनी चिन्ता में बैठी थी तो यह दासियाँ,, जिन्हें उसके सम्मुख बात करने का भी साहस न था, ऊधमखाँ का प्रेम-सन्देश लेकर पहुँचीं, और समय के उतार-चढ़ाव को समझाते हुए ऊधमखाँ की बात मान जाने को कहने लगीं। रूपमती बड़े धैर्य से आँखें झुकाये बैठी रही। गुलनार अलग स्तम्भ से लगी, समय के उपहास पर सिर धुनती रही।

जब दासियाँ बात कर चुकीं, तो रूपमती ने मुस्कराते हुये उन पर दृष्टि डाली और अमानी को जो इस समय इनकी मुखिया बनी हुई थी, सम्बोधन करके बोली—"तुम जानती हो कि मैं यहाँ एक नर्त्तकी बनकर आई थी, किन्तु तुम्हारे उस समय के स्वामी ने अपनी कृपा-दृष्टि से मुझे रानी बना दिया। यद्यपि वह अब यहाँ नहीं रहे, किन्तु उनकी अनुपस्थिति में जब तक भी जीवित हूँ मैं अपनी उसी पदवी पर रहना चाहती हूँ। मैं रानी थी और रानी ही रहूँगी।"

अमानी यद्यपि रूपमती के चुभते वाक्यों से कुछ झेंप-सी गई थी, किन्तु उसकी मुस्कान और बात के ढँग ने उसका साहस बढ़ाया। बोली—"सरकार को तो अब भी हम अपनी रानी ही समझते हैं।"

रूपमती—(मुस्कुरा कर) "देखो! अब मुझे सरकार कह कर सम्बोधित मत करो और यदि सचमुच कुछ आदर ही करना है तो बीबी कहो, जो पहले कहती थीं। मैं अपने आप को रानी केवल अपने लिये निजी रूप से समझती हूँ, तुम्हारे लिये नहीं।"

अमानी—(ढिठाई से) "मैं सच कहती हूँ, सरकार अब भी हमारी रानी हैं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपमती—(मुस्कुरा कर) "यदि तुम मुझे अपनी रानी ही समझतीं तो यह संदेश लेकर आने का साहस मेरे सामने न करतीं।"

अमानी—"सरकार ! यह संदेश देने का साहस इसलिये हुआ कि हमारे वर्तमान स्वामी ही यहाँ के महाराज हैं और सरकार वैसे ही मालवा की महारानी।"

रूपमती, अब तक तो अपना क्रोध रोके हुए थी, किन्तु अमानी के उस उद्दण्ड उत्तर से उसके धैर्य का बाँध टूट गया और वह क्रोध-भरी दृष्टि से अमानी की ओर देखकर कड़क कर बोली—"अच्छा तुमने अपने वर्तमान स्वामी को मालवा का महाराज भी स्वीकार कर लिया है और इसी कारण तुम मुझे उसके पहलू में बिठाने आई हो ? तुम और तुम्हारा यह कृतघ्न-स्वामी मुझे प्राप्त करने के लिये अपने स्वामी सम्राट अकबर के होते मालवा के राज्य के स्वप्न भी देख रहा है ? जाओ ! मेरी आँखों से दूर हट जाओ। उस कामुक-पापी पशु से कह दो कि अपनी सीमा से आगे न बढ़े।"

अमानी और बाकी दासियाँ काँप गईं। अभिवादन को झुकीं और उलटे पाँव बाहर निकल गईं। रूपमती के व्यवहार से सब पर ओस सी पड़ गई। उन्हें कदापि यह आशा न थी कि रूपमती इतना कठोर उत्तर देगी। अपने स्वामी से द्रोह करने पर अन्तर भला-बुरा कह रहा था। साथ ही यह भय लगा हुआ था कि यदि बाज़बहादुर फिर सफल होकर दुर्ग पर अधिकार कर बैठा तो कहीं की न रहेंगी। विस्मित थीं कि ऊधमखाँ को उत्तर दें तो क्या दें ?

दासियों के जाने के बाद रूपमती ने ज़रीन और फ़िरोज़ को बुलवा भेजा। दोनों उपस्थित होकर अभिवादन को झुके, किन्तु बहुत घबराये हुए और चिन्तित थे। रूपमती के कड़कने का स्वर वह बाहर सुन चुके थे। अब भी उसका मुख क्रोध से तमतमाया हुआ था और आँखों से एक ज्वाला-सी बरस रही थी।

रूपमती—(कांपते स्वर में) "देखो ! अब तक केवल तुम दोनों पर मुझे भरोसा है और इसी कारण से यहाँ तुम्हें बुलाया गया है। और सब विश्वास-घाती निकले हैं। यदि तुम्हारे मन में भी कोई हलचल हो तो मुझे स्पष्ट रूप से बता दो ?" रूपमती की आँखों से मोटे-मोटे आँसू उसके कपोलों पर ढलकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आये। गुलनार हिचकियाँ लेकर रोने लगी। ज़र्रीन और फ़िरोज़ मुंह से तो कुछ न कह सके पर रूपमती के चरणों में गिर पड़े और फूट-फूट कर रोये।

रूपमती व्याकुल हो गई। झुक कर उन्हें अपने हाथों से उठाया और हृदय को थामकर खड़ी हो गई। आँखें झुकाये खड़ी थी और आँसुओं की बाढ़ थी कि उमड़ी चली आती थी। बात करना चाहती थी, किन्तु गला भर्राया हुआ था, बोल न पाती थी। ज़र्रीन और फ़िरोज़ दोनों खड़े रो रहे थे। बड़ी कठिनाई से अपने को सँभाल कर उनसे बोली—"आज रात के लिये मेरी रक्षा का भार तुम पर है······फिर······।" आगे कुछ कहना चाहती थी, किन्तु कह न सकी। ज़र्रीन और फ़िरोज़ ने मुँह से तो कुछ न कहा, किन्तु म्यान से तलवारें खींचकर सोंत लीं और चरणों पर झुक कर रोते हुए बाहर निकल गये।

इनके जाने के बाद रूपमती ने एक कटार स्वयं निकाली, दूसरी गुलनार को दी। फिर दोनों ने भवन के चारों ओर के द्वार बन्द कर दिए।

वह रात रूपमती पर प्रलय की रात थी। वह समझ चुकी थी कि ऊधमखाँ अपने निश्चय से नहीं टलेगा। अपने कमरे में बैठकर रोई, बाज़बहादुर के शयन-गृह में लाकर रोई, जहाँ-जहाँ वह एक साथ बैठे थे, वहाँ-वहाँ रोई, महल के कोने-कोने में पागलों के समान सिर टकराती फिरी और गुलनार छाया की भाँति उनके पीछे-पीछे रोती हुई उसे थामती रही।

जब बहुत कुछ मन हल्का हो गया तो थककर छप्पर-खाट में गिर रही। कटार हाथ में लिए आँखें बन्द किए पड़ी थी और गुलनार पास बैठी रो रही थी। एक दृष्टि उस पर थी और दूसरी उसके कटार वाले हाथ पर थी। गुलनार ने उसके हाथ से कटार लेने को हाथ बढ़ाया कि उसने आँखें खोल दीं। बोली—"क्या करती हो?"

गुलनार—(हिचकियाँ लेते हुए) "कटार मुझे दे दो रूपा!"

रूपमती उठकर बैठ गई और खूब फूट-फूट कर रोई।

फिर बोली—"मुझे अब रूपा ही कहे जाना मेरी बहन! इस शब्द से प्रेम टपकता है। मैं चाचा-चाची की रूपा थी, चम्पा की रूपा थी और सारे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चाँदनगर की रूपा थी। फिर कुछ दिनों तुम्हारी भी रूपा थी। क्या अच्छे थे वह दिन जब मैं केवल रूपा थी? अब वह समय कभी न आयेगा।"

गुलनार—(रोते हुए) "अच्छा, लाओ! कटार तुम मुझे दे दो!"

रूपमती—"तुम अपनी कटार लिये रहो। आज की रात यह अपनी रक्षा के लिये है। सन्तोष रखो, आत्महत्या के लिए नहीं।"

गुलनार को उसकी ओर से यही खटका था, वह दूर तो हो गया, किन्तु चीखें मार-मार कर रोने लगी। ज़रींन और फ़िरोज़ जो बाहर टहल रहे थे, घबरा कर दौड़े आये। ज़रींन ने स्वर पहचान कर गुलनार को पुकारना आरम्भ किया। रूपमती कटार हाथ में लिए छप्पर-खाट से उठी और स्वयं ज़रींन को दरवाज़ा खोलकर भीतर बुला कर बोली—"समझाओ इसे ज़रींन! यह अपने प्राणों की शत्रु हुई बैठी है।"

ज़रींन के समझाने-बुझाने से गुलनार का मन जब कुछ संभल गया तो दोनों बाहर चले गये और रूपमती ने भीतर से फिर किवाड़ बन्द कर लिये।

दो तिहाई रात बीत चुकी थी। रोने-धोने के पश्चात दोनों के मन में कुछ ठहरावा आ गया था। रूपमती अपनी छप्पर-खाट में तकिये के सहारे बैठ गई और कहने लगी—"लो बहन! अब मेरी कुछ बातें सुन लो? वह बातें जो आज तक तुम से न कीं और जिनके सुनने को तुम कई बार व्याकुल भी हुईं। तुम्हें याद होगा कि पहले-पहल तुमने तो यह बातें उस समय पूछना चाहीं थीं, जब मेरे प्रियतम से मेरा बन्धन हुआ था, और उसके राजा होने पर मैंने चिन्ता प्रगट करते हुए कहा था कि मेरे मन में एक चोर छिपा है।"

गुलनार—"हाँ, मुझे सब याद है और तुमने यह भी कहा था कि अब इसके विवरण से मेरा मन कुछ शंकित-सा है।"

रूपमती—"हाँ, हाँ! ठीक याद है तुम्हें। अब इस युद्ध पर जाने से पूर्व तुमने मुझे चिन्तित पाकर यही बात पूछी थी।।"

गुलनार—"हाँ!"

रूपमती—(ठंडी साँस भर कर) "हाँ तो लो, अब सुनो! मैंने तुम को पहले जो अपना स्वप्न सुनाया था, वह तो तुम्हें याद होगा? किन्तु इस का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूसरा भाग मैंने तुम्हें कभी नहीं सुनाया और न ही मेरा जी चाहता था कि मैं इसे सुनाऊँ। बल्कि, मन में सदा यही प्रार्थना करती थी कि यह समय कभी न आये। किन्तु भाग्य में लिखा कोई नहीं बदल सकता। वह आया और आकर रहा। मैं स्वप्न में देखा करती थी कि युद्ध हो रहा है और मैं अपने प्रियतम के संग तलवार हाथ में लिए, घोड़े पर सवार लड़ रही हूँ। वह बहुत चाहता है कि मैं रण-स्थल से टल जाऊँ, पर मैं नहीं मानती। यहाँ तक कि मेरा प्रियतम इस रेल-पेल में मुझ से बिछड़ जाता है और मैं लड़ती हुई बेसुध हो कर घोड़े से गिर पड़ती हूँ। यदि तुम रणस्थल में होतीं तो देखतीं कि यह घटनायें उसी प्रकार घटित हुईं जैसे कि मैं देखा करती थी। फिर मैं सपने में देखा करती थी कि मैं एक दुर्ग में बन्द हूँ, और अपने प्रियतम के लिए रोती फिरती हूँ। एकाएक मेरे सामने एक ऐसी बला उत्पन्न होती है, जिसका सारा शरीर तो मानव का है, किन्तु मुख भेड़िये का। वह बला मुझ पर झपटती है, मैं चीखती चिल्लाती हूँ, किन्तु मेरी सहायता को कोई नहीं पहुँचता—यह मेरा स्वप्न का अन्तिम भाग मेरी-तुम्हारी आँखों के सामने है। आज दासियों को धिक्कारते हुए मैंने ऊधम को पशु इसलिए कहा कि मैं उसे वही भेड़िये के मुख वाला मानव समझती हूँ, जो मेरे स्वप्न का भयानक पात्र है। गुलनार! इस संसार में सब व्यक्ति वास्तव में मानव नहीं होते। यदि कोई व्यक्ति मानव का शरीर रखते हुये भी पशुओं के गुण रखता है, तो वास्तव में वह पशु ही है। यद्यपि इस संसार में रहते हुये कोई व्यक्ति दोषों और भूलों से मुक्त नहीं, किन्तु इनके भी दो प्रकार होते हैं। मैं भी बहुत दोषी हूँ गुलनार! किन्तु भगवान का लाख-लाख धन्यवाद है कि प्रकृति ने इतना सम्मान देने पर भी मुझे ऐसे दोषों से मुक्त रखा, जो मेरी मानवता पर कलंक होते। मैं सच्चे मन से कहती हूँ कि मैं राजवैभव के लिये नहीं रोती, बल्कि उसके लिये रोती हूँ, जो मेरे मन का चैन है, उसके लिये रोती हूँ जिसकी पुजारिन मुझे प्रकृति ने उस समय बना दिया था, जब मैंने उसे एक आँख देखा भी न था। आह! गुलनार, मुझे फिर कहीं वह मिल जाये तो मैं जोगन भली।"

दोनों जी भर के फूट-फूट कर रोईं। रूपमती आँसू पोंछ कर उठी और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

खिड़की खोलकर आकाश पर दृष्टि डालते बोली—"गुलनार ! प्रभात का तारा चढ़ आया है। रात का भय तो टल गया। अब देखें सूर्योदय क्या दिखाता है। आओ ! दिन चढ़ने से पहिले दो घड़ी आँख झपका लें।"

खिड़की बन्द करके वह छप्पर-खाट में आ लेटी और उसकी थकी हुई सूजी आँखें विश्राम की गोद में जा लेटीं। गुलनार नीचे धरती पर लेट गई।

३७

दूसरे सवेरे गुलनार के साथ रूपमती नाश्ता पर बैठी हुई थी। यद्यपि रात-भर के रोने और जागने से आँखें चढ़ी हुई और मुख कुम्हलाया हुआ था, तथापि, मन शान्त था। ज़रीन और फ़िरोज़ महल के बाहर पहरे पर थे। फ़िरोज़ ने भीतर आ कर अभिवादन किया।

रूपमती—(दृष्टि उठाकर) "फ़िरोज़ ?"

फ़िरोज़—"सरकार ! ऊधमखाँ का विश्वासी सेवक चुग़रबेग़ कुछ संदेश लेकर आया है।"

चुग़रबेग़ का आना कोई नई बात न थी। वह उन दिनों प्रातः और संध्या को ऊधमखाँ की ओर से रूपमती की कुशलता पूछने आया करता था, किन्तु आज सवेरे-सवेरे उसका आना रूपमती को खटका। सिर झुका लिया और सोचने लगी। कुछ समय बाद गुलनार को देख कर बोली—"तुम पूछो गुलनार ! क्या संदेश लाया है ?"

गुलनार पर्दा हटा कर बाहर निकली, चुग़रबेग़ को पास ही पाया। पूछने लगी—"सरकार पूछती हैं क्या संदेश लाये हो ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चुग़रबेग़—"अमीरआली ने यह संदेश भेजा है कि वह आज रात को रानी से भेंट करने के लिये आयेंगे।"

गुलनार—"बस ! केवल यही संदेश है ?"

चुग़रबेग़—"जी !"

गुलनार, मुर्झाई हुई वापस आई, किन्तु उसे संदेश कहने की आवश्यकता न पड़ी इसलिये कि रूपमती स्वयं भीतर बैठी सुन रही थी। तुरन्त ही ऊँचे स्वर में बोली—"कह दो कि हम एक पहर रात गये प्रतीक्षा करेंगे।"

गुलनार कहने को बाहर निकली तो उसने चुग़रबेग़ को प्रसन्नता से मुस्कुराते हुए देखा। वह इस उत्तर को स्वयं ही सुन चुका था।

चुग़रबेग़—(प्रसन्न होकर) "जी !"

गुलनार—"अच्छा ! जा सकते हो।"

चुग़रबेग़ मुस्कुराता हुआ पलटा और इठलाता हुआ चला गया।

गुलनार भीतर चली गई और चुपचाप रूपमती के पास सिर पकड़ कर बैठ गई। रूपमती भी मौन बैठी सोच रही थी। बड़ी देर बाद दुखी मन से गुलनार बोली—"रूपा ! अब क्या होगा ?"

रूपमती ने कुछ ठहर कर मुस्कुराते हुए उसकी ओर देखा और बोली—"चिन्ता न करो बहन ! देखती रहो। बड़ी सरलता के साथ इस भेड़िये से निबट लूँगी और हाँ अमानी को बुलाकर आज्ञा देदो कि वह हमारा शयन-गृह साँझ होने से पहले सजाद किन्तु उन्हें सामने आने की अनुमति नहीं। साथ ही दासियों को आदेश दे दो कि शृङ्गार के लिये आ जायें।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उधर जब चुग़रबेग़ ने ऊधमखाँ को यह सूचना सुनाई तो वह प्रसन्नता से उछल पड़ा और तुरन्त अमानी को बुला भेजा।

ऊधमखाँ—"अमानी! हम तुम से बहुत प्रसन्न हैं। यह सब तुम्हारे ही कारण है।"

अमानी— "दासी समझी नहीं, महाराज।"

ऊधमखाँ—"रूपमती सहमत हो गई है और आज रात वह हमारे स्वागत के लिये प्रतीक्षा करेगी।"

अमानी—(सोचकर) "महाराज! वह नर्तकी है। सम्भव है, इसमें भी कोई धोखा हो, दासी अभी सन्तुष्ट नहीं।"

ऊधमखाँ—"क्या कहती हो अमानी! अब उसकी रत्ती भर मजाल नहीं कि इधर से उधर हो।"

अमानी—"भगवान करे ऐसा ही हो महाराज! किन्तु दासी उससे भली प्रकार परिचित है। वह इतनी गहरी है कि उसकी थाह पाना कठिन है। वह इतनी तीव्र बुद्धि की है कि बुद्धिमान से बुद्धिमान भी चकित रह जाता है। वह ऐसी परख वाली है कि बात कहने वाले की जबान खुलने से पहले ही उसका उद्देश्य पा जाती है। दासी यह सब कुछ अपने बरसों के अनुभव के आधार पर कह रही है।"

ऊधमखाँ—(हँस कर) "कुछ भी हो अमानी? अब वह हमसे बच कर नहीं जा सकती।"

अमानी—"यह सत्य है महाराज! किन्तु दासी को कुछ अवकाश दीजिये कि वह भी अपना सन्तोष कर सके।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऊधमखाँ—"हाँ, हाँ, जाओ ! और अपना मन सन्तुष्ट करके हमें शीघ्र सूचना दो।"

अमानी अभिवादन करके निकली ही थी कि फ़िरोज़ आता हुआ दिखाई दिया। पास पहुँच कर फ़िरोज़ ने गुलनार की ओर से बुलाये जाने का सन्देश दिया। अमानी उसके साथ सीधी गुलनार के पास पहुँची।

गुलनार— "अमानी ! रानी की आज्ञा है कि साँझ से पहले उनके शयन-गृह को सजा दिया जाये और दासियों को आदेश दिया जाये कि वह उनके शृङ्गार के लिये उपस्थित हो जायें।"

यह सुनकर अमानी का मन खिल उठा, किन्तु उसने मुख से प्रसन्नता न प्रगट होने दी और सीधी ऊधमखाँ के पास पहुँची।"

अमानी— (अभिवादन करके) "दासी महाराज को बधाई देती है।"

ऊधमखाँ—"हम तुम्हें निहाल कर देंगे अमानी। किन्तु यह तो बताओ कि तुम्हें इतनी शीघ्र सन्तोष कैसे हुआ ?"

अमानी—"महाराज ! अभी-अभी मुझे शयन-गृह को सजाने की आज्ञा मिली है और साथ ही दूसरी दासियों को शृङ्गार के लिये बुलवाया गया है। अब दासी को पूर्ण विश्वास है महाराज।"

ऊधमखाँ प्रसन्न होकर हँस पड़ा और अमानी अभिवादन करके चली गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३६

अमानी दासियों के साथ शयन-गृह को सजाने में व्यस्त हो गई और रूपमती गुलनार को लेकर उत्सव भवन में जा बैठी। गाव तकिये से टेक लगाये मौन बैठी रही। उसके मुख से किसी प्रकार की चिन्ता अथवा व्याकुलता प्रगट न होती थी। गुलनार सामने बैठी उसके मुख पर दृष्टि जमाये उसके विचारों का अनुमान करने में खोई हुई थी।

रूपमती—"ज़र्रीन और फ़िरोज को भी बुला लो मैं कुछ बातें करना चाहती हूँ।

गुलनार ज़र्रीन और फ़िरोज को बुला लाई। सामने पहुँच कर दोनों अभिवादन को झुके और मलिन मुख से, सादर दृष्टि झुका कर खडे हो गये। रूपमती ने सस्नेह उनकी ओर देखा और विनम्र स्वर से बोली—

"आओ! ज़र्रीन, फ़िरोज! आगे बढ़ आओ!" दोनों कुछ पग और आगे बढ़ आये।

रूपमती—"गुलनार के पास बैठो!"

यह पहला अवसर था कि किसी दास तथा ख्वाजा-सरा को राजा या रानी के सम्मुख बैठने की आज्ञा मिली हो। ज़र्रीन और फ़िरोज़ कांप गये और दृष्टि झुका कर बैठ गये। कुछ देर उन्हें देखते रहने के पश्चात रूपमती बोली—"इस समय पूरे राजदुर्ग में केवल तुम तीन व्यक्ति ऐसे हो, जिनसे मैं अंतिम समय तक प्रसन्न रही। इसके लिए मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूँ। हो सकता है, तुम्हें मेरे प्रति अपनी सेवा-भाव का मूल्य न मिल सके, किन्तु विश्वास रखो भलाई फिर भलाई है। कल की बात है कि मैं, इसी भवन में, इसी सिंहासन पर महाराज के साथ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रानी बनकर बैठी थी, और सब राज-अधिकारियों ने मेरे प्रति श्रद्धा प्रगट की थी। उस दिन एक दूसरे से होड़ ले रहे थे और एक आज का दिन है कि सब फिर गये, सब बदल गये। यह परिवर्तन तो होनहार है, किन्तु हम मानव होने के नाते इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। दुख और सुख अनुभव किये बिना कोई उपाय नहीं। किन्तु प्रकृति बड़ी दयालु है। उसने हर दुख का उपाय भी उत्पन्न किया है और इन साँसारिक दुखों से मुक्ति केवल मृत्यु में है, जो देखने में बड़ी भयानक और दुखदायक है, किन्तु वास्तव में एक बड़ा वरदान है। जन-साधारण मृत्यु से डरते हैं, जिसका कारण केवल यह है कि वह अपने इस अस्थायी-जीवन में मोह-माया में फँस कर रह गये हैं। उनका जीवन केवल भौतिक-शरीर की आवश्यकताओं और वासनापूर्ति के लिए कार्य-शील रहता है। वह शरीर से, आत्मा की मुक्ति के ज्ञान से अनभिज्ञ हैं। भला यह जकड़ा-जकड़ा सहमा हुआ बन्दी-जीवन भी कोई जीवन है। वह लोग, जो मृत्यु के बाद के जीवन को स्वीकार नहीं करते, वह एक सत्य से दूर हैं।"

"तुम देख रहे हो, जिस पशु-रूपी-मानव से मुझे पाला पड़ा है, मैं नहीं जानती कि उसके हाथों कौन से घाट उतरूँगी और इसलिए आशा नहीं कि प्रियतम के दर्शन प्राप्त हों। किन्तु मुझे विश्वास है कि तुम सबको वह अवश्य ही मिलेंगे। जब भी मिलें तुम मेरी ओर से कह देना कि मैं आया करूँगी। मेरे राजा! मैं स्वप्न बनकर तुम्हारे पास आया करूँगी।" यह कहकर रूपमती फूट-फूट कर रोने लगी। ज़र्रीन, फ़िरोज़ और गुलनार भी रोते-रोते बेसुध हो गये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

४०

रूपमती, साँझ से पहले ही नहा-धोकर सुगन्ध में डूबे अपने प्रिय, श्वेत रेशम के वस्त्र पहने प्रासाद में आई। दासियाँ पहले से शृंगार का सामान लिए प्रतीक्षा में थीं। गर्व से सिर उठाये आई और सुनहरी कुर्सी पर बैठ गई, उसका शरीर कुन्दन के समान चमक रहा था और उसके गम्भीर मुख पर तेज झलक रहा था। गुलनार चकित हो उसे तक रही थी। दासियाँ उसका शृंगार करने में व्यस्त थीं। रूपमती कभी-कभी गुलनार पर दृष्टि डालकर फिर नीचे देखने लगती। दासियाँ अपने कला-कौशल द्वारा उसे रत्न-जड़ित गहनों से सजा चुकीं और उसने राज-मुकट सिर पर पहिन लिया तो वह उठकर दर्पण के सामने खड़ी हो गई। बड़ी देर तक मौन खड़ी, अपने को दर्पण में निहारती रही। फिर पलट कर दासियों को जाने का संकेत किया, वह अभिवादन को झुकीं और पर्दा हटाकर बाहर हो गईं।

फिर कुर्सी पर आकर बैठ गई, और मुस्कुराते हुए गुलनार की ओर देखकर बोली—"क्यों बहन ! रूपा अब भी रानी ही लगती है ना ?"

गुलनार ने स्नेह-दृष्टि उस पर डाली और बोली—"प्यारी रूपा। तुम पर गुलनार न्यौछावर हो जाएगी। तुम रानी कब न थीं। तुम तो तब भी रानी लगती थीं, जब रानी बनी भी न थीं।"

रूपमती उसके प्यार भरे शब्दों से व्याकुल हो गई। मन भर आया, परन्तु अपने को सँभाला फिर मुस्कुराती हुई खड़ी होकर उससे लिपट गई और उसके माथे को चूमते बोली—"बड़ी बहन ! प्यारी बहन···" आगे कुछ कहना चाहती थी, किन्तु मन भर आया। और अपनी मनोदशा को छिपाने के लिए मुस्कुराने लगी। फिर कुर्सी पर बैठ गई और साथ वाली कुर्सी पर गुलनार को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बिठा लिया। गुलनार अत्यधिक चिंतित थी। वह यह न समझ पा रही थी कि रूपमती इतनी शान्त क्यों है! वह उसके स्वभाव से भली प्रकार परिचित थी। वह यह कभी सोच भी न सकती थी कि वह ऊधमखाँ की इच्छा के सामने झुक जायेगी। वह जानना चाहती थी कि आखिर उसका निश्चय क्या है।

गुलनार—"रूपा! तुमने सवेरे कहा था कि ऊधमखाँ से बड़ी सरलता से निबट लूंगी।"

रूपमती—(मुस्कुरा कर) "हाँ, यही कहा था।"

गुलनार—(दुखी मन से) "मैं सवेरे से अब तक सोचती और देखती भी रही, किन्तु न तो कुछ समझ सकी, न ही देख सकी कि तुम उससे कैसे निपटोगी। अब तो बता दो?"

रूपमती—(मुस्कुरा कर) "तुम्हारा सन्तोष नहीं हुआ मेरे कहने से?"

गुलनार—"नहीं रूपा! मुझे बता दो मैं पूछे बिना न रहूँगी?"

रूपमती—"अच्छा, बता दूंगी, मुझे कुछ समय दो!"

गुलनार—"कितना?"

रूपमती—"एक पहर रात का।"

गुलनार—"अभी क्यों नहीं बता देतीं?"

रूपमती—(सोचकर) "इतनी शीघ्रता क्या। बहन, बता दूंगी।"

गुलनार चुप हो गई। किन्तु उसे चैन न था। साँझ हो चली थी। रूपमती ने उठकर डूबते सूरज की ओर देखा और गुलनार की ओर देखकर बोली—"फ़िरोज को बुलाओ ताकि फ़ानूस रौशन कर दे!"

गुलनार उठ कर बाहर गई और फ़िरोज भीतर आकर फ़ानूस रौशन करने लगा।

बाहर अमानी और दूसरी दासियाँ खड़ीं थीं। उन्होंने गुलनार से विनती की कि उन्हें भी महारानी के दर्शन की आज्ञा मिलनी चाहिए। रूपमती ने इसे स्वीकार न किया और त्यौरी पर बल डाल कर चुप हो गई।

बाहर रात का अंधेरा फैलने लगा था और भीतर शयन-गृह फ़ानूसों से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अकबर ने ऊधमखाँ की उद्दण्डता की खबरें पाकर, उसे पदच्युत करके, आगरे बुला लिया। जो कुछ धन-दौलत उसने समेटी थी, सब उगलवा ली। फिर कुछ ही दिन बाद एक अमीर की हत्या के दोष में उसे महल के बुर्ज से गिरवा कर मरवा दिया।

माँडू में मुल्ला पीर मुहम्मद का राज था। बाज़बहादुर को गुप्तचरों द्वारा यह सूचना पहुँच चुकी थी कि रूपमती घायल होने के पश्चात् माँडू के दुर्ग में पहुँच चुकी है। इधर-उधर से सेना एकत्र करके वह फिर माँडू की ओर चला।

मुल्ला पीर मुहम्मद, अपना सैन्य-दल लेकर मुकाबले को आया। बाज़-बहादुर चोट खाकर बिफरा हुआ तो था ही, बाज़ की भाँति झपटा। जिधर उलटता था, सफ़ाया कर देता था। मुल्ला की सेना में खलबली मच गई और वह भाग खड़ी हुई। नर्बदा नदी सामने आई। मुल्ला ने घोड़ा पानी में डाल दिया। सेना भी पीछे भागी आती थी। घबराहट में, एक लदे हुए ऊँट का धक्का लगा और वह घोड़े से गिर कर पानी में गिर पड़ा। नर्बदा नदी उसके लिए काल हो गई और इस प्रकार वह मृत्यु को प्राप्त हुआ।

बाज़बहादुर विजयी होकर दुर्ग में आया तो रूपमती का दुख भरा अन्त सुन कर तड़प गया। रोता था और सिर पटकता था। अमानी और दूसरी राजद्रोही दासियों का अपने हाथ से बध कर डाला और जोगी बन कर निकल गया।

अकबर को कुछ समय बाद इसकी सूचना मिली तो ढुँढ़वा कर उसे अपने पास बुलाया और अपने विशेष अमीरों में उसे सम्मिलित कर लिया।

बाज़बहादुर जब तक जिया, रूपमती निरन्तर स्वप्न में उसके पास आती रही, निरन्तर आती रही।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रवीन्द्र

● सुभाषित और सूक्तियाँ

सम्पादक : शरण

विश्व-कवि केवल बंगला-साहित्य के ही युग-प्रवर्तक, पुरोधा एवं ऋत्विक् नहीं थे अपितु विश्व-साहित्य को भी एक अभिनव प्रकार का दान देने वाले थे। आपकी इस साहित्य-सेवा ने और महान् शिक्षाविद्, सिद्ध दार्शनिक, जन-सेवक, अन्तरर्राष्ट्रीय रूप ने इन्हें पुरुष से विश्व-मानव बना दिया। इसके वास्तविक दर्शन होते हैं 'रवीन्द्र : सुभाषित और सूक्तियाँ' में ही।

ये सुभाषित और सूक्तियाँ उनकी प्रतिभा, गहन चिन्तन और क्रान्तदर्शिता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं, उनके चिन्तन का चूड़ान्त निदर्शन।

कुछ वरके फाड़ने से कहानी का सारा मज़ा किरकिरा हो गया है यह बात ठीक नहीं होती

एन० डी० सहगल एण्ड सन्ज़

दरीबा कलाँ, दिल्ली-६

वैसे तो यह कहानी बहुत ही अच्छी है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रेमचन्द

● सुभाषित और सूक्तियाँ

सम्पादक : शरण

हिन्दी-जगत् स्रष्टा उपन्यास-सम्राट् साम्यवाद के सन्देश-वाहक, भारत के गोर्की, साहित्य के गाँधी, ग्राम्य-जीवन के अनूठे चित्रकार और आदर्श कहानीकार, प्रेमचन्दजी के विचार-गगन में टिमटिमाते तारागणों के समान असंख्य और सागर के समान गहरे हैं।

लगभग एक दर्जन उपन्यास, तीन सौ कहानियाँ, तीन नाटक और अनेक अनुवाद तथा जीवनियाँ एवं निबन्धों में लेखक की भावनायें, विचार और उद्गार यत्र-तत्र कोने-कोने में छिपे-छिपे झांकते हैं। उनको उक्त स्थानों से निकालकर एक स्थान पर संकलन करना ही पुस्तक का ध्येय है।

जीवन की विविध झाँकियों में प्रेमचन्द ने पदार्पण किया है, जिसका मूर्तरूप उनके ये सुभाषित और सूक्तियां हैं।

एन० डी० सहगल एण्ड सन्ज़

दरीबा कलाँ, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रवीन्द्र

● सुभाषित और सूक्तियाँ

सम्पादक : शरण

विश्व-कवि केवल बंगला-साहित्य के ही युग-प्रवर्तक, पुरोधा एवं ऋत्विक् नहीं थे अपितु विश्व-साहित्य को भी एक अभिनव प्रकार का दान देने वाले थे। आपकी इस साहित्य-सेवा ने और महान् शिक्षाविद्, सिद्ध दार्शनिक, जन-सेवक, अन्तरर्राष्ट्रीय रूप ने इन्हें पुरुष से विश्व-मानव बना दिया। इसके वास्तविक दर्शन होते हैं 'रवीन्द्र : सुभाषित और सूक्तियाँ' में ही।

ये सुभाषित और सूक्तियाँ उनकी प्रतिभा, गहन चिन्तन और क्रान्तदर्शिता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं, उनके चिन्तन का चूड़ान्त निदर्शन।

कुछ वरके फाड़ने से कहानी का सारा मज़ा किरकिरा हो गया है यह बात ठीक नहीं होती

एन० डी० सहगल एण्ड सन्ज़

दरीबा कलाँ, दिल्ली-६

वैसे तो यह कहानी बहुत ही अच्छी है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रेमचन्द

● सुभाषित और सूक्तियाँ

सम्पादक : शरण

हिन्दी-जगत् स्रष्टा उपन्यास-सम्राट् साम्यवाद के सन्देश-वाहक, भारत के गोर्की, साहित्य के गाँधी, ग्राम्य-जीवन के अनूठे चित्रकार और आदर्श कहानीकार, प्रेमचन्दजी के विचार-गगन में टिमटिमाते तारागणों के समान असंख्य और सागर के समान गहरे हैं।

लगभग एक दर्जन उपन्यास, तीन सौ कहानियाँ, तीन नाटक और अनेक अनुवाद तथा जीवनियाँ एवं निबन्धों में लेखक की भावनायें, विचार और उद्गार यत्र-तत्र कोने-कोने में छिपे-छिपे झांकते हैं। उनको उक्त स्थानों से निकालकर एक स्थान पर संकलन करना ही पुस्तक का ध्येय है।

जीवन की विविध झाँकियों में प्रेमचन्द ने पदार्पण किया है, जिसका मूर्तरूप उनके ये सुभाषित और सूक्तियां हैं।

एन० डी० सहगल एण्ड सन्ज़

दरीबा कलाँ, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निराला

सुभाषित और सूक्तियां

संकलनकर्त्ता एवं सम्पादक

श्री ओम प्रकाश शर्मा

बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार महाकवि निराला ने साहित्य के सभी अंगों को अपनी रचनाओं से विभूषित किया है। उनका अध्ययन बड़ी ही गहन और उसकी अभिव्यक्ति बड़ी ही भावपूर्ण हुई है। उनके साहित्य में स्थान-स्थान पर बिखरे उनके विचार और सूक्तियों का संकलन इस पुस्तक के रूप में हिन्दी जगत को भेंट है। विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि निराला-साहित्य के प्रेमियों को यह पुस्तक रुचेगी और इसे समुचित आदर प्राप्त होगा।

(आगामी आकर्षण)

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़

दरीबा कलां, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अगर डा. निरंजनी की जिस प्रकार जैसा
मिल जाती तो कितना अच्छा होता किन्तु
वह मुझे नहीं मिला परन्तु मेरा
प्रियतम शायद मुझे मिल जायेगा। मैं
आठवीं कक्षा से बी.ए. तक पहुँच गई परन्तु
वह डा. [illegible] बाद भी मुझे न मिला।
अगर मैं व मेरा वह [illegible]
और प्रियतम को पाया तो
कितना अच्छा होगा

V. Interesting Book. every girl must read it.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निराला

सुभाषित और सूक्तियां

संकलनकर्त्ता एवं सम्पादक

श्री ओम प्रकाश शर्मा

बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार महाकवि निराला ने साहित्य के सभी अंगों को अपनी रचनाओं से विभूषित किया है। उनका अध्ययन बड़ी ही गहन और उसकी अभिव्यक्ति बड़ी ही भावपूर्ण हुई है। उनके साहित्य में स्थान-स्थान पर बिखरे उनके विचार और सूक्तियों का संकलन इस पुस्तक के रूप में हिन्दी जगत को भेंट है। विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि निराला-साहित्य के प्रेमियों को यह पुस्तक रुचेगी और इसे समुचित आदर प्राप्त होगा।

(आगामी आकर्षण)

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़

दरीबा कलां, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अगर म. शिवमती को जिन्दगी में
मिल जाती तो कितना अच्छा होता लेकिन
वह मुझे नहीं मिलेगा परन्तु मेरा
प्रियतम शायद मुझे मिल जायेगा। मैं
आठवीं कक्षा से B.A. तक पहुँच गई परन्तु
वह एक बार भी मुझे न मिला।
अगर [illegible] मेरा [illegible] [illegible]
और प्रियतम को मैं पाती तो
कितना अच्छा होता

V. Interesting Book. every girl must read it.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

H83 R17M 24188
Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

This book was taken from the library on the date last stamped. A fine of one anna will be charged for each day the book is kept overdue.

16.4.67			
30.4.67	12.5.67	10.2.20	
9.6.67	24/6/67		
20.9.67	30/10/67	26/9/20	30/10/20
23/10/68		5/2/20	5/2/20
1.8.68			
20.8.69			
5.5.2020	11.5.2015	5/8/20	

CC-0. In Public Domain, Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

883 R17.M 84188

2941.23 5/66
6450118.2.66
8194. 16.4.67
8533. 20.4.67
2940. 20.9.67
9441. 23.10.68.
10093
10167.26.6.76

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust

205/H

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE